श्री माखनलाल चतुर्वेदी

(एक अध्ययन)

लेखक

रामाधार शर्मा एम० ए०

प्राध्यापक

एस० बी० आर० कालेज, बिलासपुर
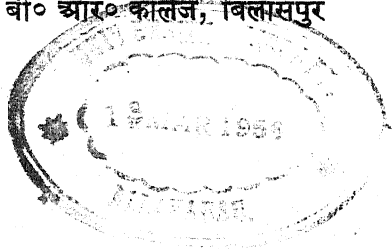
प्रकाशक

सरस्वती मन्दिर

जतनबर, बनारस

प्रथम संस्करण]   १९५५   [मूल्य ३॥)

माताजी की पुण्य स्मृति

को

समर्पित

दो शब्द

श्री रामावार शर्मा एम० ए० सागर विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के विद्यार्थी रहे है। उन्होने एम ए के नवम वैकल्पिक प्रश्नपत्र के निमित्त 'श्री माखनलाल चतुर्वेदी' शीर्षक प्रबन्ध लिखा था और वही अब पुस्तक रूप मे प्रकाशित हो रहा है। इस प्रबन्ध मे लेखक ने माखन-लाल जी के सम्पूर्ण साहित्य पर दृष्टि डाली है और कुछ अप्रकाशित कृतियो का भी उपयोग किया है। चतुर्वेदी जी की कृपा के फलस्वरूप उनकी अप्रकाशित रचनाएँ श्री शर्मा को देखने को मिली, जिसके लिए हम उनके कृतज्ञ है। 'भारतीय आत्मा' के काव्य-साहित्य तथा उनकी अन्य कृतियो पर अब तक हिन्दी मे कोई समीक्षात्मक या व्याख्यात्मक पुस्तक प्रकाशित नही हुई है। इस दृष्टि से यह पुस्तक हिन्दी-साहित्य के एक उल्लेखनीय अभाव की पूर्ति करती है। इस पुस्तक मे जो विवेचनात्मक समतियॉ प्रस्तुत की गई है, वे एक नए और अभ्युदयशील लेखक की स्वतत्र समतियॉ समझी जाऍगी। उनक लिए सागर विश्वविद्यालय या उसके हिन्दी-विभाग का किसी प्रकार का दायित्व नही है। तथापि विभाग के अध्यक्ष और इस प्रबन्ध के निरीक्षक के रूप मे मै इस प्रबन्ध के लेखक के प्रति अपनी हार्दिक शुभाशसा प्रकट करता हूँ।

— नन्ददुलारे वाजपेयी
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय,
सागर।

दो शब्द और

प्रस्तुत पुस्तक मेरे प्रिय विद्यार्थी श्री रामाधार शर्मा की पहली साहित्यिक कृति है। इस पुस्तक में उन्होंने इस शताब्दी के पहले कुछ चरणों की एक महती साधना को उद्घाटित किया है जो श्री माखनलाल चतुर्वेदी के बहुमुखी व्यक्तित्व और उनके विविध कृतित्व के द्वारा सामने आई है। चतुर्वेदी जी की समस्त प्रवृत्तियो का अध्ययन यहाँ भी नही हो सका है क्योकि चार दशको की लम्बी साधना को एक शृङ्खला मे बाँधना कुछ कठिन था और उनका बहुत-सा साहित्य अभी सम्यक् रूप से प्रकाशित हो कर सामने नहीं आ सका है। फिर भी इस कृति के लेखक को यह श्रेय देना होगा कि उसने आधुनिक साहित्य के एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के सबध मे अपनी लेखनी उठाई है और उसके अनेक अबूझ और रहस्यमय पहलुओ को सामने ला सका है। इस प्रारंभिक रचना मे ही जिस अतर्दृष्टि और सूझ-बूझ का परिचय लेखक ने दिया है उससे यह आशा बँधती है कि भविष्य मे वह समीक्षा के क्षेत्र मे अपना निजत्व स्थापित कर सकेगा। मैं लेखक के सुन्दर साहित्यिक भविष्य की कामना रखता हूँ। उसकी प्रगति को मै उत्सुकता से देखता रहूँगा।

—रामरतन भटनागर
प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, सागर।

सागर (म० प्र०)
३१ अगस्त, १९५५।

प्राक्कथन

श्री माखनलालजी चतुर्वेदी मध्य प्रात के वयोवृद्ध और मान्य कवि हैं। साहित्य के क्षेत्र मे, एक विशेष गति से, कार्य करते हुए पूर्वार्द्ध बीसवी शताब्दी के इति-अथ को मिलाने का उन्हे श्रेय प्राप्त है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे वे एक विशिष्ट धारा के प्रवर्त्तक के रूप मे प्रतिष्ठित किये गये है। 'हिम-तरगिनी', 'हिम किरीटिनी' और 'माता' उनके काव्य-ग्रथ है, 'साहित्य-देवता' साहित्यिक निबधो का सग्रह है और 'कृष्णार्जुन-युद्ध' उनकी नाट्यकृति है। उनकी कहानियो का एक सग्रह भी प्रकाशित किया जा रहा है। इस प्रकार काव्य और कहानी, नाटक और निबधो के विभिन्न साहित्यागो की उन्होने रचना की है। हिन्दी ससार मे माखन-लालजी के ग्रथ सम्मानित हुए है और वे स्वय श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते है। उनकी रचनाएँ और ग्रथ विद्यालयो, महाविद्यालयो तथा विभिन्न परीक्षाओ के पाठ्यक्रम मे भी निर्धारित किये गये है। फिर भी माखनलालजी के साहित्य का मूल्याकन, उसकी विशेषताओ का दिग्दर्शन अभी तक नही हो सका। क्या माखनलालजी मध्य प्रात के निवासी है इसलिए उनकी रचनाओ का उचित मूल्याकन नही किया जा सका? क्या उनकी रचनाएँ परिमाण मे कम है इसलिए उनकी आलोचना करने की आवश्यकता नही समझी गई? क्या उनकी कई रचनाएँ समझ मे नही आती इसलिए उनके पूरे साहित्य को ही छोड़ दिया गया है? जो भी हो, माखनलालजी के साहित्य पर एक व्यवस्थित प्रबध की आवश्य-कता थी और इसी बात की पूर्ति के लिए मैने यह प्रयास किया है।

इस प्रबध मे प्रमुख रूप से माखनलालजी के काव्य के बहिरतर प्रेरक तत्त्वो को समझने का प्रयास किया है, काव्य के विकास-क्रम को स्पष्ट किया गया है, कवि के ऐतिहासिक महत्त्व पर दृष्टि रखी गई है

और प्रासगिक तुलनात्मक सकेत दिये गये है। माखनलालजी के काव्य की राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि के साथ ही कवि की जीवनी के काव्यप्रेरक तत्त्वो की ओर भी सकेत कर दिया गया है। सुविधा के लिए इनके काव्य को प्रारभिक और परवर्त्ती दो भागो मे विभक्त कर दोनों विभागो का विकास-क्रम दिखलाया गया है। काव्य का विकास-क्रम दिखलाने समय रस, छद, अलकार, भाषा, शैली आदि पर विचार किया गया है। 'साहित्य-देवता' और 'कृष्णार्जुन-युद्ध' पर भी एक-एक परिच्छेद दे दिया गया है।

यह पुस्तक, डा० रामरतनजी भटनागर के दिशा-निर्देश मे, मेरी एम ए. कक्षा के प्रबध के रूप मे लिखी गई है। इसमे कमियाँ है और अनेक त्रुटियाँ भी होगी। इसमे जो कुछ भी मै दे सका हूँ वह सब भटनागरजी का प्रसाद है और त्रुटियो का उत्तरदायित्व मुझ पर है। वे मेरी अपनी वस्तुएँ है। मुझे ऐसा लगता है कि मैने श्री नददुलारेजी वाजपेयी के स्नेह का अनुचित लाभ उठाया है। इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था और इसका सशोधन भी उन्हे ही करना पडा है। श्री कमला-कातजी पाठक को भी मै समय समय पर कष्ट देता रहा हूँ। ये सब मेरे गुरु-जन हैं। उनके स्नेह को प्राप्त करते समय यदि मुझ से कही कुछ त्रुटिया हो गई हो तो मै उनके लिए क्षमा चाहता हूँ। श्री माखनलालजी ने अपनी रचनाओ की पाडुलिपियो को देखने की अनुमति देकर मुझ पर जो दया की उसके लिए मै उनका आभारी हूँ। इस प्रबध मे यदि कही प्रसगवश चपलता हो गई हो तो आशा है श्री माखनलालजी मुझे क्षमा करेंगे। यदि यह सपूर्ण प्रयास श्रद्धाजलि कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी, क्योंकि मूल प्रेरणा तो वही रही है। अत मे इस, अशुद्धियो और त्रुटियो से भरे-पूरे, प्रबध के पाठको से क्षमा माँगता हुआ मै इसे हिन्दी ससार के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

रामाधार शर्मा

विषय-सूची

जीवन और व्यक्तित्व

जीवन और व्यक्तित्व

माखनलाल जी का जन्म होशंगाबाद जिले के बावई नामक ग्राम में ४ अप्रैल सन् १८८९ मे हुआ था। आपके पिता श्री नंदलाल चतुर्वेदी ग्राम पाठशाला मे अध्यापक का काम करते थे। माता श्रीमती सुन्दरबाई चिरकाल तक यशस्वी पुत्र को अपने वरद हस्त की शीतल छाया देकर २९ अप्रैल सन् १९५३ को स्वर्ग सिधार गईं। प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर ये घर पर ही सस्कृत का अध्ययन करने लगे। पद्रह वर्ष की अवस्था मे उसी ग्राम की एक कन्या ग्यारसी बाई से आपका पाणिग्रहण सस्कार सपन्न हुआ और उसके दूसरे ही वर्ष आठ रुपये मासिक वेतन पर आप अध्यापन कार्य करने लगे। सन् १९०७ मे नार्मल स्कूल की परीक्षा मे हिन्दी में ९४ प्रतिशत और गणित मे ९६ प्रतिशत अक पाने पर आप खडवा भेज दिए गए।

खडवा से ही आपके राजनीतिक जीवन का श्रीगणेश हुआ। सन् १९१० मे आप लोकमान्य तिलक के 'राष्ट्रीय मडल' मे प्रवेश कर उसके कार्य-क्रमो मे सक्रिय सहयोग देने लगे। उसके दो ही वर्ष पश्चात् अध्यापन-भार से मुक्त हो सन् १९१३ मे राम-नवमी का शुभ मुहूर्त शोध कर आपने 'प्रभा' पत्रिका की स्थापना की जो पहले तो चित्रशाला प्रेस, पूना से और बाद मे प्रताप प्रेस, कानपुर से प्रकाशित हुई। सन् १९१४ मे पत्नी का देहात हो गया और आप तीन वर्ष तक हृदय-रोग से पीडित रहे। 'प्रभा' के सपादन-काल मे माखनलाल जी श्री गणेशशकर विद्यार्थी के सपर्क मे आए जिनका इनके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। सन १९१८ मे इनका लोकप्रिय प्रसिद्ध नाटक 'कृष्णार्जुन युद्ध'

प्रकाशित हुआ और इसके दूसरे ही वर्ष ये जबलपुर से 'कर्मवीर' भी निकालने लगे। १२ मई सन् १९२१ को इस देशभक्त राजद्रोही को गौराग प्रभुओ ने गिरफ्तार कर लिया। ५ जुलाई १९२१ से ४ मार्च सन् १९२२ तक कारावास की काली कोठरियो मे आप का निवास रहा जिसकी आवृत्ति सन् १९३० मे एक बार एक वर्ष के लिए फिर हुई थी। इसी वर्ष 'कर्मवीर' के अधिकारियो से मतभेद हो जाने के कारण आपने त्याग-पत्र दे दिया। ये 'झडा-सत्याग्रह' मे काग्रेस के मान्य नेताओ के साथ कार्य करते रहे और 'झडा-सत्याग्रह' की रिपोर्ट भी इन्होने ही तैयार की। सन् १९२४ मे विद्यार्थीजी के जेल जाने पर आपने 'प्रताप' का सपादन कार्य सम्हाला और सन् १९२५ मे कर्मवीर' का प्रकाशन भी पुन प्रारम्भ कर दिया। य सन् १९२७ मे भरतपुर मे सपादक-सम्मेलन के अध्यक्ष रहे, सन् १९३० मे प्रातीय साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष रहे, सन् १९३४ मे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की साहित्य-परिषद के अध्यक्ष रहे, सन् १९३६ मे काग्रेस पार्लियामेटरी बोर्ड सी० पी० के अध्यक्ष रहे और सन् १९३९ मे त्रिपुरी काग्रेस के अवसर पर स्वागत समिति के उपाध्यक्ष निर्वाचित हुए, किन्तु अधिवेशन मे आपरेशन के कारण सम्मिलित न हो सके। सन् १९४३ मे एक बार फिर हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष बनाए गए। इसी वर्ष इनके 'हिमकिरीटिनी' और 'साहित्य-देवता' ग्रन्थ प्रकाशित हुए और हरिद्वार मे इनका तुलादान किया गया। सन् १९४८ मे 'हिमतरगिनी' और १९५२ मे 'माता' काव्य-ग्रन्थ प्रकाशित हुए। 'कला का अनुवाद' नाम से उनकी कहानियो का एक सग्रह भी प्रकाशित हो रहा है।

आज माखनलाल जी चोसठ दिवाली देख चुके है। शारीरिक शक्तियो ने साथ छोड़ना प्रारम्भ कर दिया है, औषधि का अवलम्ब शेष रह गया है और इस वर्ष सन् १९५३ मे, ममतामयी माता का साथ छूट

जाने से जरा-जर्जर शरीर को एक और आघात लगा है। फिर भी वे साहित्य-सृजन करते है और 'कर्मवीर' का सपादन सम्हालते हैं। 'कर्मवीर' का सपादक जीवन भर कर्मवीर रहा है और आमरण कर्मवीर जीवन का ही सपादन करना चाहता है।

माखनलाल जी का संपूर्ण व्यक्तित्व उनके साहित्य का प्रतिरूप है या दूसरे शब्दो मे, उनका भाव-प्रधान, कर्मठ व्यक्तित्व ही उनका साहित्य बन गया है। छोटा कद, देह दुर्बल, गोरा रग उनका बाह्य व्यक्तित्व है और धोती, टोपी, पूरी बॉह की कमीज तथा मिर्जई उनकी वेषभूषा। माता, युग पुरुष बापू, माधवरावजी सप्रे तथा भेडाघाट के विशाल चित्र उनके कक्ष की शोभा है एव शिष्य तथा श्रद्धालुओ के साथ वार्तालाप उनका मनोरजन है।

उनका समस्त जीवन देशानुराग की एक लम्बी कहानी है। स्वातन्त्र्य-सग्राम के सेनानियो मे जहॉ एक ओर उन्होने अपनी अग्नि-वाणी से जोश की ज्वाला जागरित की वहॉ दूसरी ओर वे स्वय सग्राम मे सेनानी बन कर लडे। उनका सहयोग क्रियात्मक और कलात्मक दोनो प्रकार का रहा है। उनकी रग-रग मे देशानुराग व्याप्त है। 'एक फूल की चाह' मे उनके कवि जीवन का सत्य मुखरित हो गया है। देश के कर्णधारो के प्रति उनके हृदय मे अपार श्रद्धा भरी है। बलिदान के इस अमर गायक ने सुप्तयुग-यौवन को जागरित करने के लिये सदा रणभेरियॉ ही बजाई है——वे बलिपथो को तराजू फेंक कर शत्रु के दॉत खट्टे करने के लिये ललकारते रहे है —

फक तराजू रे बलि—पथी!
सिर के कैसे सौदे-सट्टे?
बहुत किये मीठे मुँह जग के,
अब उठ आज दॉत कर खट्टे।

दो-दो बार कारावास हुआ, तिरसठ बार तलाशियाँ हुईं, अनेक यातनाएँ सही, फिर भी वे ब्रिटिश राज्य की अकड का कुआँ खाली करते रहे। अंग्रेजो के काले शासन के सन्मुख उनका सिर कभी नही झुका और न देश-सेवा के पथ पर उनके पैर ही डगमगाए। देश-प्रेम ही उनके जीवन और साहित्य का प्राण तत्व है। 'उनका सपूर्ण जीवन त्याग, देशानुराग, स्वाभिमान, वीरत्व, आत्म-सम्मान और बलिदान का अमर प्रतीक है।'

उनके कवि मे विरोधी तत्वो का समाहार है। सामाजिक धरातल पर जहाँ उनकी वाणी ज्वालामुखी बन कर चलती है, वहाँ जीवन के कुंज मे वही करुण यमुना बन कर अपने 'मनमोहन' को कातर स्वरो मे पुकारने लगती है। कभी तो उनकी वाणी स आग बरसने लगती है और कभी उनके 'प्राणो की मसोस' ही कविता बन जाती है। कभी वे अपने युग की जवानी को ललकारते है'—

> द्वार बलि का खोल
> चल, भूडोल कर दे,
> एक हिमगिरि एक सिर
> का मोल कर दे।
> मसल कर अपने
> इरादों सी उठा कर,
> दो हथेली है कि
> पृथ्वी गोल कर दे।
> रक्त है? या है नसो मे क्षुद्र पानी?
> जाँच कर, तू सीस दे देकर जवानी।

और कभी गाने लगते है—

> प्राणों की मसोस, गीतो की—
> कड़ियाँ बन-बन रह जाती है,

आँखो की बूँदे बूँदों पर
चढ-चढ उमड-घुमड आती है !

इस पद से स्पष्ट है कि उनके जीवन मे करुणा की एक अतर्धारा बह रही है जिसका उद्गम उनके व्यक्तिगत जीवन मे ही ढूँढा जा सकता है। उनके कवि के दो ही प्रधान रूप है––राष्ट्रकवि और करुण कवि। राष्ट्रकवि के रूप मे वे सामाजिक तद्रा के प्रति असतोष एव राजनीतिक परतत्रता के प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त करते है और करुण कवि के रूप मे व्यक्तिगत अभावो की अभिव्यक्ति करते है। कवि का राष्ट्रीय रूप समाज से सबधित है और करुण रूप स्वय अपने से। उनके कवि-जीवन के प्रभात मे ही पत्नी का देहान्त हो गया और तभी से वेदना के विषम भार को आजीवन ढोते रहे है और यत्र-तत्र यही वेदना गीत बन गई है। फलत हमे उनके व्यक्तित्व और काव्य मे वीर एव करुण भावनाओ का सपूर्ण समाहार मिलता है।

गद्य के क्षेत्र मे कवि माखनलाल एक विचारक के रूप मे अवतीर्ण हुए हैं। 'साहित्य देवता' एक तरह से उनके साहित्यिक विचारो का सग्रह है। विचारो की कलात्मक अभिव्यक्ति का कदाचित् यह सर्व प्रथम सफल प्रयास कहा जा सकता है। उनका कहानीकार अभी व्यवस्थित रूप से हिन्दी-ससार के सामने नही आया है। फिर भी जो थोड़ी बहुत कहानियॉ प्रकाशित हुई है उनसे निस्सदेह कहा जा सकता है कि वे एक उच्चकोटि के कहानीकार भी है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' की लोकप्रियता आपके सफल नाटककार होने का ज्वलत प्रमाण है। यद्यपि युग 'कृष्णार्जुन युद्ध' से पर्याप्त आगे बढ चुका है, फिर भी उसकी ऐति-हासिक लोकप्रियता को विस्मृत नही किया जा सकता। निष्कर्ष यह कि माखनलालजी का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे कवि, कहानीकार, नाटककार एव उत्कृष्ट गद्य-रचयिता है।

श्री गणेशशकरजी विद्यार्थी की प्रेरणा से वे पत्रकार भी बने। आज वे 'कर्मवीर' के संपादक हैं। 'प्रभा' और 'प्रताप' मे वे पहले ही काम कर चुके हैं। दो दशाब्दियो से आँधियो के बीच अपने अस्तित्व की रक्षा कर वर्तमान का पथ-प्रदर्शन करनेवाले 'कर्मवीर' ने उसके पौरुषवान सपादक का ही परिचय दिया है। वे एक सजग पत्रकार एव सफल सपादक है। 'कर्मवीर' के सपादकीय निर्भय, तीक्ष्ण एवअसिधार-सी प्रखरता लिये होते हैं। सपादकीय उत्तरदायित्व के कारण ही राजनीति आज भी उनकी श्वासो का ताना-बाना बनी हुई है-—

> **सखे, बता दे कैसे गा दूँ,**
> **अमृत मौत का दाम न हो,**
> **जगे एशिया, हिले विश्व औ',**
> **राजनीति का नाम न हो ?**

सच तो यह है कि देश की राजनीति मे उन्होंने सक्रिय सहयोग दिया है। देश की राजनीतिक निशा मे सतत जागरण की भेरियाँ बजा कर वे युवको में स्फूर्ति एव साहस का सचार करते रहे है। देश के गाढे दिनो मे यह देशप्रेमी सदा सग्राम मे रहा और आज वह 'कर्मवीर' का सपादक और 'माता' आदि का रचयिता है।

पत्रकार के रूप से भी अधिक अच्छा रूप उनके वक्ता का है। उनका भाषण जिसने सुना वही प्रभावित हुआ है। भाषा का सहज प्रवाह, सूझो की लबी सेना, पुष्ट विचार, ओज एन आकर्षण सभी उनके भाषण का शृगार करते हैं। उनके जैसे वक्ता हिन्दी के पास अभी भी कम है।

वे एक सफल वक्ता तो हैं ही, परतु घर मे मिलने-जुलने वालों से भी वे उनकी साहित्यिक भाषा मे ही बात करते है। उनकी बोल-चाल की भाषा और साहित्यिक भाषा मे बहुत कम अन्तर है। उन्होने साहित्य और दैनिक जीवन को अत्यत निकट ला दिया है।

उनका एक दूसरा रूप विह्वल भक्त का है। परतु उनकी भक्ति मे कुछ नवीनता है। वे तिलक-मालाधारी, पूजा-पाठ करने वाले, पोथी-पुराण सुननेवाले भक्त नही हैं। उनकी भक्ति एक कर्मयोगी की भक्ति है जिसने समस्त जीवन को ही पूजा का प्रतीक मान लिया है। उनके गीतो की गगा जिन श्रीहरि के चरणो का प्रक्षालन करती है, उनके प्राणो का पथिक कठिन कर्म-भूमि मे तपस्या के पथ द्वारा उन्ही चरणो तक पहुँचने के लिए व्याकुल है। देश-प्रेम उनके लिए भगवान की भक्ति है, देश-सेवा भगवान की पूजा और देश के लिए बलिदान होना भगवान की आराधना।

मध्यप्रात के अनेक कवियों के, साहित्य-सेवियो के, वे प्रमुख प्रेरणा केन्द्र रहे है। इस एक दीप से अनेक दीप प्रज्वलित हुए है, यह बात जनता भी जानती है।

कविता की "धर्मशाला से घबडाने और भीड से परेशान होने की भीरु वृत्ति लिए" यह कवि इस धर्मशाला मे अलग खड़ा रहा और अलग ही रहना चाहता था, परतु श्रद्धालुओ एव शिष्यो के आग्रह ने अत मे इन्हे भी 'प्रकाशन के चौरास्ते' पर आने के लिए विवश कर दिया। इसी विवशता के फलस्वरूप आज वे 'कृष्णार्जुन युद्ध', 'साहित्य देवता', 'हिमकिरीटिनी', 'हिमतरगिनी' एव 'माता' के रचयिता कहे जाते है।

उपर्युक्त विवेचन का यह अर्थ नही है कि माखनलालजी के व्यक्तित्व के ये रूप एक दूसरे से पृथक है। ये समस्त रूप सयुक्त होकर एक सयोजित व्यक्तित्व का निर्माण करते है। वे देशभक्त, प्रेमी साहित्यकार, पत्रकार, भक्त एव वक्ता एक साथ ही रहे है। मातृभूमि के लिए जहाँ वे 'मरण त्यौहार' मनाने के लिए तत्पर रहे, वही अपने 'राजा' के एक एक सपने पर सौ सौ जग न्यौछावर भी करते रहे है। सपादन कार्य करते हुए भी उन्होने साहित्य-पूजा बद नही की। तात्पर्य यह कि वे किसी भी विशेष रूप मे रहे, अपने सपूर्ण व्यक्तित्व के साथ ही रहते है। उनके साहित्यिक गद्य मे उनका वक्ता बोलता है और उनके भाषण मे उनका

गद्यकार। श्री दिनकरजी के शब्दो मे, "पडित माखनलालजी चतुर्वेदी शरीर से योद्धा, हृदय से प्रेमी, आत्मा से विह्वल भक्त और विचारो से क्रान्तिकारी है। किन्तु, साहित्य मे उनके व्यक्तित्व के ये चार गुण अलग-अलग प्रतिबिम्बित नही होते, साधना की आग मे पिघल कर सभी एकाकार हो जाते है। उनकी कविताएँ उनके इन चार रूपो की मिश्रित व्यजना है। भक्त और प्रेमी साधारणत योद्धा और क्रान्तिकारी से कुछ भिन्न होते है, किन्तु, जब हृदय और आत्मा ने माखनलालजी को कवि बनने पर मजबूर कर दिया, तब शरीर और विचार ने भी कवि के सामने अपने मत्थे टेक दिए और चारो धाराएँ मिल कर एक ही प्रवाह मे बहने लगा।" (मिट्टी की ओर)
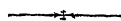
रचनाओं की पृष्ठ-भूमि

रचनाओं की पृष्ठ-भूमि

राजनीतिक पृष्ठ भूमि—

भारत के स्वतन्त्रता-सग्राम को हम दो व्यक्तियो——लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी——के पीछे बाँध सक्ते है। सन् १९२० के पहले तिलक युग और उसके पश्चात् गाँधी-युग माना जा सक्ता है। इन दोनों व्यक्तियो के आसपास ही देश की राजनीति केन्द्रित रही और इनसे साहित्य ने भी पर्याप्त प्रेरणा ली।

१९०० ईसवीं तक यह स्पष्ट हो गया कि अग्रेज भारत का शोषण करने के लिये ही आए है। लार्ड कर्जन की कठोर नीति से यह बात और भी अधिक निश्चित रूप से सिद्ध हो गई। इसी समय विश्व मे कुछ ऐसी घटनाएँ अवतीर्ण हुईं जिनसे भारत की राष्ट्रीय चेतना को बहुत बल मिला। जापान की रूस पर विजय ने भारतीयो मे आत्म विश्वास उत्पन्न किया कि वे भी अग्रेजो को भारत से बाहर निकाल सकते है। अफ्रीका के बोअर युद्ध, तुर्कों की यूनानियो पर विजय एव निकट पूर्व के देशो मे ईसाइयो की हत्या ने यूरोप की अजेय शक्ति के प्रति अनास्था को जन्म दिया। भारतीयो के मन मे भी उत्साह की तरग फैल गई और वे सास्कृतिक तथा सुधारवादी कार्यो का आवरण छोड कर सीधे-सीधे राजनीति मे भाग लेने लगे। इटली के स्वतन्त्रता युद्ध, आयरलैड के 'होम रूल' आन्दोलन तथा फ्रास की राज्यक्रान्ति के इतिहास ने उनकी देशप्रेम की जलती हुई ज्वाला मे घृत का काम किया। निष्कर्ष यह कि देश मे एक राष्ट्रीय चेतना जागरित हो गई और देशवासी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये कटिबद्ध होकर राजनीति के रणागण मे कूदने लगे।

२८ दिसम्बर सन् १८८५ ईसवी मे सहयोग एव साम्राज्य-निष्ठा की नीव पर वैध आन्दोलन की नीति को लेकर काग्रेस की स्थापना हो गई

थी। आगे चल कर सन् १६०७ मे काग्रेस मे दो दल हो गए--नरम दल और गरम दल। नरम दल वाले ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य को ही अपना लक्ष्य और वैधानिक कार्यों को अपना साधन मानते थे। ये शात उपायो से ही काम लेना चाहते थे। सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक किसी भी क्षेत्र मे क्रान्ति इन्हे रुचिकर न थी। कानून के राज्य को धक्का देना उनका ध्येय न था। नरम दल के वैध-नीति जन्मदाता श्री रानडे माने जाते है और आगे भी उनके पट्टशिष्य गोखले के नेतृत्व मे लाला लाजपतराय, मोतीलाल नेहरू महामना मदनमोहन मालवीय, फीरोजशाह मेहता, दीनशावाचा, सुरेन्द्र-नाथ बनर्जी आदि नेता इसी नीति को अपनाकर चलते रहे। ये लोग ब्रिटेन से सबध बनाए रखना आवश्यक समझते थे, क्योकि ये उच्च मध्य-वर्ग के थे जो ब्रिटिश शासन, शिक्षा और सस्कृति की देन थी। निम्न मध्य वर्ग इनसे सतुष्ट न हो सका। जब सन् १६१४ मे काग्रेस पर गरम दल का प्रभुत्व छा गया, सन् १६१८ मे गाँधी जी भी उसमे आ गये और उसमे निम्न मध्य वर्ग का पूर्ण प्रभाव स्थापित हो गया तो उदारपथी नरम दल वाले लोगो ने काग्रेस से अलग होकर 'लिबरल फेडरेशन' के नाम से अपनी अलग सस्था बना ली।

क्रातिकारी गरम दल वालो मे दो प्रकार के लोग थे--हिंसावादी क्रातिकारी और अहिंसावादी क्रातिकारी। हिंसावादी क्रातिकारियो मे अधिकतर वे बगाली थे जिन पर विपिनचद्र पाल, रासबिहारी घोष और अरविन्द घोष का प्रभाव था। उपर्युक्त नेताओ ने भारतमाता को काली के रूप मे देखा और यह भावना जागरित की कि माता आज विदेशियो के बधन मे है। उसे हिंसात्मक तरीके से मुक्त करना चाहिये क्योकि काली रक्त की प्यासी है। श्री अरविन्द घोष ने राष्ट्रीयता को आध्यात्मि-कता का रूप दिया और कहा कि हमारे जीवन का उद्देश्य ही प्रत्येक

क्षेत्र मे स्वतन्त्रता की प्राप्ति है। उन्होने राष्ट्रीयता को स्वय ईश्वर बतलाया और स्वतत्र होने के लिये देशवासियो का आह्वान किया कि "तुम्हारे मार्ग मे रुकावट डालने वाली शक्ति कितनी ही बडी क्यो न हो, तुम चिन्ता न करो। 'तुम स्वतत्र हो' यह परमेश्वर का आदेश है और तुम्हे स्वतन्त्रता प्राप्त करनी ही चाहिए यदि तुमने आत्मस्वरूप को पहचान लिया तो तुम्हे डरने जैसी कोई बात नही है यह कार्य हमारा नही है—हम से भी बढकर एक प्रचडशक्ति हमे आगे बढा रही है और वह हमे तब तक प्रेरणा देती रहेगी जब तक हमारे सब बधन टूट न जॉय और हिन्दुस्तान सारी दुनियॉ मे एक स्वतत्र देश न बन जाय।" इस आध्यात्मिक राष्ट्रवाद ने देश मे एक नए ही प्रकार के उत्साह का उत्स बहा दिया। जो जो इस भावना से प्रेरित हुए वे सुख दुःख के द्वन्द्व से मुक्त हो गए। देश के लिए कष्ट उठाने मे ही वे अपने जीवन को सार्थक समझते और उसमे ही पारमार्थिक आनन्द का अनुभव करते थे। उनके लिए कोई भी काम कठिन न था। आपत्ति को वे अन्तःकरण की सबसे प्रचड शक्ति को उद्दीप्त करनेवाली मानते थे, आध्यात्मिक मोक्ष तथा राष्ट्रीय स्वातत्र्य मे उनके लिए कोई भेद न था। वे आपत्तियो का सामना देह-ज्ञान भूलकर करते थे। श्री अरविन्द घोष ने भारतीय राष्ट्रीयता को परमात्मा की एक अवतार-शक्ति कहा है*। इनके विचारो पर वेदान्त तथा गीता का बहुत प्रभाव था। योगिराज अरविन्द ने राजनीति को आध्यात्मिक धरातल पर पहुँचा दिया था। हिन्दी के राष्ट्रीय कवियो मे माखनलाल चतुर्वेदी ऐसे कवि है जिनके

---

* "Nationalism is a religion that comes from God Nationalism cannot die because it is God who is working in Bengal God cannot be killed, God cannot be sent to gaol "

काव्य मे इस आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का पर्याप्त प्रकाशन हो पाया है। श्री अरविन्द घोष क्रान्ति तो चाहते थे, परन्तु हिंसात्मक क्रान्ति उन्हे रुचिकर न थी।

देश मे एक दल ऐसा भी था जिसका विश्वास इस निःशस्त्र क्रान्ति-मार्ग मे नही था। वह दल सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा देश को स्वतंत्र करना चाहता था। श्री अरविन्द घोष के भाई वारीन्द्रकुमार घोष, स्वामी विवेकानद के भाई भूपेन्द्रनाथ दत्त, विनायकराव सावरकर, श्यामजीकृष्ण वर्मा इन क्रान्तिकारियो के नेता थे। 'युगातर', 'सध्या' आदि पत्रो के द्वारा षड्यन्त्रमयी सशस्त्र क्रान्ति का आदोलन फैलाया गया। केलिफो-र्निया मे लाला हरदयाल ने 'गदर दल' का सगठन भी इन्ही ध्येया को लेकर किया। सन् १६०७ से तीन-चार वर्ष तक देश की राजनीति मे सशस्त्र क्रान्ति का बडा जोर रहा। अनेक अग्रेज अधिकारियो की हत्या की गई, गाडियॉ उलटाई गई, बम छोडे गए। परतु यह सशस्त्र क्रान्ति केन्द्रीय सगठन के अभाव एव उच्च वर्ग के असहयोग के कारण सफल न हो सकी।

दूसरे गरमदलवाले अहिंसावादी थे और निःशस्त्र क्रान्ति मार्ग पर चल रहे थे। इनके आन्दोलन को भी धर्म से बडा बल मिला था। महाराष्ट्र मे लोकमान्य तिलक ने गणपति उत्सव, शिवाजी की जयन्ती, गोरक्षिणी-सभा आदि का प्रचार किया। इन उत्सवो एव आदोलनो से भारतीयो के मन मे धर्म भावना एव ऐतिहासिक विभूतियो के प्रति पूज्य भाव जागरित हुआ। इन नवोदित भावनाओ के बल को लोकमान्य ने राजनीति की ओर मोड़ दिया। देश की प्रसुप्त राष्ट्रीय भावना को जगाने के लिए ये धार्मिक उत्सव बडे सहायक सिद्ध हुए। काग्रेस के काम का जन साधारण मे इनके द्वारा बडा व्यापक प्रसार हुआ। लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' मे गीता की नयी व्याख्या उपस्थित की और निष्काम कर्ममार्ग का अवलम्बन करने के लिए जनता को प्रेरणा दी।

पजाब मे आर्य-समाज का बड़ा प्रभाव था। लाला लाजपतराय और स्वामी श्रद्धानद (मुशीराम) आर्य-समाज से ही काग्रेस मे आए थे। ये राष्ट्रीयता और हिन्दू-पुनरुत्थान का साथ-साथ प्रचार करते रहे। स्वामी रामतीर्थ ने अमेरिका मे भी जाकर वेदात का झडा ऊँचा कर दिया। वेदात और भारतीय अध्यात्मवाद के व्यापक प्रचार के वे भी एक बडे कारण है। मद्रास और उत्तर-भारत मे थियॉसॉफिकल सोसाइटी ने हिन्दू-पुनरुत्थान की भावना जागरित की। इस प्रकार हम देखते है कि राजनीति मे उग्र विचार धारा को माननेवाले अधिकतर हिन्दू-पुनरुत्थान के विश्वासी और अध्यात्मवादी थे। यही आध्यात्मिकता और पुनरुत्थान की प्रवृत्ति साहित्य मे भी राष्ट्रीयता के साथ मिल कर चली आई।

लोकमान्य तिलक देश के युवको मे क्राति की भावना जगाकर काग्रेस को शक्तिशाली बनाना चाहते थे। बहिष्कार-योग की नि शस्त्र क्रान्ति के द्वारा ब्रिटिश राजनीतिज्ञो को काग्रेस की माँगे मजूर करने के लिए बाध्य कर देना उनकी नीति थी। पूर्ण स्वराज्य उनका ध्येय था, बहिष्कार साधन और नि शस्त्र क्रान्ति साधना मार्ग। उन्होने अपने दल की नीति को स्पष्ट करते हुए कहा था कि "हमारे पास एक प्रबल राजनैतिक शस्त्र है, वह है बहिष्कार। हमारा मुख्य मुद्दा यह है कि नियन्त्रण की सब सत्ता, हमारे घर की सब कुजी हमारे ताबे रहनी चाहिए। स्वार्थ-त्याग और आत्म-सयम के द्वारा विदेशी-सरकार को हम पर शासन करने मे सहायता न देना हमारे बहिष्कार का अर्थ है। लगान-वसूली, शाति-रक्षा, विदेशो को पैसा ले जाना, न्याय-दान आदि मे हम सरकार की सहायता न करेगे।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि लोकमान्य का मार्ग वैध-राजनीति और सशस्त्र क्रान्तिकारी राजनीति के बीच नि शस्त्र क्रान्ति की राजनीति का था। अग्रेजो की कठोर दमन-नीति, देश के नेताओ को कारावास और १६०५ के बग-विभाजन से देश का वातावरण अत्यत क्षुब्ध हो उठा। प्रथम

विश्व-युद्ध (१९१४–१९१८) के समय अग्रेजो ने आश्वासन दिया कि युद्ध-समाप्ति पर भारत स्वतत्र कर दिया जायगा। इसलिए देश और देश के नेताओ ने अग्रेजो को खुले हाथ सहायता दी। भारत ने लगभग साढे तीन लाख सैनिक दिए जिन्होंने पन्द्रह दिन के भीतर पेरिस को पदाक्रान्त करने की धमकी देनेवाले कैसर का घमड चूर कर दिया। देश ने गौरव का अनुभव किया और ठीक समय पर अग्रेजो को सार्थक सहायता पहुँचाने से उसे आशा बँधने लगी। तिलक जैसे नेता भी युद्ध के पहले जेल से छूट कर आ गए थे। युद्ध समाप्त हुआ। अमेरिका ने फिलिपाइन्स को स्वतन्त्र कर दिया। परन्तु, भारत के गले मॉटेग्यु-चेम्सफोर्ड-सुधार का फूटा ढोल मढा गया। इस सुधार का सारे देश ने एक स्वर से विरोध किया। लोकमान्य ने 'स्वराज्य-सघ' की स्थापना की जिसका काम काग्रेस की मॉग के लिए साल भर तक लगातार आन्दोलन करते रहना था। मद्रास में डा० बिसेन्ट ने भी एक स्वराज्य-सघ की स्थापना की और स्वदेशी-शासन (होमरूल) के लिए आन्दोलन किए। परन्तु, सरकार ने उन्हे भारत-रक्षा-कानून के अन्तर्गत नजरबन्द कर दिया। इस नजरबन्दी से भी देश में एक बडे जोर की लहर उठी और राजनीति के आकाश मे विदेशी बहिष्कार, राष्ट्रीय-शिक्षा, त्याग-पत्र, सत्याग्रह आदि के बादल मॅडराने लगे। इस देशव्यापी अशाति ने साहित्य मे राष्ट्रवाद को जन्म दिया।

इसी समय गॉधीजी ने भारतीय राजनीति मे सत्याग्रह के सफल सिद्ध अस्त्र के साथ प्रवेश किया। गॉधीजी ने अपनी नीति को अत्यन्त व्यापक कर लिया था। उनमे नरम दल और गरम दल दोनो के तत्वो का समावेश था। एक ओर अपने को गोखले का शिष्य घोषित कर और प्रत्येक आदोलन के पश्चात् अग्रेजो से समझौता करने के लिए तैयार रहने की नीति को अपनाकर वे नरम दलवालो को मिलाने मे सफल हुए, तो दूसरी ओर पग-पग पर अग्रेजो से असहयोग कर के वे तिलक-दलवालो के श्रद्धा-

भाजन बने। सिद्धात में वे गोखले के शिष्य थे, व्यवहार मे तिलक के सहयोगी। इसलिए इन दलो की संगठित शक्ति ने उनका साथ दिया। निम्न वर्ग पर नेताओ का ध्यान अभी तक नही जा पाया था। उसको साथ लेकर चलने के कारण उनके आन्दोलन को अभूतपूर्व व्यापकता और सफलता प्राप्त हुई, विश्व की मान्य बौद्धिक चेतना मानवतावाद को अपने समस्त राजनीतिक एव सामाजिक आन्दोलनो का आधार बना कर उन्होने सारे विश्व का ध्यान आकर्षित कर लिया था, उनके अहिंसा, सेवा, सत्य, समता, सर्वोदय आदि के सिद्धात भारत के मन-प्राणो मे आदि-काल से प्रविष्ट थे। इसलिए गाँधीजी मे उनकी प्रतिमूर्ति देखकर सारा भारत उनके पीछे खड़ा हो गया। उन्होने युग की नाड़ी को पहचाना और देश को सत्याग्रह की औषधि दी।

जब माटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधार के साथ ही रोलट-एक्ट भी जले पर नमक छोड़ने के लिए निकल गया तो गाधीजी ने इस कानून को तोडने के लिए सत्याग्रह प्रारभ किया। परन्तु कई स्थानो पर दगे हो गए जिन मे कई गोरे मारे गए। गाधीजी ने सत्याग्रह बद कर दिया क्योकि देश ने अभी अहिंसा के मर्म को ठीक से नहीं समझा था। परन्तु, अमृतसर के जालियानवाला बाग मे अग्रेजो की पैशाचिक लीला देख कर सारा देश आन्दोलित हो उठा। इस पजाब हत्या-काण्ड को लेकर गाधीजी ने असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया। दक्षिण अफ्रीका मे गाधीजी की सफलता से मध्य वर्ग को यह विश्वास हो गया था कि अग्रेजो की भौतिक शक्ति का सामना करने के लिए उसके पास आत्मिक शक्ति का अमोघ अस्त्र है। तिलक ने राजनीति मे धर्म को प्रविष्ट कराया था, गाँधीजी ने राजनीति को आध्यात्मिकता से अनुप्राणित कर दिया। इस नये बल से शक्ति पाकर सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन की धारा अत्यन्त वेगवती हो उठी। देश के समस्त वर्ग निर्भय होकर आन्दोलन मे भाग लेने लगे,

१६२२ में महात्माजी ने बारदोली मे सत्याग्रह प्रारभ करने का निश्चय किया , परन्तु, चौराचौरी में जनता ने पुलिस थाने को जला दिया जिसमे कई पुलिसवाले जल मरे। गॉधीजी ने इस घटना को लेकर आदोलन स्थगित कर दिया और रचनात्मक कार्यों में सलग्न हो गए। असहयोग आदोलन की असफलता से देश मे बड़ी निराशा फैली। इस निराशा के प्रभाव को दूर करने के लिए सन् १६२४ मे स्वराज्य-पार्टी का निर्माण हुआ जिसने केन्द्रीय धारा सभा के भीतर घुस कर सरकार का बहुत विरोध किया। १६२२ मे केनिया मे गोरो ने भारतीय प्रवासियों को बराबरी का अधिकार देना मना कर दिया था। जब नमक और भारतीय कपडे पर लगी हुई चुगी दूनी कर दी गई तो भारत के सभी दलो ने इन अत्याचारो का एक मत से प्रतिरोध किया, जिस पर सरकार ने घोर दमन की नीति जारी कर दी। १६२७ मे भारतीय शासन-विधान मे सुधार करने के लिए साइमन-कमीशन बैठा, जिसमे एक भी भारतीय नही रखा गया। देश भर मे इसका घोर विरोध हुआ। काग्रेस ने निश्चय कर लिया कि साइमन कमीशन के भारत आते ही उसका बहिष्कार हो, हड़ताले की जाएँ। इसी समय नवयुवको का एक दल देश मे तैयार हो गया था जो काग्रेस की नरम-नीति से सतुष्ट न था। श्रीनिवास अय्यगर, सुभाषचद्र बोस, जवाहर-लाल नेहरू आदि ने काग्रेस के भीतर ही यूथलीग का आदोलन प्रारभ कर दिया। इन्होने पूर्ण स्वराज्य की मॉग की। १६३० के लाहौर के अधिवेशन मे काग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य को अपना अतिम लक्ष्य स्वीकार कर लिया। साइमन-कमीशन के विरोध से रुष्ट होकर सरकार ने फिर दमन प्रारभ किया। लाहौर मे प्रदर्शनकारियो पर लाठी चार्ज हुआ जिसमे लाला लाजपतराय की मृत्यु हो गई। इस घटना से सारा देश क्राति की लपटो मे जलने लगा। १६३० मे भगतसिंह ने असेम्बली मे बम फेका। किसान और मजदूरो ने भी जगह-जगह पर हड़ताले कर दी। इसी समय

बारदोली में भूमि-कर बढाने के विरोध में सरदार पटेल ने सत्याग्रह प्रारभ कर दिया। अत मे विवश होकर इरविन सरकार को अपनी आज्ञा वापिस लेनी पड़ी।

सन् १६३० मे सत्याग्रह आदोलन फिर प्रारभ हुआ। नमक का कानून तोडा गया, विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार हुआ और कई स्थानो पर लगानबदी आदोलन भी हुए। सरकार ने भी इन आदोलनो को रोकने के लिए खूब अत्याचार किए। निहत्थो पर गोलियाँ चलाई, लाठी चार्ज किए, लाखो सत्याग्रहियो को जेल मे ठूँस दिया, अनेक काले कानून निकाल कर समाचार-पत्रो पर रोक लगा दी। लार्ड विलिंगडन ने इरविन के स्थान पर आते ही काग्रेस को गैरकानूनी सस्था घोषित कर दिया, भगतसिंह को फाँसी पर लटका दिया। यह आदोलन देश-व्यापी था। इसमे देश के शिक्षित और अशिक्षित सभी वर्ग के लोगो ने भाग लिया था। परतु, यह आदोलन सरकारी दमन के आगे टिक न सका। १६३२ मे आदोलन की शक्ति अत्यत क्षीण हो गई। आदोलन की इस असफलता से देश मे पुन बड़ी निराशा छा गई। यही निराशा साहित्य मे अनेक रूपो मे व्यक्त हुई है। धीरे-धीरे काग्रेस के सब नेता छोड दिए गए। १६३७ मे आम-चुनाव हुआ जिसमे अधिकाश प्रातो मे काग्रेस का बहुमत रहा। काग्रेस ने प्रातो मे अपनी सरकार बनाने का निश्चय किया। काग्रेसी मत्रि-मडल तो बन गए। पर भारत सरकार उनके रोजमर्रा के कामो मे भी अडगे डालने लगी। इसलिए १६३६ मे काग्रेसी मत्रि-मडलो ने त्याग पत्र दे दिया और इन सब प्रातो मे राजप्रमुख का शासन हो गया। इसी समय यूरोप मे दूसरा महायुद्ध प्रारंभ हो गया।

इन बीस-इक्कीस वर्षो मे राष्ट्रीय आदोलन बार बार असफल हुआ। इस असफलता से कुछ दिन के लिए तो वातावरण निराशा से भर जाता था, पर, फिर वह और भी अधिक उग्र रूप से उठता था। बाद मे देश मे

नया उत्साह और नयी शक्ति दिखाई पड़ने लगती थी। इन बीस वर्षों को दो भागों में बाँट सकते हैं। १९१८ से १९२८ तक पूँजीवाद ने राष्ट्रीय आंदोलन का साथ दिया। परतु, १९२८ के बाद राष्ट्रीय क्षेत्र मे पूँजीवाद का सहयोग शिथिल पड गया, क्योंकि ट्रेड यूनियन, यूथलीग, कम्युनिस्टो का आंदोलन आदि विरोधी शक्तियो ने जोर पकड़ लिया था। पहले युग मे राजनीति मे आध्यात्मिकता और भावुकता अधिक थी, दूसरे युग मे बौद्धिकता और जनशक्ति का प्राबल्य हो गया। पहले युग मे औद्योगिक क्रान्ति के लक्षण दिखलाई पड़े, दूसरे युग मे किसान और मजदूर क्राति के। दूसरे युग मे पूँजीवाद की ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियाँ सामने आने लगीं। परतु, जनवाद और पूँजीवाद अपने समान शत्रु साम्राज्य-वाद से मिल कर लडते रहे।

सास्कृतिक क्षेत्र मे भी यह युग सच्चे अर्थ मे नव्युत्थानवादी है। गाँधीजी के मानवतावाद ने राजनीतिक समानता, अछूतोद्धार, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, धार्मिक समन्वय, अहिसा, सत्याग्रह आदि का रूप धारण किया। दूसरी ओर रवीन्द्रनाथजी मे यही मानवतावाद विश्व-सस्कृति, आध्यात्मिकता, अन्तर्राष्ट्रीयता, प्राचीन और नवीन शिक्षा पद्धति के समन्वय के रूप मे दिखलाई पडा। गाँधीजी ने हरिजन-आदोलन के द्वारा निम्नश्रेणी के लोगों को भी समाज मे उचित स्थान दिलाने का प्रयास किया। गाँधीजी और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ दोनो एक दूसरे के पूरक है। इन दोनो युग-पुरुषो का हिन्दी-साहित्य पर बडा प्रभाव पड़ा है। लगभग सभी कवियो मे कुछ न कुछ गाँधीवाद और मानवतावाद मिल ही जाता है। गाँधीजी के सिद्धातो मे, जैसा मै ऊपर भी उल्लेख कर आया हूँ, अहिंसा, समता, विश्वबधुत्व आदि प्रमुख है। हिन्दी-साहित्य पर भी इन सिद्धातो की छाया पड़ी है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि आलोच्य काव्य का निर्माण एक ऐसे

युग मे हुआ, जब राष्ट्रीय चेतना सब से सजग और क्रियाशील रूप मे वर्तमान थी और साहित्य पर उसका प्रभाव पडना अनिवार्य था। वैसे हिन्दी कविता मे राष्ट्रीयता का प्रथम उन्मेष हमे भारतेन्दु हरिश्चद्र (१८५०-८५) के काव्य में ही दिखलाई देता है और १९१० तक बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक प्रभृति अनेक कवि इस भावसवेदना को काव्य का परिष्कृत रूप देने मे समर्थ हो गए थे। एक तरह से हिन्दी कवियो की राष्ट्रीयता काग्रेस-नेताओ की राष्ट्रीयता से अधिक सशक्त और उग्र थी। परतु, राष्ट्रीय काव्य का भावनापरक रूप हमे गॉधी जी के राजनीतिक क्षेत्र मे पदार्पण करने के बाद ही प्राप्त होता है। गॉधी जी की आध्यात्मिक राष्ट्रीयता, उनके सत्य-अहिंसा के सदेश और उनके देश-व्यापी आदोलनो मे काव्य के अनेकानेक उपकरण स्वय इकट्ठे हो गए थे। राष्ट्रीयता उन दिनो सहृदय भारतीयो की श्वासोच्छ्वास बन गई थी। फलस्वरूप राष्ट्रीय काव्य का सबसे सुन्दर रूप हमे गॉधी-युग (१९१९-१९४७) मे ही प्राप्त होता है। माखनलाल जी का राष्ट्रीय काव्य इस युग के राष्ट्रीय काव्य का विशद और पुष्ट अग है। वह सच्चे अर्थों मे नए युग का वीर काव्य है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि—द्विवेदी युग —

उपर्युक्त देश-व्यापी आदोलन का यहॉ के साहित्य पर भी प्रभाव पडा। नरम दल के नेताओ ने जब अॅग्रेजी राज्य को ईश्वर की कृपा का परिणाम बतलाया और आवेदन-निवेदन की नीति से अपना काम चलाने का निश्चय किया, तो साहित्य के नेताओं ने भी यही मार्ग पकडा। दादा भाई नौरोजी और गोखले जैसे नेता एक ओर तो राष्ट्रीय जागरण मे सलग्न थे, और दूसरी ओर वे राजभक्ति का उपदेश भी दे देते थे, एक ओर वे ब्रिटिश राज्य को भगवान की कृपा का फल मानते थे, तो

दूसरी ओर उसके शासन की कटु आलोचना भी करते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समसामयिक लेखकों में यह दुहरी नीति स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। ये लेखक राज्याधिकारियों के प्रति राज भक्ति का भी प्रदर्शन करते हैं और देश-भक्ति में डूब कर वर्तमान दुरवस्था पर आँसू भी बहाते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दुओ को 'डिसलायल' कहने वालो को 'मूढ' कहते हैं और अग्रेजो के शाति और स्वातंत्र्यमय समय मे उन्नति न करने वाली रियासतो को देख-देख कर कुढते है। परतु, अँग्रेजो के राज्य में दिन-दिन दरिद्र होते हुए भारत को देख कर वे अँग्रेजी शासन की कटु आलोचना करते हैं। भारत के धन का विदेश जाना उन्हे खटकता है। इस प्रकार भारतेन्दु-युग में देश-भक्ति और राज-भक्ति की दो धाराएँ समानातर बहती रही।

परतु, उन्नीसवी शताब्दी के अत तक भारतवासियो को यह अच्छी तरह से ज्ञात हो गया कि अँग्रेज उनका शोषण करने के लिए ही आए हैं, उनसे किसी प्रकार के सुधारो की आशा करना व्यर्थ है। वे भारत की नही, ब्रिटेन की उन्नति चाहते है। उसी समय देश का नेतृत्व उच्च-मध्यवर्गीय नेताओ के हाथ से हट कर मध्य वर्ग के नेता तिलक के हाथ म आ गया। ये आवेदन-निवेदन की नरम-नीति को न अपना कर प्रतियोगी सहयोग की नीति को लेकर चले। लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' और 'मराठा' के द्वारा देशवासियो की सोई हुई देश-भक्ति को जागरित किया, उन्हे अपने अधिकारो का स्मरण दिलाया और उनके हृदयो मे स्वातत्र्य-प्रेम की भावनाये भरी। नेताओ के सतत आश्वासन एव पूर्व-निर्देशित कतिपय विश्व-घटनाओ से देशवासियो में विश्वास उत्पन्न होने लगा कि वे भी स्वतत्र हो सकते है। यही देशव्यापी जागरण हिन्दी-साहित्य मे राष्ट्रवाद के रूप मे अवतरित हुआ। श्री सत्यनारायण कविरत्न के 'भ्रमरगीत' तथा मैथिलीशरण जी की 'भारत भारती' मे यह भावना

स्पष्ट रूप से सामने आई है। इसका समृद्ध स्वरूप माखनलाल जी की रचनाओ में भी मिलता है।

देश के जागरित होते ही उसकी दृष्टि अपनी वर्तमान दयनीय दशा पर गई। वह परतन्त्रता की वेडियों में जकडा था। दरिद्र-नारायण डडा ठोक-ठोक कर चारों कोने घूम रहे थे। समाज भी साम्प्रदायिकता, वर्ग-भेद, छुआछूत, रूढियो आदि से पीड़ित था। देश की शक्ति नष्ट हो गई थी, परन्तु उसका शोषण फिर भी चल रहा था। भारत का अन्नदाता किसान तो ककाल-शेष हो गया था। इस युग के साहित्यिक की दृष्टि भी इस ओर गई। कवियो ने वर्तमान दुरवस्था पर आँसू बहाए, देशवासियो की मोह-निद्रा पर असतोष प्रकट किया और देश को उठने के लिए ललकारा। द्विवेदी-पूर्व-युग के लेखको—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रेमघन, बालमुकुन्द गुप्त आदि—मे यह यथार्थवादिता अकुरित तो हो गई थी और 'भारत-भारती' मे आकर वह पर्याप्त रूप से स्पष्ट भी हुई, परन्तु उसका वास्तविक विकास प्रेमचन्द जी के उपन्यासो मे हुआ। प्रेमचन्दजी ने अपने युग का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है। उनके उपन्यासो को पढने से देश की तत्कालीन स्थिति का वास्तविक चित्र सामने आ जाता है। राजनीतिक आन्दोलन, विविध सामाजिक समस्याएँ, निम्न वर्ग के प्रति किए गए दुर्व्यवहार, कृषक वर्ग का शोषण और अनेक सामयिक तथ्यों को उन्होंने अपने उपन्यासो मे बड़ी सच्चाई के साथ चित्रित किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्य इस युग मे जीवन के अत्यधिक निकट आ गया। साहित्य-मन्दिर पर आदर्श का मगल-कलश भले ही सुशोभित किया गया हो, परन्तु उसकी नीव मे यथार्थवाद के अनगढ रोडे ही श्रेयस्कर समझे गए। आधुनिक साहित्य में यथार्थवाद का यह आग्रह मनोविज्ञान से सपुष्ट होकर अपनी अवाछित आत्यन्तिक सीमाओ तक पहुँच गया है।

देशवासियो के मन से हीनता की भावना को दूर करने के लिए इस युग के कवियो ने गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण किया। अतीत के इन उज्वल चित्रो को देख-सुन कर देशवासियो मे अपनी सस्कृति, अपने देश और जाति के प्रति अभिमान की भावना जागरित हुई। उनके मन में भी स्वतत्र और शक्तिशाली बनने की बलवती इच्छा उत्पन्न हुई। आर्य-समाज वेदो के आधार पर भारत का अभ्युत्थान करने का लक्ष्य लेकर चल रहा था। स्वामी दयानन्द वेदो को ससार की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक और ससार के समस्त ज्ञान-विज्ञान का आश्रय-आधार मानते थे। उनके मत मे भारतीय अवनति का कारण वेदाध्ययन का अभाव था। इन बातो से भारतवासियो के मन में अतीत के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ और वे समझने लगे कि हमारी वर्तमान अवस्था कितनी ही हीन क्यो न हो, हमारा अतीत अत्यन्त गौरवपूर्ण एव महान् रहा है। इस प्रकार जातीय भावना के साथ ही साथ राष्ट्रीय चेतना भी जागरित हो चली। इसी समय डा० भडारकर और राजेन्द्र लाल मित्र जैसे विद्वानों ने अपने ऐतिहासिक अनुसधानो से अतीत के गौरव की पुष्टि की, जिससे लोगो को अपने विश्वासो के लिए दृढ आधार मिल गया। इस समय के प्रसिद्ध चित्रकार रविवर्मा ने भी अतीत के गौरवपूर्ण दृश्यो और घटनाओ को अपनी कला का विषय बनाया। द्विवेदी-युग के साहित्य मे जनता का यह जातीय जागरण स्पष्ट रूप से अकित हुआ है। भारत के स्वर्णिम अतीत का चित्रण करने मे गुप्त बन्धुओं ने अपनी समस्त श्रद्धा उडेल दी। 'भारत-भारती' की चित्ररेखा वेदो के पावन प्रदेश से चलकर, रामायण, महाभारत का स्पर्श करती हुई, भगवान अमिताभ की वदना कर विक्रमादित्य का स्मरण कराती हुई ऐतिहासिक वीर राणाप्रताप, छत्रपति शिवाजी को श्रद्धाञ्जलि चढाती है। श्री सियारामशरण का 'मौर्य्यविजय' भारत के अतुल

विक्रम का चित्रण करता है। प्रसादजी का 'महाराणा का महत्व' दिव्य औदात्य का परिचय देता है। 'भारत-भारती' के स्वर मे स्वर मिला कर अनेक स्फुट रचनाएँ भी लिखी गई। अतीत का उज्वल वातावरण चित्रित करने के लिए पौराणिक पुरुषो को लेकर महाकाव्यो की रचना भी की गई। हरिऔध जी का 'प्रिय-प्रवास' और मैथिली-शरणजी का 'साकेत' इस दिशा के उल्लेखनीय ग्रन्थ है। आगे चल-कर अतीत का यह अनुराग प्रसादजी के नाटको मे एव उनकी कविताओ में और भी अधिक तीव्रता के साथ व्यक्त हुआ। इस प्रकार हम देखते है कि द्विवेदी-युग के साहित्य पर भारत के गौरवपूर्ण अतीत का बड़ा व्यापक प्रभाव पडा है।

इस युग के कवियो ने पौराणिक पुरुषो को काव्य का विषय बनाया, परतु उनका वे पुराण-सम्मत लोकोत्तर रूप चित्रित न कर सके। इसका कारण था। अनेक दशाब्दियो तक लगातार अँग्रेजों के सपर्क में आने से पाश्चात्य वैज्ञानिक सस्कृति से भी भारतीय अवगत हो चले थे। यूरोपीय सस्कृति की सबसे बडी विशेषता उसकी बौद्धिकता है। जो वस्तु बुद्धि-ग्राह्य हो, वही उसे मान्य हो सकती है। पश्चिम प्रत्येक वस्तु को बुद्धि के काँटे पर तौल कर ही ग्रहण करता है। अँग्रेज विजेताओ एव शासको की सस्कृति का प्रभाव भारत पर पड़ना स्वाभाविक ही था। ज्यो-ज्यो पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव अधिकाधिक बढता गया, त्यो-त्यो बुद्धिवाद का रग भी गहरा होता गया। साहित्य भी इससे प्रभावित हुआ। फलस्वरूप समस्त पौराणिक पुरुषो को साहित्य मे देवत्व के सिंहासन से उतार कर मानवत्व की मृण्मयी भूमि पर बैठा दिया गया। अब राम और कृष्ण भगवान न रह कर 'मानव' मात्र हो गए। 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण एक कुशल नेता और समाज-सेवक के रूप मे चित्रित किए गए और गोवर्द्धन-धारण, कालिय-दमन, दावानल, तृणासुर,

बकासुर आदि की दैवी लीलाएँ बुद्धि-सम्मत होकर साधारण मानवीय रूप मे सामने आईं। 'साकेत' का ईश्वर-विश्वासी कवि भी युग-प्रभाव से सप्रश्न मगलाचरण करने लगा—"राम, तुम मानव हो, ईश्वर नही हो क्या?" यद्यपि साकेत मे कतिपय अतिमानवीय घटनाओ का चित्रण है, फिर भी उसके राम मानव ही अधिक है। ये सब बाते द्विवेदी-युग की बौद्धिक प्रवृत्ति का परिचय देती है।

देश की सोई हुई शक्ति को जगाने के लिए कवियो ने देश के महान् पुरुषो का चित्रण किया। उनके उदात्त चरित्रो से काव्य भी आदर्श के आलोक से प्रोद्भासित हो उठा। साहित्य के नेता महावीर प्रसाद द्विवेदी ब्राह्मण कुलोद्भूत, सस्कृत-सुशिक्षित, आदर्शात्मक प्रवृत्ति के पुरुष थे। साहित्य पर उनके व्यक्तित्व का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। पद्य ही नही गद्य पर भी उनके आदर्श की छाप स्पष्ट थी। लेखकगण तत्कालीन कुरीतियो को नष्ट कर जिस आदर्श-समाज की कल्पना करते थे, उसका भी चित्रण कर देते थे। प्रेमचदजी के उपन्यास इस बात के सु दर उदाहरण है। पूर्वपक्ष में वर्तमान जीवन के यथार्थ का चित्रण कर वे अपने उपन्यासो को वाछित आदर्श मे पर्यवसित कर देते थे। अपने उपन्यासो की इस प्रवृत्ति को उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कहा है। निष्कर्ष यह कि आदर्शवाद द्विवेदी-युग के साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

वाछित आदर्शों को जनता मे जागरित करने के लिए कवियो ने जहाँ एक ओर पौराणिक तथा ऐतिहासिक महापुरुषो का चित्रण कर प्रच्छन्न उपदेश दिया, वहाँ दूसरी ओर प्रत्यक्ष उपदेश शैली का प्रश्रय भी लिया है। वह युग ही जागरण का था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जागरण की पुकार मची हुई थी। राजनीति, समाज, धर्म आदि मे यही स्वर सुनाई दे रहा था। स्वामी विवेकानन्द और दयानद समाज की मोहनिद्रा को भग कर गए थे। कवियो ने भी युग के साथ स्वर मिलाया

और 'सरस्वती' की वीणा उपदेश की ध्वनियो से गूँज उठी। 'उपदेश-कुसुम,' 'शिक्षा-शतक,' 'शिक्षा-लता,' 'शिक्षा-सग्रह' आदि रचनाएँ उपदेश को ही लक्ष्य कर लिखी गई थी। हिन्दी के नव-निर्माण-काल में द्विवेदीजी के साहित्यिक निर्देश भी उपदेशो से कम न थे। इस युग के कवि ने नीति और धर्म के, कर्तव्य और कर्म के, शील और सदाचार के, लोक और परलोक के, उपदेशो से इस युग के काव्य को भर दिया है। विद्यार्थी-वर्ग को उपदेश देने से कदाचित् कोई कवि ही चूका होगा। साराश यह कि इस युग मे उपदेशात्मकता एक बडे परिमाण मे पाई जाती है।

उपदेशो के साथ ही इस युग के साहित्य में मर्यादा का भी एक विशिष्ट स्थान है। जब देश के सामने भारत के भविष्य का प्रश्न उठा तो नेताओ ने उसकी स्वर्णिम सस्कृति की ओर सकेत किया। भारत की सस्कृति सदैव मर्यादा के महत्व को मानती आई है। उसकी वर्णाश्रम-व्यवस्था मे मार्यादा का कितना महत्व है, यह सुधी-वृन्द से छिपा नही है। पारिवारिक जीवन मे यदि मर्यादा का पालन न किया जाय तो परिवार व्यवस्था का कोई अर्थ ही न हो। इसलिए इस युग के काव्य मे——और विशेष कर मैथिलीशरणजी के काव्य मे——मर्यादा का सुस्पष्ट स्वर सुनाई देता है। इस युग के अधिकाश कवि धार्मिक प्रवृत्ति के थे। दूसरे उन्होने भारत की सास्कृतिक भूमि को चित्रित करने का प्रयास भी किया था। इसलिए उनके काव्य मे भारतीय मर्यादा के मजु-मनोरम चित्रो का आना स्वाभाविक था।

इस युग के साहित्य मे एक और भी स्वर सुनाई देता है, वह है मानवतावाद (Humanitarianism) का स्वर। इसमे ध्वनियो का योग है। पाश्चात्य मानवतावाद, वेदात का अद्वैत और विश्व-कवि रवीन्द्र की वाणी ने मिलकर हिन्दी-साहित्य को इस विचार-रत्न की भेंट दी है। उन

दिनों पश्चिम में इस वाद की बड़ी चर्चा चल रही थी। स्वामी विवेकानद का अद्वैत-दर्शन भी व्यावहारिक क्षेत्र में आकर मानव-प्रेम में पर्यवसित हो गया था और इधर विश्वकवि की वाणी मे भी मानवतावादी स्वर गूँज उठे थे। हिन्दी पर भी इसका प्रभाव पड़ा और 'प्रिय-प्रवास' तथा 'साकेत' के नायक लोक-सेवक और विश्व-प्रेमी के रूप में चित्रित किये गए। मानवतावाद बुद्धिवाद का ही विकसित रूप था। यह मानव-मानव के साम्य और उनकी ऐहिक सुख-सुविधाओ के आधार पर खड़ा हुआ था। अपने शुद्ध आदर्शात्मक बौद्धिक आधार के कारण यह आधुनिक सस्कृति का मेरुदण्ड सिद्ध हुआ। इसीने आगे चल कर यथार्थवाद, प्रगतिवाद आदि का रूप ले लिया। अपने इन रूपों मे वह प्रेमचदजी, श्री सुदर्शन और कौशिकजी की कहानियो मे प्रस्फुटित हुआ। आगे गाँधीजी की विचारधारा ने मिल कर इसे और भी बल दिया और योगिराज अरविन्द के आध्यात्मिक विचारो से परिपुष्ट होकर आज यह धारा साहित्य का प्रधान अग बनी हुई है।

परतु, द्विवेदी-युग की नीरस, नीतिमूलक, इतिवृत्तमयी शैली अधिक दिन तक लोगों के मन को रमा न सकी। उसके स्थूल वस्तु-चित्रणों में 'व्यक्तित्व का स्वत समुत्थित उच्छ्वास' नही आ पाया। इसलिए कतिपय कवियो मे धीरे-धीरे एक नई स्वच्छदतावादी प्रवृत्ति का भी जन्म होने लगा था। प्रकृति-प्रेम, प्रेम के उन्मुक्त चित्रण, वैयक्तिक स्वातत्र्य, गीति-मयता आदि की ओर कवियो का ध्यान जाने लगा था। 'गीताजलि' के प्रभाव से हिन्दी साहित्य मे रहस्यमयता भी प्रविष्ट होने लगी थी। श्री रामचद्र शुक्ल, श्रीधर पाठक की कविताओं मे प्रकृति-प्रेम, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री मुकुटधर पाडेय, सियारामशरण जी की कविताओ मे वैयक्तिक विचारधारा का आभास मिलने लगा था। 'मिलन' और 'पथिक' जैसे खड-काव्यो ने स्वच्छदतावादी प्रवृत्ति का

द्वार खोल दिया था और मैथिलीशरण जी के गीतो मे रहस्यात्मकता, आत्मसमर्पण, भावावेश आदि दिखाई देने लगे थे। इस प्रकार हम देखते है कि आगामी छायावाद के बीज द्विवेदी-युग की भूमि मे ही पड चुके थे।

इस प्रकार राष्ट्रवाद, अतीत प्रेम, मानवता वाद, मर्यादा वाद, आदर्श वाद, बुद्धिवाद, यथार्थवाद, उपदेशात्मकता, और अत मे स्वच्छदता वाद द्विवेदी-युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कही जा सकती है। माखनलाल जी का काव्य द्विवेदी-युग की काव्य-भूमि को न अपना कर एक नई ही लीक स्थापित करता है, परतु उसकी क्रातिकारिता और नवीनता पूर्णत आत्मसात् करने के लिए द्विवेदी-युगीन काव्य-प्रवृत्तियो को बराबर सामने रखना होगा।

साहित्यिक पृष्ठभूमि—छायावाद युग—

दिनकरजी के शब्दो मे, "छायावाद हिन्दी मे उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था।" यहाँ पर आकर कवि ने अपनी सैकड़ो वर्षो की प्राचीन परपरा को अस्वीकार कर दिया और अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए काव्य को माध्यम बनाया। कल्पना मे, चिन्तन मे, अनुभूति चित्रण मे—सभी जगह उसकी वैयक्तिकता ही चित्रित दिखलाई पडती है। इस वैयक्तिकता की प्रेरक शक्तियो मे अँग्रेजी के रोमाटिक कवियो—कीट्स, बायरन, शेली आदि—और रवीन्द्रनाथ का प्रभाव और बढते हुए विज्ञान के अनुसधानो को माना जा सकता है। रोमाटिक कविता से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण कतिपय आलोचक इसे 'रोमांटिसिस्म का भारतीय सस्करण' कहते है दूसरी ओर छायावाद 'सामाजिक तथा सास्कृतिक वस्तुस्थिति की प्रतिच्छाया' भी कहा गया है। इसका अर्थ यह कि पूँजीवादी सभ्यता व्यक्तिगत एकाधिकार की

नींव पर स्थित रहती है। इस प्रकार की सभ्यता में रहने वाले कवि का व्यक्तिवादी होना स्वाभाविक ही है। इसलिए इस युग का कवि कहता है—

मैंने "मैं" शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय मे मेरे
झट उमड़ वेदना आई

यह "मै" शैली निराला जी की ही नहीं है, समस्त छायावादी काव्य की विशेषता है। इस युग के कवियो मे आत्मीय राग की प्रमुखता है।

यही व्यक्तिवाद एक कदम और आगे बढ कर स्वच्छन्दतावाद मे परिणत हुआ। कविगण अपने को पूर्ण स्वतत्र मानने लगे। उन्हे केवल अपनी ही भावना, अपनी ही रुचि का ध्यान था। समाज की रीति-नीतियो की, मान-मर्यादाओ की उन्हे कोई चिन्ता न थी। इन कवियो का विश्वास था कि सार्वजनिक स्वतत्रता में ही मनुष्य अपने काल्पनिक आदर्शों तक शीघ्र पहुँच सकेगा। इसलिए इस युग के कवियो ने स्वच्छन्दतावाद का स्वागत किया। स्वच्छन्द प्रवृत्तियो के कारण विषय का बडा व्यापक विस्तार हुआ और साथ ही भाषा, छद, अलकार आदि मे भी नए-नए प्रयोग किए गए। प्रगीत मुक्तक इस युग की सर्वमान्य एव प्रिय शैली रही। लय के आधार पर कवियो ने नए छदो का निर्माण किया और भाव-स्वातन्त्र्य भी शतधा होकर प्रस्फुटित हुआ।

द्विवेदी-युग मे प्रेम, सौन्दर्य आदि के बडे स्थूल चित्रण हुए थे। उस युग के कवि रीतिकालीन शृगारिकता से सशकित होकर काव्य मे प्रेम, सौन्दर्य आदि का चित्रण बडे डरते-डरते कर रहे थे। इसलिए उनका प्रेम मर्यादा से बोझिल और उनके सौन्दर्य-चित्र अत्यन्त स्थूल और बाह्य रेखाओ मे ही आबद्ध रहे। आर्य-समाज की कठोर नैतिकता को बायरन, कीट्स, शेली, ब्राउनिंग, वर्ड्सवर्थ पढा नवयुवक समाज स्वीकार

न कर सका। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के युग में वह अपनी भावनाओं का उन्मुक्त चित्रण चाहता था। परंतु, समाज के नैतिक बंधनों को काटना इतना सरल न था। इस अनुपयुक्त वातावरण के कारण तरुण कवियों की भावनाएँ अंतर्मुखी हो उठीं। वे अपनी भावनाओं को प्रच्छन्न शैली में अभिव्यक्त करने लगे। प्रतीकों के माध्यम से उन्होंने अपनी प्रेम-संबंधी भावनाओं की अभिव्यक्ति की। दूसरे, रहस्यवादी विचारणा के कारण कविगण इस नानात्वमय विश्व के अंतर्गत स्थित एकत्व की अनुभूति का प्रयास करने लगे। दृश्य जगत् को वे अदृश्य सत्ता का प्रतिबिंब मानते और इस बाह्य संसार के चित्रण में वे रहस्यमय तत्व को ढूँढने का प्रयास करते। इसलिए उनकी रचनाएँ एक प्रकार से प्रतीकात्मक हो जाती थीं। इसके अतिरिक्त कवि-गण अपनी बातों को अनूठे ढंग से कहने का भी प्रयास करते रहे। वे सुख-दुःख को दिन-रात और हर्ष-विषाद को प्रभात-संध्या, हृदय को आकाश, भावनाओं को लहर कहते थे। इस प्रकार सामाजिक मर्यादाओं से विरुद्ध भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए, रहस्यात्मकता की रक्षा के लिए तथा कथन के अनूठेपन के लिए हिन्दी में प्रतीकों का प्रयोग हुआ।

परंतु, इन प्रतीकों के प्रयोग से इस युग के काव्य में अस्पष्टता और धूमिलता आ गई। किसी भी रचना के दुहरे और तिहरे अर्थ आसानी से लगाए जा सकते हैं। यद्यपि अतिशय लाक्षणिकता के आवरणों से इस युग में अस्पष्टता अधिक आई, परंतु प्रतीक-प्रयोग ने भी इस अस्पष्टता के संवर्धन में कम सहयोग नहीं दिया। इस युग के 'आँसू' जैसे प्रेम-काव्यों की खींचतानी के मूल में लक्षणा और प्रतीक ही पाए गए हैं। इस प्रवृत्ति के अत्यधिक प्रसार ने छायावादी काव्य को बहुत कुछ दुर्गम और दुरूह कर दिया। इसीलिए कतिपय आलोचकों ने, जो कुछ समझ न आवे उसे छायावाद के हवाले कर, छुट्टी ले ली थी। यहाँ तक कि गणित

के विद्यार्थी भी कठिन सवालो को छायावाद की संज्ञा देने लगे थे। इस युग की कविताओ के अस्पष्ट होने का एक दूसरा कारण भी है। इस युग मे नए भाव, नई भाषा और नई शैली—सब कुछ नया ही नया था। नयापन अवश्य कुछ अटपटा लगता है और शीघ्र समझ मे नहीं आता। परतु कुछ दिनो के पश्चात् जब उस नएपन से हम परिचित हो जाते हैं, तब वह अटपटा नही लगता और न उसे समझने मे कठिनता रह जाती है। छायावादी काव्य के साथ भी यही हुआ। पहले तो उसकी नवीनता के कारण वह बुद्धि को सहज ग्राह्य न हो सका, परतु पश्चात् समय के प्रवाह में उसकी दुर्बोधता बहती गई और तब वह उतना अस्पष्ट और धूमिल नही रहा जितना पहले लगता था।

जैसा ऊपर संकेत किया गया है कि छायावाद के कवियो की प्रवृत्ति अतर्मुखी थी। वे बाह्य वस्तुओ का वर्णन-विश्लेषण न कर अपनी आतरिक अनुभूतियो को ही चित्रित करने में सलग्न हुए थे। बाह्य जगत उनके लिए उतने महत्व की वस्तु न था जितनी महत्वपूर्ण अन्तर की अनुभूतियाँ थीं। यही नहीं बाह्य जगत् तो उनके लिये क्षणिक एव अवास्तविक था और अन्तर्जगत् शाश्वत सत्य, जो बारबार बाह्य विश्व की घटनाओ मे प्रकट हुआ करता है। इसलिए इस युग का कवि मानव-हृदय की शाश्वत अनुभूतियो का कल्पना के द्वारा वह चित्र उपस्थित करता है, जिसे हम बाह्य विश्व मे नित्य प्रति देखते हैं।* इसीलिए छायावाद को यथार्थ की 'कल्पनात्मक व्याख्या' भी

* "आज हम सत्य का अर्थ घटना कर लेते है। तब भी उसके तिथि-क्रम मात्र से सतुष्ट न होकर, मनोवैज्ञानिक अन्वेषण के द्वारा इतिहास की घटना के भीतर कुछ देखना चाहते है। उसके मूल में क्या रहस्य है ? आत्मा की अनुभूति ! हाँ, उसी भाव के रूप-ग्रहण की चेष्टा सत्य या घटना बन कर प्रत्यक्ष होती है। फिर वे सत्य घटनाएँ स्थूल

कहा गया है। इन युग में कल्पना का प्रचुर प्रयोग हुआ। इसी कल्पना की अतिशयता ने छायावादी काव्य को आसमानी भी बना दिया। अतवृत्तियो के निरूपण की दृष्टि से 'कामायनी' को इस युग का सर्व श्रेष्ठ महाकाव्य माना गया है। उसमे चिन्ता, श्रद्धा, काम, वासना आदि मनुष्य की मूल मनोवृत्तियो की साहित्यिक शैली मे ऐतिहासिक व्याख्या की गई है।

राजनीतिक क्षेत्र मे छायावाद राष्ट्रीय जागरण का युग भी है। देश ने बार-बार स्वतत्र होने के लिए प्रयत्न किए और बार-बार उसे असफल होना पडा। अधिकारियो द्वारा जो क्रूर दमन-चक्र चलाया गया उससे देश मे बडा क्षोभ फैला। आदोलनो की सतत असफलता ने दमन के पैरो पर खड़ी हो दारिद्र्य का दाना-पानी खा-पीकर निराशा की लबी लबी साँसे लेना प्रारभ कर दिया। सारा देश गहरी निराशा मे डूब गया। युग की स्वातत्र्य-भावना को छायावादी साहित्य मे खुल कर खेलने का अवकाश नही मिला। समाचार-पत्रो, भाषणो और लेखो पर अनेक प्रतिबध लगे थे। दूसरी ओर इस युग के कवि के लिए सामाजिक, धार्मिक एव नैतिक बधन भी अनेक थे। नई पीढी के लेखक सामाजिक मान्यताओ और आदर्शों मे ही क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहते थे, जो न तो तत्कालीन समाज को और न पुराने खेवे के साहित्यिको को मान्य था। इस कारण से भी इस युग के कवियो मे घोर असतोष, निराशा और विद्रोह की भावना आई। इस युग की राष्ट्रीय निराशा अनेक रूपो म व्यक्त हुई है। इस युग के कवि ने दर्शन के पथ पर नियति की अँगुली

और क्षणिक होकर मिथ्या और अभाव मे परिणत हो जाती हैं। किन्तु, सूक्ष्म अनुभूति या भाव, चिरतन सत्य के रूप मे प्रतिष्ठित रहता है, जिसके द्वारा युग-युग के पुरुषों की और पुरुषार्थों की अभि-व्यक्ति होती रहती है।" (कामायनी का आमुख)।

पकड़े जहाँ जीवन के सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, सफलता-असफलता आदि द्वन्द्वो मे समन्वय स्थापित कर उनके परे एक आनद-लोक की कल्पना की, वहाँ जीवन के तिमिरावृत्त पक्ष को ही शाश्वत मान कर जीवन की वेदना को प्याले की हाला मे डूब कर भुला देने का भी उपक्रम किया है। कभी-कभी तो कवि जीवन के दुर्गम दुखो को, विश्व की विकट विषमताओ को, देख कर अत्यत क्षुब्ध एव क्रुद्ध हो जाता है और प्रलय की साम्यावस्था मे ससार की असमानताओ को सम करने की कल्पना करने लगता है। उपर्युक्त तीन दृष्टिकोणो के प्रतिनिधि कवि प्रसादजी, बच्चनजी और नवीनजी कहे जा सकते है। निराशावाद, दुखवाद या वेदनावाद इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति ही बन गई है।

यथार्थ जीवन से घबड़ा कर कवियो ने जगत से दूर एक कल्पना-लोक बसा कर उसमें विचरण करने की अभिलाषा भी व्यक्त की है। प्रत्येक छायावादी कवि के काव्य में थोड़ी-बहुत पलायन-प्रवृत्ति पाई जाती है। प्रसादजी अपने नाविक से उस निर्जन मे ले चलने की प्रार्थना करते हैं जहाँ जग के कोलाहल से दूर सागर की लहरे अबर के कानों में प्रेम-कथा कह रही हो। पतजी का जी करता है कि मै मानव जग के फन्दो से छुटकारा पाने के लिए और चिर स्नेहातुर उर की व्यथा भुलाने के लिए प्रकृति-नीड़ मे व्योम-खगो के गाने गाऊँ और वही कही छिप जाऊँ। निरालाजी को भी जग के उस पार जाना है जहाँ नयनो से नयन मिले हो, ज्योति के सहस्र रूप खिले हो एव जहाँ रस की नव धार सदा बह रही हो। निष्कर्ष यह कि इस युग के कवियो मे यदा-कदा पलायन की प्रवृत्ति भी दिखलाई पड जाती है।

छायावाद की अतमुखी प्रवृत्ति आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे प्रेमादि प्रवृत्तियो के सयोग से रहस्यात्मक हो उठी है। 'आँसू' की वेदना अपने उदात्त रूप मे विश्व-व्यापी बन कर जीवन-सागर का कलुष जलाने वाली

मंगलमयी कल्याणी ज्वाला बन जाती है। अपने विश्व-व्यापी उदात्त रूप मे ये भावनाएँ रहस्यमयी भूमि का सस्पर्श करने लगती है। दूसरी ओर वेदात के 'जयघोष', 'गीताजलि' के व्यापक प्रभाव एव युग की बौद्धिक चेतना के रूप——गुणापेक्षी भक्ति को एक सूक्ष्म अव्यक्त-सत्ता की आसक्ति मे परिवर्तित कर दिया। कवि की हृदयस्थ भावना के सयोग से यह सूक्ष्म और अव्यक्त सत्ता काव्य मे रहस्यवाद के रूप में अभिव्यक्त की गई। सीधे और सरल शब्दो मे आत्मा और परमात्मा के सबध की भावात्मक अभिव्यक्ति को रहस्यवाद कह सकते है। हिन्दी मे यह रहस्यवाद भिन्न-भिन्न प्रेरणा स्रोतो से आया। मानसिक वृत्तियो के उदात्तीकरण द्वारा, दार्शनिक अभिरुचि के द्वारा, विश्व सौन्दर्य मे जिज्ञासा के द्वारा एव युगानुरूप माधुर्यभाव की अभिव्यक्ति के द्वारा, प्रसाद, निराला, पत और महादेवी ने क्रमश रहस्यात्मक साहित्य का सृजन किया। इस प्रकार रहस्यवाद भी इस युग की एक प्रमुख प्रवृत्ति बन गया।

प्रकृति के प्रति इस युग का कवि विशेष जागरूक रहा। उसने प्रकृति को जड़ और निर्जीव न मान कर उसे सप्राण सवेदनशील सत्ता के रूप में देखा है। प्रकृति मे उसे कभी आत्मा की झलक मिली और कभी परमात्मा का प्रतिबिम्ब। अधिकतर कवियो ने उसे अपनी ही आतरिक अनुभूतियो के रग मे डुबा कर चित्रित किया है। इसलिए प्रकृति अपनी निजी सत्ता के साथ सामने न आ पाई। वह या तो मनुष्य की मनोदशाओ की प्रतिकृति बन गई या रहस्यात्मक तत्वो की प्रतीक। उसका सहज सौन्दर्य काव्य मे न आ सका। प्रकृति का आलबन रूप मे चित्रण छायावादी युग मे अधिक नही हुआ। तिमिर-सागर से स्वर्ण-कलश लेकर प्रकट होने वाली सौरभ-श्वासा ऊषा 'प्रफुल्लता' की व्यजना करने लगी, गोरज-मडित पिंगल वर्ण के किरण केशो वाली साँझ 'उदासी' मे सीमित हो गई, व्योम के वक्ष पर विलसित होने वाले

उज्वल वर्ण के उडुगण 'भावो' के प्रतीक बन गए और बादलो के दल में दमकने वाली दामिनी किसी अज्ञात लोकवादी प्रियतम का प्रेम-सदेश बन गई। इसप्रकार इस युग मे प्रकृति का प्रतीकात्मक चित्रण ही अधिक हुआ। प्रकृति निरपेक्ष नही, मनुष्य सापेक्ष मानी गई। प्रसादजी की प्रकृति मानवीय मनोदशाओ के इगितो पर नाचती है।* वह उनके लिए मानुषीय भावनाओ को चित्रित करने का एक माध्यम मात्र है।

इस युग के काव्य मे प्रेम का भी बड़ा व्यापक और बहुमुखी चित्रण हुआ है। कुछ तो यह द्विवेदी-युग की शृगारिक भावनाओ की उपेक्षा की प्रतिक्रिया थी और कुछ पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी प्रभाव का परिणाम। इस युग का प्रेम अनेक रूपो मे सामने आया है। कभी तो वह व्यक्तिगत लौकिक धरातल पर खेलता हुआ दिखलाई देता है, कभी लौकिक धरातल से उठ कर अलौकिक लोक में पहुँचने का प्रयास करता है, कभी रहस्य के कुञ्जो में विचरण करता है और कभी समस्त विश्व पर आकाशवत् आच्छन्न होने का उपक्रम रचता है। परतु, इस युग मे लौकिक प्रेम का स्पष्ट चित्रण नही हो पाया। अपनी व्यक्तिगत विरह-मिलन की भावनाओ को कवि ने प्रतीको मे या लाक्षणिक शैली मे व्यक्त किया है। कही-कही श्लिष्ट शब्द या लिंग-विपर्यय आदि का

---

* "प्रसाद जी मनुष्यों के और मानवीय भावनाओ के कवि है। शेष प्रकृति यदि उनके लिए चैतन्य है तो भी मनुष्य-सापेक्ष्य है। 'आँसू' में प्रसादजी ने यह निश्चित रीति से प्रकट कर दिया है कि मानुषीय बिरह-मिलन के इगितों पर वे विराट् प्रकृति को साज सजा कर नाच नचा सकते हैं। यह शेष प्रकृति पर मनुष्यता के विजय का शंखनाद है।" (हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी—
श्री नददुलारे बाजपेयी)।

प्रयोग कर लौकिक प्रेम को अलौकिक बनाने का प्रयास किया गया है। साराश यह कि सासारिक प्रेम का स्पष्ट चित्रण इस युग मे नहीं हुआ, आगे चल कर हुआ भी तो उच्छृङ्खल असाहित्यिक ढग में हुआ। प्रसाद जी के साहित्य में ही प्रेम के स्वस्थ और बहुमुखी स्वरूप का चित्रण हुआ है। उसके पैर पृथ्वी पर अडिग हैं और आँखे आकाश की ओर हैं।

जिस समय साहित्य मे छायावाद चल रहा था उसी समय राजनीति मे गाँधीवाद का प्रभाव था। देश गाँधीजी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए उद्योगशील था। इसलिए राष्ट्रीय हलचल और गाँधीजी के आदर्शों का भी इस युग के साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पडा है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्री सोहनलाल द्विवेदी और दिनकर जी इस धारा के प्रमुख कवि है। श्री माखनलाल जी मे योगिराज अरविन्द का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद भी स्फुरित हुआ है। बलिदान की भावना उनके साहित्य की प्रमुख विशेषता है। गाँधीजी के आदर्शों का प्रभाव थोड़ा बहुत तो प्रत्येक कवि मे पाया जाता है। परतु, श्री सियारामशरणजी के साहित्य का प्रमुख तत्व गाँधीवाद ही है। गाँधीवाद के साथ ही साथ इस युग मे विश्व-बधुत्व की भावनाएँ भी आने लगी। कविगण अब जाति या देश की सकीर्ण सीमाओ से ऊपर उठ कर समस्त मानवता की हितचिन्तना करने लगे।

सक्षेप मे, व्यक्तिवाद, स्वच्छदतावाद, प्रतीकवाद, अस्पष्टता, अतवृ त्ति निरूपण, निराशावाद, पलायनवाद, रहस्यवाद, प्रकृति-प्रेम, प्रेम के अनेक रूपो का चित्रण, गाँधीवाद, राष्ट्र-प्रेम, विश्व-बधुत्व आदि छायावाद-युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ कही जा सकती है। माखनलाल जी के काव्य में इनमे से कितनी ही प्रवृत्तियाँ निश्चित रूप से पाई जाती है,

यद्यपि छायावाद कहलाने वाले काव्य-वर्ग मे उनकी कविता का अपना निजी व्यक्तित्व भी पूर्णत सुरक्षित रहता है। एक प्रकार से वे श्री जय-शकर प्रसाद की भॉति सधि बेला के कवि है। उनमें छायावाद की ओर सक्रमण का प्रथम चरण तो मिलता है, परतु उसका सपूर्ण वैभव नही। जो हो, माखनलाल जी के काव्य को हमे इस नवीन काव्य-धारा के साथ रख कर देखना होगा।

प्रारंभिक काव्य

प्रारंभिक काव्य

'भारतीय आत्मा' के अभी तक तीन काव्य-सग्रह प्राकशित हुए है। प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से 'हिमकिरीटिनी' (१६४२), 'हिम-तरगिनी (१६४६) और 'माता' (१६५१) क्रमशः प्रकाशित हुए है। परतु उनके अतिम काव्य-सग्रह 'माता' में कुछ कविताएँ सन् १६०४ और सन् १६०६ की भी है। इतने पहले की कविताएँ उनके पूर्व-सग्रहो मे नहीं है। अत उनके काव्य-विकास को ग्रन्थो के आधार पर नही समझा जा सकता। परतु, उन्हाने अपनी प्रत्येक कविता का समय और कतिपय कविताओ का स्थान तक दे दिया है जिससे उनके काव्य-विकास को समझने मे अधिक असुविधा नही होती।

सरलता के लिए हम उनकी रचनाओ को प्रारभिक काव्य और प्रौढ़ काव्य मे विभाजित कर सकते है। प्रारभिक काव्य मे सन् १६२० तक की रचनाएँ और प्रौढ काव्य मे सन् १६२० से लेकर आज (१६५४) तक की रचनाएँ आ जावेगी। इस विभाजन के द्वारा कवि के काव्य-विकास को समझने मे सुविधा होगी। इस अध्याय मे हम प्रारभिक काव्य को ही लेंगे।

कवि की प्रमुख प्रवृत्तियो के आधार पर प्रारभिक काव्य को भी राष्ट्रीय काव्य, भक्ति-काव्य, व्यग-काव्य मे विभाजित किया जा सकता है। यहाँ प्रेम और कल्पना की प्रवृत्तियाँ भी बीज रूप मे उपलब्ध हो जाती है। परतु, इनका पूर्ण विकास इस काल मे नही हो पाया। ये प्रवृत्तियाँ प्रौढ काव्य मे जाकर ही पूर्ण रूप से विकसित होती है। सच पूछा जाय तो व्यग के मूल मे भी देशानुराग ही दिखाई देता है और यदा-कदा भक्ति की भवानी के घर देशानुराग की दुर्गा मेहमानी कर आती है। इस प्रकार माखनलाल जी के काव्य की सर्व प्रधान प्रवृत्ति देश-प्रेम ही ठहरती है।

राष्ट्रीय काव्य—राष्ट्रीय काव्य से हमारा तात्पर्य उस काव्य से है जिसमे देश की तत्कालीन राजनीतिक चेतना का प्रतिबिम्ब हो। पिछले परिच्छेद मे देश की राजनीतिक हलचल और उसके साहित्य पर पडे हुए प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। सक्षेप मे, बीसवी शताब्दी के प्रथम बीस वर्ष सार्वदिक क्राति के वर्ष रहे है। अँग्रेजी शासन से असतुष्ट होकर देश ने स्वतत्र होने के प्रयास किए, अनेक दल बने, सस्थाएँ निर्मित हुई। कुछ दल शक्ति का प्रयोग कर अँग्रेजी शासन को उलट देने के पक्ष मे रहे और कुछ शात एव वैधानिक रीतियो से देश को मुक्त करने का प्रयास करते रहे। साध्य एक होते हुए भी साधन-वैभिन्य से ऐसे दल सगठित होकर कार्य न कर सके। दूसरी ओर अग्रेजो ने भेद-नीति का प्रयोग कर मुसलमानो को फोड़ा और दडनीति के द्वारा क्रातिकारियो का दमन करते रहे। देश के इस नव-जागरण का साहित्य पर भी पर्याप्त प्रभाव पडा। कवियो ने अपने देश की वर्तमान हीन अवस्था पर आँसू बहाए, अपने उज्ज्वल अतीत की ओर सकेत कर देशवासियो मे उत्साह, स्वाभिमान आदि भरने का प्रयास किया। उन्होने उपदेश दिए, प्रशस्ति-गान गाए, देश के लिए मर मिटने की भावना जागरित की, अँग्रेजी शासन की आलोचना की।

माखनलालजी के काव्य मे भी देश की राजनीतिक सजगता का सुदर चित्र मिलता है। उनकी रचनाएँ बडी प्राणवान और प्रभावपूर्ण हैं। इसके कारण है। एक तो राष्ट्रीय काव्य होने के नाते वे स्वभावत ही ओज से भरी हुई है। दूसरे, स्वतत्रता-सग्राम के सक्रिय सैनिक होने के नाते कवि ने राष्ट्र की गति-विधियो को अत्यत निकट से या भीतर से देखा है। इसलिए उनकी राष्ट्रीय रचनाओ मे जो सजीवता और सप्राणता है और उनके स्वर मे जो सच्चाई है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी कविताएँ एक भुक्त-भोगी की आत्म-कहानी प्रतीत होती है। 'कैदी

और कोकिला' नामक कविता की सर्व प्रियता का रहस्य यही है कि उसका जन्म मस्तिष्क से न होकर हृदय से हुआ है। अनुभूति हृदय की वस्तु है और इस कविता मे यह इतनी तीव्र और गहरी है कि वह अनायास हृदय को स्पर्श कर लेती है।

राष्ट्रीय काव्य की दूसरी विशेषता उसकी निरलकृत अभिव्यक्ति होती है। बिना किसी अलकार योजना के, बिना किसी उक्ति-वैचित्र्य के कवि अपने हृदय के उमडते हुए वेग को व्यक्त कर देता है। अलकारादि के व्यवधानो से भावो की सहज प्रेषणीयता मे बाधा ही पहुँचती है। परतु, राष्ट्रीय कवि अपने हृदय के भावादोलन को श्रोता या पाठक मे भी भर देना चाहता है। इसलिए वह सीधे, सरल शब्दो मे अपने हृदय के भावावेग को व्यक्त कर देता है। प्रत्येक राष्ट्रीय कवि मे यह निरलकृत अभिव्यक्ति पाई गई है। श्री माखनलालजी की राष्ट्रीय रचनाओ की भी यही विशेषता है। इन रचनाओ मे उनकी अभिव्यक्ति अत्यत सीधी और सरल है, अत स्पष्ट है। उनकी प्रेम-सबधी रचनाओ की अस्पष्टता और दुरूहता इन रचनाओ मे नही पाई जाती।

राष्ट्रीय कविताओ की तीसरी विशेषता उनकी सामयिकता होती है। वे समसामयिक राष्ट्रीय हलचलो से सबधित होती है। यदि वे रचनाएँ किसी विगत-युग की राष्ट्रीय हलचलो का चित्रण करती है, तो उन्हे राष्ट्रीय नही कहा जा सकता। ऐसी रचनाओ का ऐतिहासिक महत्व तो होता है और वे एक सीमा तक राष्ट्रीय भावनाओ को जागरित करने मे सहायक भी होती है, परतु उन्हे सर्वांशेण राष्ट्रीय नही कहा जा सकता। उदाहरण के लिए महाराणा प्रताप और छत्रपति शिवाजी के समय की घटनाओ का चित्रण और तत्कालीन हिन्दुओ के शौर्य और पराक्रम से सबधित साहित्य राष्ट्रीय नही है, यद्यपि उससे राष्ट्रीय भावना को पर्याप्त बल मिला है। तात्पर्य यह कि राष्ट्रीयता गतिशील

होती है। उसके पीछे इतिहास और उसके साथ राष्ट्रीय साहित्य होता है। श्री माखनलाल जी मे यह सामयिकता भरपूर भरी हुई है। उन्होने इस सामयिकता को 'समय के पैरो के निशान' कहा है। ये 'समय के पैरो के निशान' उनकी रचनाओ मे प्रचुर परिमाण मे अकित हुए है। इनके ही विश्लेषण के द्वारा हम उनके राष्ट्रीय काव्य को समझ सकते है।

सबसे पहले कवि का ध्यान देश की गिरी हुई अवस्था की ओर जाता है। वह देखता है कि देश का शिल्प नष्ट हो गया, व्यापार विदेशियो के हाथ मे चला गया और सुशिक्षा का भी कोई प्रबध नही है। कृषि कर्म मे कोई सार नही रहा, सारा देश दरिद्र हो गया है, परतु लोगो को इसका ज्ञान तक नही है। विदेशी अग्रेज पग-पग पर भारतीयो का अपमान करते है और उन्हे घृणा की दृष्टि से देखते है[१]। कई करोड़ भारत के विद्यार्थी शिक्षा के अभाव मे मारे-मारे फिर रहे है। उनके माता-पिता निकम्मे होने के कारण उनकी शिक्षा का कोई प्रबध नहीं कर पाते और दूसरी ओर राज्य भी उनकी कोई चिन्ता नही करता। उनका कोई सहायक नही है। उनके पास अन्न नही है, फीस नहीं है, पुस्तके नही है। इच्छा होते हुए भी वे पढ नही सकते[२]। दूसरी

---

१. "शिल्प गया वाणिज्य गया, शुभ शिक्षा का है मान नही,
कृषि भी डूबी, हुए दरिद्री पर इसका कुछ ज्ञान नहीं
हाय ? आज हम भोग रहे हैं झिडकी घृणा और अपमान,"

२. "अब तो पिता निकम्मे होकर शिक्षा का कर सके न यत्न,
राज्य देश कोई न परखता भारत वसुमति के ये रत्न,
क्यो कर वह उन्नत होवेगा खोवेगा अपना अज्ञान,
कई करोड मुर्ख है हा ? जिस भारत के भावी विद्वान !

और कुछ ऐसे विद्यार्थी भी हैं जिन्हे सूट-बूट-हैट, केन, चेन-घडी और चाय सब चाहिए[३]। अर्थात् देश मे बडी विषमता फैली हुई है। एक ओर तो खाने के लिए अन्न नही है, दूसरी ओर विलास के इतने साधन सग्रहीत हैं। देशवासी भाषा, भाव और भेष को भूल गए है। उन्हे अपने देश पर अभिमान नही रह गया है। वे अपनी जननी-जन्मभूमि के कष्टो का अनुमान नही कर सकते।[४] प्यारी जन्मभूमि आपत्तियो की अर्द्ध-निशा मे, पराधीनता के करोडो बन्धनो से बॅधी हुई, अन्याय के भार से अवनत, ऑसू ढाले, जड़वत् खडी हुई है।[५] उसके कृत्रिम टुकडे कर लोग उन पर अकडते है, उज्जयिनी छोड कर ग्रीनविच की पूजा करने के लिए दौड़ते है और झूठा जोश दिलाते फिरते है।[६] ग्रीनविच की तो पूजा करेंगे, परन्तु वे जड़जीव

अन्न नहीं है, फीस नहीं है पुस्तक है न सहायक हाय
जी में आता है पढ लिख ले पर इसका है नही उपाय"

३. बूट चाहिये, सूट चाहिये कालर हैट और नेकटाय
केन चाहिये, चेन चाहिये--घड़ी सहित, फिर डेली चाय
देखो इन पर लिखा न होवे कहीं "मेड इन हिन्दुस्तान।"
क्योंकि हमीं तो हैं इस बूढे भारत के भावी विद्वान्!

४. किनको होगा जन्मभूमि के कष्टों का पूरा अनुमान?
भाषा, भाव, भेष, भोजन में भारतीयता का अभिमान!

या

भाषा, देश, भाव भूषण के दूषण हो सुख पाते भाई।

५ आधी रात करोडों बंधन, अन्यायो से झुकी हुई,
पराधीनता के चरणो पर ऑसू ढाले रुकी हुई।

६. मातृभूमि के कृत्रिम टुकडे कर उन पर बल खाते भाई,
उज्जयिनी तज ग्रीनिच पूजो कल्पित जोश दिलाते भाई।

अपनी ही जननी के जायों पर रोष करते हैं।[७] इस प्रकार देश मे जगह-जगह गृह-कलह फैल रहा है।

इस युग के कवियो की यह सामान्य प्रवृत्ति रही है कि उन्होंने अपनी वर्तमान हीन दशा का सर्वांगीण चित्रण करने का प्रयास किया है। देश की सास्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि समस्त स्थितियों पर उन्होंने असतोष प्रकट किया और देश की वास्तविक स्थिति को जनता के सामने स्पष्ट किया। 'भाषा, भाव, भेष' की अधोमुख सास्कृतिक स्थिति का प्रत्येक कवि को पूर्ण ज्ञान और उसके लिए गहरी वेदना थी। कविवर 'शकर' ने मदिर छोडकर गिरजा जानेवाले, कोट-पतलूनधारी आमिष-भक्षी, फारसी और अग्रजी बोलने वाले मैन-मिस्टरो को बडा चुभता हुआ व्यग किया है और श्री केशवप्रसाद मिश्र का कहना था कि चाहे आप अग्रेजी मे बृहस्पति ही क्यो न बन जायॅ देश के सताप का नाश तो देशभाषा की प्रीति से ही होगा।[८]

७ करेंगे क्या, यह वे जड़जीव ? जिन्हें जननी जायों पर रोष !
तपस्वी रख सकते हैं टेक मिला कर सादर जीवित जोश।

८. ईश गिरिजा को छोड़ यीशु गिरजा मे जाय
'शकर' सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे।
बूट पतलून कोट कम्फर्टर टोपी डाट,
जाकट की पाकट मे वाच लटकावेंगे।
घूमेंगे घमडी बने रडी का पकड़ हाथ,
पियेंगे बरडी मीट होटल में खावेंगे।
फारसी की छार सी उड़ाय अँग्रेजी पढ
मानों देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।
× × ×
चाहे विदेशी वर्णमाला आपके पीछे लगे,
चाहे बृहस्पति से अधिक हो आप इंग्लिश के सगे।

इस युग के कवियो ने जीवन के प्रत्येक पहलू पर विचार किया था। आर्य-समाज की सुधारवादी भावनाओ से साहित्य भी उच्छ्वसित हो रहा था। कविगण समीक्षक की दृष्टि से व्यग्यात्मक या करुणामूलक शैली मे देश-प्रचलित कुरीतियो का उद्घाटन करते थे, जिसे हम उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण कह सकते है। दूसरी ओर वे जनता को उपदेश देते, उसमे देश-प्रेम की भावना भरते, अपने पूर्व-पुरुषो का स्मरण दिलाते, नाना प्रकार की अहितकर रूढि-रीतियो को तोड फेकने के लिए प्रोत्साहित करते थे। इसे हम उनका आदर्शवादी दृष्टिकोण कह सकते है।

उपर्युक्त उद्धरणो से ज्ञात होता है कि माखनलालजी की दृष्टि देश की आर्थिक, शैक्षणिक, सास्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि दुरवस्थाओ की ओर गई थी। उन्होने अपने काव्य मे इनका यत्र-तत्र उल्लेख किया है। इसे उनका यथार्थवादी दृष्टिकोण कहा जा सकता है।

दूसरी ओर उन्होने उपदेश भी दिए है। वे कुछ दिनो तक शिक्षक रहे थे। विद्यार्थियो से उनका सपर्क रहा। इसलिए दो-तीन कविताएँ विद्यार्थियो को लक्ष्य करके लिखी गई है। वे विद्यार्थियो को सबोधित करते हुए कहते है कि तुम वीर देश के बच्चे हो, तुम्हे विपत्तियो मे नही घबडाना चाहिए। सूखी पुस्तके और परीक्षाएँ वास्तविक शिक्षा नही है। छोटी-छोटी घटनाओ से तुम्हे हृदय निर्बल नही कर लेना चाहिए। जब तक हमारे सामने कर्मक्षेत्र है, तब तक घबड़ाने की कोई बात नही है।[१] क्या तुम युवको की प्रचड प्रलयकारिणी शक्ति

जब तक नही निज मातृ-भाषा-प्रीति होगी आप मे,
तब तक नही अतर पड़ेगा देश के सताप मे।

को भूल गए हो? क्या तुम्हे भीष्म की लौह-प्रतिज्ञा, लव-कुश के अप्रतिम कौशल और अभिमन्यु के अतुल बल की स्मृति नही है? तुम यह गाँठ बाँध लो कि भारत का दुख भारत के भावी विद्वानो के द्वारा ही दूर होगा।[१०] इसके साथ ही वे उनके अभिभावको से कहते हैं कि आओ हम इन देश के भावी विद्वानो की शिक्षा के हित, ससार मे उथल-पुथल कर दे और इन्हे कला कुशल, नीति-निपुण, वीर, बुद्धि-मान, उदार, कर्तव्यशील, निर्भीक, दृढप्रतिज्ञ भारतीय नागरिक बनाने का उद्योग करे।[११] स्वतन्त्रता की वेदी पर अपना बलिदान करने के लिए देश-वासियो को इस कवि ने बार बार ललकारा है। उसके काव्य मे यह भावना बडी तीव्र है। कवि अपने जीवन से कहता है कि हे जीवन! तू बँध मत जाना। मैंने अपना बलिदान करके ही उनकी झाँकी देखने का निश्चय कर लिया है।[१२] देश-सेवा के दुर्गम

---

९ वीर देश के बच्चे हो तुम घबड़ाने का काम नहीं,
सूखी पुस्तक और परीक्षाएँ शिक्षा का है नाम नहीं,
ऐसी निर्बल घटनाओं से दूषित क्यो मर्मस्थल हो,
क्यों कर हम अकुलाये, जब तक सम्मुख ही कर्मस्थल हो।

१०. प्रलय-कारिणी युवक शक्ति की क्या सुन पाये बात नही?
भीष्म-प्रतिज्ञा, लव-कुश-कौशल पार्थ-पुत्र-बल ज्ञात नही?
भूलो मत, लिख लो निःसशय इसे हृदय में पक्की मान,
भारत का सब दुःख हरेंगे भारत के भावी विद्वान।

११. आओ इनकी शिक्षा के हित उथल पुथल कर दे ससार,
इन्हें बनावे कला कुशल, नय-निपुण, वीर, धीमान, उदार,
डरे न, प्रण पर मरे, करे कर्त्तव्य, बनावे दृढ सतान,
भारतीय हैं वही, बनावे भारत के भावी विद्वान।

१२. बँध मत जाना मेरे जीवन, बलि हो झाँकी झाँकूँ,

पथ पर चलने के लिए वे उनका आमन्त्रण करते हैं जिनकी आँखों मे कभी आँसू न आवे, जिन्हे विलास से घृणा हो, जो सिर पर तलवार देख कर भी न डरें और जिन्हे अहिंसा मे पूर्ण विश्वास हो।[१३] यदि उन्हे कोई दिखलाता है कि देखो, दुर्दैव तुम्हारे ऊपर तीक्ष्ण बाण ताने खडा है, तो वे उत्तर देते है कि उसे प्राण लेना हो तो ले ले, परन्तु हम कर्तव्य-च्युत न होगे।[१४] वे बलिदान न करनेवालो को नरकगामी मानते और एक के बलिदान को अनेक बलिपथियो को उत्पन्न करनेवाला बतलाते है।[१५] वे मुहम्मद के नाम पर कुर्बान होने के लिए और मोहन के नाम पर बलिदान करने के लिए तैयार है।[१६] उनके भगवान भी बलिदानो के सोपानो पर चढ कर ही आते है।[१७] उन्हे बलि होने की परवाह नही। वे कष्टो के राज्य मे रहे इसकी भी उन्हे चिन्ता नही। यदि माता के हाथो मे स्वराज्य का आभूषण सुशोभित हो जावे तो

---

१३. आमन्त्रण है, उसे कि जिसके नेत्र न मोती ढालें,
आमन्त्रण है, हार हृदय पर जिसके छाले डालें,
आमन्त्रण है, पैर न फिसला पावे कल करताले,
आमन्त्रण है, हृदय-दान हो हिले नही करवाले।

१४. शीश पर वह देखो दुर्दैव साध कर खडा तीक्ष्ण तर बाण,
अरे चल, साधेंगे कर्त्तव्य तुझे लेना हो ले ले प्राण।

१५ "इधर ये छूट रहे है बाण" हृदय है आदर से उस ओर,
"बचाओ! यों न मिटाओ त्राण" हाय है त्राण नरक की डोर,
"अकेले क्यों देते हो प्राण!" बनेंगे ऐसे कई करोड़।

१६. मुहम्मद पर सब कुछ कुर्बान मौत के हो तो हो मेहमान,
कृष्ण की सुन मुरली की तान, चलो हो सब मिलकर बलिदान।

१७. मुझे हो आने मे सतोष, रचो बलिदानो के सोपान।

जीत उन्ही की है।[१८] वे शूली को ईसा की शोभा मानते है और प्यारी हथकडियाँ और बेडियाँ ही उन्हे संतोष देती है।[१९] उनकी टेक जीवन का फूल चढाकर भी अन्यायो का प्रतिकार करना है।[२०] इस प्रकार हम देखते है कि बलिदान की भावना उनके काव्य का प्रमुख तत्त्व है। यह भावना इतने तीव्र स्वर मे और इतनी अधिक आवृत्ति के साथ किसी अन्य कवि के काव्य मे नही दिखलाई पडती। बलिदान की चर्चा चल जाने के कारण मै इस बात का उल्लेख भी यही कर दूँ जिसका संकेत माखनलालजी ने 'माता' की भूमिका मे दिया है। उनकी शिकायत है कि, "जेल की तस्वीर से काव्य के माधुर्य तक सीधी खडी रेखा खीच सकनेवाली पाठक की आँखे इस समय तक भी' ऐसे लेखको को नही मिली है "जो जिंदगी से चलने को कहते है, और कलेजे से गाने को," और, "उन्हे न हमने बलि की कीमत मे कूता, न गायन की जाज्वल्य ज्वाला के मूल्य मे।" यह एक बडा विचारणीय प्रश्न है। सचमुच आज का हिन्दी-समाज कतिपय प्राणवान लेखको की निर्दयता पूर्वक उपेक्षा करता जा रहा है और अनेक बेजान तुकबंदियो की प्रशंसा मे पुस्तको का ढेर लगा रहा है। सरस्वती की सेवा करते-करते माखनलालजी को आज पचास वर्ष हो गए, पूरी आधी शताब्दी बीत गई, परन्तु पत्र-पत्रिकाओ मे यत्र-तत्र छुट-पुट लेखो के अतिरिक्त उनके लिए हिन्दी-समाज ने और क्या किया है? प्रसादजी

---

१८ बलि होने की परवाह नही, मै हूँ कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता, जीता हूँ, माता के हाथ स्वराज्य रहे।

१९. आत्म-देव प्यारी हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ दें परितोष,
उतनी ही आदरणीया है, जितना वह जय-जय का घोष।
'शूली—वह ईसा की शोभा' वह विजयी दिन दूर नही।

२० 'टेक ?' अन्यायों का प्रतिकार, चढा कर अपना जीवन-फूल।

की स्वर्गयात्रा के पश्चात् मगलाप्रसाद पारितोषिक उनके लिए पार्सल किया गया था। यदि यही नियम हो तो स्वर्गीया सुभद्राजी के लिए कौन सा नियम लगाया जायगा? आज सचमुच हमारे पास जी कर लिखनेवालो की बडी कमी है और जो अपने प्राणो की शिखा को अपनी अभिव्यक्ति का शृङ्गार बनाते है, उनकी ओर हमारा ध्यान ही नहीं जा पाता। यही कारण है कि हमारे पास जीवत साहित्य बहुत कम है और जो कुछ है उसमे अधिकाश कल्पना की क्रीडा का परिणाम प्रतीत होता है।

जिन घटनाओ ने जन-मन के पथ पर अपने पैरो के गहरे चिह्न अकित कर दिए थे, वे माखनलाल जी के काव्य मे यत्र-तत्र अपने अस्तित्व के लिए आवाज लगा देती है। रिफार्म एक्ट[21], रोलट एक्ट[22], अमृतसर का अधिवेशन[23], पूर्ण स्वराज्य की माँग[24], तिलक को सजा[25], जालियानवाला बाग उनके काव्य मे अनायास उभर आए है। परतु इन घटनाओ का उल्लेख या सकेत भर ही मिलता है। इनके ऊपर उन्होने स्वतत्र रचनाएँ नही लिखी। कुछ घटनाएँ ऐसी भी है जिन पर स्वतत्र रचनाएँ प्राप्त होती है। परतु, इन रचनाओ मे वर्णनात्मक

---

२१. सागर की छाती चीर बली, अधिकार उठाने टूट पड़ा,
उस पार्लिमेट-कर से सहसा रीफार्म एक्ट जब छूट पडा।

२२ 'हथियार न लो' की हथकड़ियाँ रौलट का हिय मे घाव लिये,
डायर से अपने लाल कटा, कहती थी आँचल लाल किये।

२३ राष्ट्रीय शक्ति ने तुझसे ही अमृतसर मे था त्राण लिया।

२४ "मेरे जीते जी पूरा स्वराज्य भारत पाये अरमान यही।"

२५ तुझको कष्ट नही देंगे हाथों मे झडा ले लेगे,
मडाले के क्या शूली के कष्टो को सादर झेलेगे।

या इतिवृत्तात्मक शैली न होकर भावात्मक शैली ही अपनाई गई है। इन रचनाओ मे घटनाओं द्वारा उत्पन्न कवि-हृदय की प्रतिक्रिया का ही अकन हुआ है। 'आराधना', 'जीवित-जोश', 'दुखभोगी', 'माँ का मन' आदि कविताएँ इसी प्रकार की हैं।

अँग्रेजो की दमन-नीति, उनकी हिन्दुओ के प्रति भावना और उनके द्वारा किए गए अत्याचारो का भी इनके काव्य मे परिचय मिलता है। अँग्रेज हमारे पूर्व-पुरुषो को डाकू और लुटेरे कहते थे।[२६] उनका मत था कि भारतवासी लकडी-पानी ढोनेवाले कुली है। इनमे राज्य-सचालन की योग्यता नही है।[२७] उनके मुँह बन्द कर दिए गए थे, उनकी कलम रोक दी गई थी। शस्त्र-धारण महान अपराध समझा जाता था।[२८] कैदियो को कारागार मे डाल कर उनसे चक्की पिसवाई जाती थी[२९] और यदा-कदा उनके तनाबुजो पर अधिकारियो के चरण-चचरीको को अनुराग उत्पन्न होना भी साधारण-सी बात थी।[३०] आदोलनकारियो

---

२६. स्मृतियाँ ठुकराई जाती है शिर झुकते कर बिनती,
डाकू और लुटेरों में है पुरुषाओ की गिनती।

२७ भारत को कुछ अधिकार मिले ? ना, वह अधिकारो योग्य नही,
लकड़ी-पानी ढोने वालों को राज्य-शक्तियाँ योग्य नही।

२८. मै "मुँह बदी" का हार हिये "मत लिखो" कठिन ककण धारे,
"भारत रक्षा" के शूलों की पाँवो में बेडी झनकारे।
"हथियार न लो" की हथकडियाँ रौलट का हिय में घाव लिये,
डायर से अपने लाल कटा, कहती थी आँचल लाल किये।

२९. कारागारों में चक्की पिस रही देवताओ से।

३०. इतने पर भी कैद में जो मैं इतराने लगूँ,
क्यों न भला श्रीचरण की मृदु ठोकर खाने लगूँ।

के साथ बडा निर्दय व्यवहार किया जाता था।[३१] साराश यह कि देश की समसामयिक स्थिति का उनके सूक्ष्म काव्य मे परिचय प्राप्त होता है। विशद वर्णन और सपूर्ण सूचना उन्होने नही दी है। इसके कारण भी ढूँढे जा सकते है। एक तो उनकी भावुक प्रकृति इतिवृत्तमयी वर्णनात्मक शैली के अनुकूल न थी। दूसरे उन्होने स्लेट-पेन्सिल लेकर कविताएँ नहीं लिखी है। जो कुछ लिखा है वह "सध न सकनेवाले आवेगो मे गाने का प्रयास" है। इन सब कारणो से उनके काव्य मे यत्र-तत्र कुछ रेखाएँ ही मिलती है जिनके सयोग से एक पूर्ण चित्र की कल्पना नही की जा सकती। उनके ऐतिहासिक संकेतो मे भी उनकी भावुकता और आत्मिक प्रतिक्रिया का ही प्रमुख रूप से चित्रण हुआ है।

सैद्धान्तिक पक्ष मे माखनलालजी की आत्मा लोकमान्य तिलक के अत्यधिक निकट प्रतीत होती है। उनके नि शस्त्र क्रान्ति मार्ग पर उन्हे पूर्ण विश्वास था। धर्मानुप्रेरित क्राति की जो भावना लोकमान्य के जीवन का सचालन कर रही थी वही इनमे भक्ति-मिश्रित बलिदान की भावना के रूप मे दिखाई पडती है। देश के नभोमडल मे उस समय आध्यात्मिकता के स्वर भी गूँज रहे थे। परन्तु, इनमे बौद्धिक आध्यात्मिकता की अपेक्षा भावात्मक भक्ति का ही प्राधान्य दिखलाई पडता है। मैने ऊपर उल्लेख कर दिया है कि महात्मा गाँधी, गोखले और तिलक दोनो को आत्मसात करके चले थे। इसलिए लोकमान्य तिलक और महात्माजी के सिद्धात मे कोई अतर नही है। परतु, महात्माजी आध्यात्मिकता की ओर अधिक झुके थे और तिलक दार्शनिकता की ओर। माखनलालजी के काव्य मे तिलक की अग्निमयी आत्मा के दर्शन होते है, महात्माजी के प्रशात हृदय के दर्शन नही। उनमे अग्नि है,

---

३१. कसे हुए पीटे जाते है भारी शोर मचाते है
हा ! हा !! हमे पीटनेवाले जरा नही सकुचाते है,

ज्वाला है, जलन है और कहीं-कहीं उद्वेग भी है। सुख-दुख को सम मान कर चलनेवाली आध्यत्मिक शाति उनमे नही दिखलाई देती। इस सूक्ष्म अतर के अतिरिक्त महात्माजी के समस्त सिद्धातो को वे श्रद्धा के साथ स्वीकार कर लेते है। हिंसामयी क्राति का उन्होने स्थल स्थल पर विरोध किया है। चाहे सारा ससार ही पलट जाय, परतु उन्होने अपने हाथो मे हथियार न लेने की प्रतिज्ञा कर ली है[३२]। राष्ट्र-मच को रणोन्मत्त व्यक्तियो से पूर्ण देख कर, वे उसे छोड देना चाहते है[३३]। यदि पाप से, अधर्म से उन्हे देश-भक्ति भी मिलती हो तो वे उसके लिये भी दूर से ही हाथ जोडने को तैयार है[३४]। प्राण की बाजी लगा कर भी वे अन्याय का प्रतिकार करते है। भगवान कृष्ण और मुहम्मद मे उनके लिए कोई भेद नही है[३५]। उनका कहना है कि जो अपने ही देशवासियो से द्वेष रखते हैं वे मूर्ख कुछ भी नही कर सकते[३६]। वे अपराध का बदला अपराध नही मानते। अपराधियो के लिए भी भगवान से उनकी प्रार्थना है कि उन्हे सदबुद्धि मिले, उनके हृदय मे मानवता के प्रति प्रेम उत्पन्न हो और भगवान के चरणो मे भक्ति हो[३७]। वे तो भगवान से बधिक

---

३२. 'पलट जाये चाहे ससार न लूँगा इन हाथों हथियार।'

३३. राष्ट्र-मच रण-रातों को दो, विपद भली, मै भली यहाँ,

३४ पाप से मिलती हो तो देव! नहीं है देश-भक्ति की चाह,

३५. मुहम्मद पर सब कुछ कुर्बान मौत के हों तो हों मेहमान,
कृष्ण की सुन मुरली की तान चलो, हो सब मिलकर बलिदान।

३६. करेंगे क्या, यह वे जड़ जीव? जिन्हे जननी जायो पर रोष।
तपस्वी रख सकते है टेक मिलाकर सादर जीवित जोश।

३७. अपराधी हैं! होने दो, उसका बदला अपराध नही,
उस पर पोत चलेंगे कैसे, हो जो सिधु अगाध नही।
विनती कर इन सब जीवों का मानवता पर प्रेम बढे,
चक्रपाणि तेरे चरणों का इन पर प्यारा रग चढ़े।

की कल्याण-कामना करते हैं [३८]। इस प्रकार उनके काव्य मे अहिंसा, सत्य, समता आदि के सिद्धात बराबर प्राप्त होते हैं। इन सिद्धातो के मूल मे गाँधीवादी दर्शन ही काम करता हुआ दिखलाई देता है।

इस युग के समस्त कवियो की यह एक बडी भारी विशेषता रही है कि वे भारत के गौरवपूर्ण अतीत के बड़े प्रेमी और भक्त थे। प्रत्येक कवि ने किसी न किसी रूप मे अतीत का गौरव गाया है। भारत का अतीत धर्म, ज्ञान, विज्ञान, कृषि, योग, दर्शन, धन, वैभव, सभ्यता, सस्कृति सब मे ससार के सब देशो से आगे था। देश की परतत्र गिरी हुई दशा मे उसका यह गौरवपूर्ण अतीत, उसकी स्वाभिमान-रक्षा का एकमात्र आधार और उसकी प्रगति-प्रेरणा का एकमेव तत्व था। देश के सुधारको और नेताओ ने राष्ट्रीय जागरण मे इससे बडी सहायता ली है। कवियो ने भी इस स्वर्णिम अतीत का चित्रण किया है। अतीत-चित्रण इस युग की एक प्रमुख प्रवृत्ति थी।

परतु, माखनलालजी के तत्कालीन काव्य मे यह प्रवृत्ति नही पाई जाती। वे अतीत प्रेमी नही है। उन्होने भारत के गौरवपूर्ण अतीत का चित्रण नही किया है। कदाचित् उन्हे अतीत से प्रेम हो, परतु उनके काव्य मे तो यह बात नही पाई जाती। उनकी दृष्टि वर्तमान के विषम जाल मे ही उलझी रह गई। उनके व्यस्त जीवन के अत्यल्प साहित्यिक क्षणो से वर्तमान ही इतने रूप धर कर वाचा-दान माँग रहा था कि वे समय की आड मे खडे हुए उज्वल अतीत को देख ही न पाए।

यही कारण है कि उनके प्रशस्ति गान और उनकी वीर-पूजा भी आधुनिक युग के वीरो तक सीमित है। लोकमान्य तिलक और महात्मा-गाधी के आसपास ही उनकी वीर पूजा की भावना भॉवर देती रही।

---

३८ माता! मेरे बधिको का काली-मर्दन कल्याण करे,
किसी समय उनके हृदयो मे मानवता का भाव भरे।

पौराणिक पुरुषो के आदर्शोज्वल जीवन और ऐतिहासिक वीरो के प्रचड पराक्रम की ओर वे दृष्टिपात न कर सके। फलस्वरूप उन्होने कोई आख्यानक प्रबध-रचना नही की जो इस युग के कवियो की एक प्रधान विशेषता रही है।

वर्तमान की तीव्र सवेदना के कारण मातृभूमि का परपरागत मानवीकृत रूप उनमे कुछ भिन्नता लिए है। मातृभूमि के वदना-गीतो की परपरा श्रीधर पाठक से प्रारभ होकर बगाल के महाकवि बकिम और रवीन्द्र से प्रभावित और प्रोत्साहित होती हुई आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण जी गुप्त आदि मे सतत समगति से बहती गई। परतु माखनलालजी मे इसका एक दूसरा ही रूप प्राप्त होता है। उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जायगी —

गिरिवर भ्रू-भग धारि, गगधार कठहार
सुर-पुर-अनुहार, विश्ववाटिका-बिहारी
उपवन वन वीथि-जाल सुन्दर सोइ पट-दुसाल
कालिमाल विभ्रमाऽलि मालिकाऽलिकाऽली।

—श्री श्रीधर पाठक

वदे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज-शीतलाम्
शस्य श्यामलाम् मातरम्।

——श्री बकिमचद्र

अयि भुवन-मन-मोहिनी
अयि निर्मल सूर्य करोज्जवलधारिणि, जनकजननि जननी।
नीलसिधु जलधौत चरणतल
अनिल विकम्पित श्यामल अचल
अम्बर-चुम्बित भाल हिमाचल शुभ्र तुषार किरिटिनी।

——श्री रवीन्द्रनाथ

विविध-सुमन समूह-चित्रित
शस्य श्यामल-वसन-सज्जित
मलय-मारुत से सुगधित
रत्नगर्भा जननि !
मगल-करणि सकट-हरणि !
अभय दुर्जया शक्ति-धारिणि,
निमिषमे अरि-उर-विदारिणि,
खडगहस्ता तेजरूपिणि,
देवि दुर्जन-दलनि !

—श्री रामनरेश त्रिपाठी

नीलाबर परिधान हरित-पट पर सुदर है।
सूर्य-चद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ, प्रेम-प्रवाह सूर्य-तारे मडन हैं।
वदी विविध विहग शेषफन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद है बलिहारी इस वेष की
है मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।

—श्री मैथिलीशरण गुप्त

मै "मुँह बन्दी" का हार लिये, "मत लिखो" कठिन ककण धारे,
"भारत रक्षा" के शूलों की पाँवों मे बेडी झनकारे,
"हथियार न लो' की हथकडियाँ, रौलट का हिय मे घाव लिये,
डायर से अपने लाल कटा कहती थी, आँचल लाल किये॥

या

आधी रात करोडों बधन, अन्यायों से झुकी हुई,
पराधीनता के चरणों पर, आँसू ढाले रुकी हुई।

—श्री माखनलाल चतुर्वेदी

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि मातृ-भूमि के वदना-गीतो मे पहले दैवीकरण की भावना प्रधान थी। भारत-माता का जो रूप चित्रित किया गया था उसमे रूप की विराटता और अमित शक्ति का सकेत मिलता है। कवि के हृदय मे आशा और उल्लास का आभास दिखलाई देता है। परतु, माखनलालजी ने जो चित्र दिया है वह एक करुण मानवी का चित्र है, वह एक शक्तिहीन, बधनो से जकडी हुई अबला का चित्र है, प्रचड शक्ति-सयुक्त, खड्गहस्ता, स्वय-समर्थ दुर्गा का चित्र नहीं। पहले चित्रो मे आशा की किरणो का प्रकाश है, अतिम चित्र मे वेदना के आसुओ का तारल्य, पहले चित्रो मे उल्लास की व्यजना है, अतिम चित्र से झलकती है वेदना और व्यथा, पहले चित्रो मे शक्ति की हुकार है, अतिम चित्र मे विवशता का रोदन। साराश यह कि वे यथार्थ की ठोस भूमि पर ही पैर जमाए रहे, कल्पना के पखो पर चढ कर गगनगामी बनने का प्रयास उन्होने नही किया। देश की जैसी दीन दशा थी, वैसी ही उन्होने चित्रित कर दी। उस पर काल्पनिक देवत्व का आरोप उन्होने नहीं किया।

उनके राष्ट्रीय काव्य की एक बड़ी भारी विशेषता उसकी उपासना-भूमि मे है। वे देश की सेवा को भी भगवत्प्राप्ति का एक साधन मानते है। उनकी इस उपासना-भूमि का उल्लेख मै आग भक्ति के प्रकरण मे करूँगा।

भक्ति काव्य—

उनके काव्य की दूसरी धारा भक्ति की है। माखनलालजी के पास भक्त का विह्वल हृदय है। उन्हे भगवान मे अटूट श्रद्धा और अडिग आस्था है। इसका कारण ढूँढने के लिए हमे बहुत दूर नही जाना होगा। वे वैष्णव-कुल मे उत्पन्न हुए है, रेवा के पावन कूलो में उनका

शैशव बीता है। आज भी नर्मदाजी के किनारे नगरो की गली-गली मे राम-नाम गूंजता रहता है, पचासो मदिरो के सॉझ-सबेरे शख और घड़ियाल की ध्वनि के साथ चॉदी-सोने मे डूबते-उतराते रहते है। मदिर-मदिर के ऑगन मे असख्यो भक्तो को कूद-कूद कर नाचते हुए मैंने देखा है, और देखा है सैकडो-हजारो श्रद्वालुओ को बिना पद-त्राण के अमरकट और खबात की खाडी के दो दूरस्थ बिन्दुओ को मिलानेवाली, सौ योजन के शरीरवाली रजत-रेखा रेवा की भाव विह्वल हो परिक्रमा लगाते। गौरीशकर महाराज और धूनीवाले दादा कल ही तो यहॉ धूनी रमा कर घूम रहे थे और आज भी हरेराम महाराज की मस्त करतालो से रेवा की लहरें नाच रही है। यहॉ के कीर्त्तनो मे बच्चे कूदते है, बड़े उछलते है और बूढे सिर हिलाते है। वैष्णव कुल मे और ऐसे भक्तिपूर्ण वातावरण मे जन्म लेकर माखनलालजी का भक्त होना नितात स्वाभाविक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि वे किस प्रकार के भक्त है? उनमे सतो की निर्गुण-भक्ति प्रधान है या भक्तो की सगुण साकारोपासना प्रमुख है? कतिपय आलोचको ने उनकी तुलना सूफियो से की है। परतु, सूफियो का परमात्मा के प्रति कान्ता-भाव होता है और इनमे सेवक और सेव्य भाव की ही प्रधानता दिखलाई पडती है। इसलिए सूफियो से उनकी तुलना करना उचित प्रतीत नही होता। यदि हम उन्हे निर्गुण भक्तो की कोटि मे बैठाते है तो भी सगति नही बैठती। एक तो इनमे ज्ञानाश्रयी सतो की दार्शनिक पृष्ठभूमि का अभाव है और दूसरे ये भावना मे सगुण भक्तो के अत्यधिक निकट पहुँच गए है। परतु, उन्हे सगुणोपासक भक्त मानना भी युक्तियुक्त न होगा। उन्हे भगवान मे अडिग आस्था है। परतु, भगवान के किस रूप मे उनकी यह आस्था है, यह बात उनके काव्य से स्पष्ट नही होती। कतिपय रचनाओ मे वे भगवान राम

का स्मरण करते हैं, और कुछ दूसरी रचनाओ मे भगवान कृष्ण को सबोधन। कुछ रचनाएँ ऐसी भी है जिनमे राम और कृष्ण दोनों ही का नाम नहीं हैं। ये रचनाएँ किसी अज्ञात परतु व्यक्त सत्ता की ओर सकेत करती है। इस प्रकार यदि वे निर्गुण भक्त नही है और सगुण भक्त भी नहीं है, तो उनकी भक्ति का स्वरूप क्या है? वे किस प्रकार के भक्त हैं? क्या हम उनकी भक्ति को निर्गुण और सगुण भावना का समीकृत रूप मान सकते है? यदि ऐसा होता तो उनकी भावना के आलबन का एक सुनिश्चित रूप तो मिलना चाहिए था। परतु, वे कभी सगुण रूपों को सबोधन कर देते है और कभी किसी अनाम, अज्ञात को पुकार उठते हैं। तात्पर्य यह कि उनकी भक्ति का आलबन निश्चित नही है। परतु, यदि हम उनके समस्त काव्य को सामूहिक रूप से देखते है तो एक बात स्पष्ट हो जाती है। उनका झुकाव भगवान के कृष्ण रूप की ओर ही अधिक दिखलाई पडता है।

मध्ययुगीन भक्तो की भाव-विह्वलता, अडिग आस्था, अटूट श्रद्धा, अखड विश्वास, विनय, विचारधारा, अभिलाषा आदि का उनके काव्य मे सु दर सयोग हुआ है। भगवान के पद-पद्मो मे यदि वे अपने पाप पु ज को नष्ट होता हुआ देखते है[३९] तो वे कुटिल-मन-मानवो से क्रुद्ध भगवान को उपदेश से, आक्षेप से 'कालो' से न रूठने के लिए कहते है[४०]।

---

३९. हे देव! तेरे दाँव ही निर्णय करेगे आप,
उस ओर तेरे पाँव हैं इस ओर मेरे पाप।

४०. कालों से मत रूठो प्यारे सोचो प्रकट नतीजा,
जिससे जन्म लिया है वह काला ही था बीजा।
मुझसे कह छल-छद बने जो शान दिखाने वाले
मैं तो समझूँगा बाहर क्या भीतर भी हो काले।

भाव विह्वल होकर कवि कह उठता है कि मै भाव की चिन्धियो मे ममता का ताजा मसाला डाल कर चिक्कण हृदय-पत्र प्रस्तुत करता हूँ और उस पर नवधा की नौ कोनेवाली फ्रेम लगा देता हूँ। हे भगवान! तू उस पर अपना चित्र बना दे। मैं उस चित्र पर आत्म-विस्मृत होकर प्राण-पुष्प चढा दूँगा[४१]। उनकी कामना है कि वे उनके साँवले को पचभूत निर्मित अपनी पचवटी मे बसा ले और अत मे उसमें ही लीन होकर इस जग-ज्वाला को शात कर दे[४२]। परतु इस ज्वाला-शाति के समय शर्त्त रहेगी कि वह मनमोहन नयन मे ही बसा हो[४३]। वे आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ चारो ओर उस मोहिनीमूर्त्ति को ही देखना चाहते है[४४]। वे उस साँवली सूरत को प्राण के मोल पर भी नहीं भूलना चाहते[४५]। पद-पद्मो से दूर स्वर्ग को भी वे रौरव नरक के समान समझते है[४६]। एक दिन

---

४१. भाव-चिन्धियो मे ममता का डाल मसाला ताजा
चिक्कण हृदय-पत्र प्रस्तुत है अपना चित्र बना जा,
नवधा की, नौ कोने वाली, जिसपर फ्रेम लगा दूँ
चँदन, अक्षत भूल प्राण का जिस पर फूल चढा दूँ।

४२. मार पाँच बटमार, साँवले रह तू पचवटी में
छिने प्राण-प्रतिमा तेरी भी, काली पर्णकुटी में।
अपने जी की जलन बुझाऊँ अपना-सा कर पाऊँ,
"वैदेही सुकुमारि कितै गई" तेरे स्वर में गाऊँ।

४३. मै मिटूँ जिस रोज मनहर तू मेरी आँखों में हो।

४४ साँवली सी सूरत को माधुरी सी मूरत को
प्राण बलि जाने दे तू आँखों से न जाने दे।

४५. जिस ओर देखूँ बस अडी हो तेरी सूरत सामने
जिस ओर जाऊँ रोक लेवे तेरी मूरत सामने।

४६. पद-पद्मो से दूर, स्वर्ग भी जीवन का रौरव होगा।

सूरदासजी ने तग आकर गोपाल से उनकी गाय सम्हालने के लिए प्रार्थना की थी। कुछ वैसी ही विनय माखनलालजी ने भी की है[४७]। गीता के सव्यसाची को भगवान ने उपदेश दिया था—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषिददाति यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

इस उपदेश का श्रोता ने, सतो ने पालन किया और आज भी कवि अपनी कल्पना के कुसुम को कृष्णार्पण कर देता है। वे जीवन की नाना वृत्तियो को उनके उल्लसित रूप मे चित्रित कर कृष्ण चरणो मे चढा देते है।[४८]

पत्नी की मृत्यु के पश्चात् तीन वर्ष के दीर्घ काल तक कवि रोग के विकराल पजे मे रहा। उससे छूटने पर उसे अनुभव हुआ कि भगवान ने उसे नया जन्म दिया है। उसका हृदय विश्व-वनमाली के चरणो मे श्रद्धा से झुक जाता है। नव-जीवन का उल्लास, भगवान की सदय सत्ता मे विश्वास और हृदय के असीम आह्लाद की उन्मुक्त व्यञ्जना करते हुए 'जय जय' के निरतर नादो से कवि ने 'नव भारत' को गुजा

---

४७ गो गण सँभाले नही जाते मतवाले नाथ
दुपहर आई बर-छाँह में बिठाओ नेक।
वासना-विहग वृज-वासियों के खेत चुगें,
तालियाँ बजाओ आओ मिल के उडाओ नेक।

४८ नाचूँ जरा सनेह नदी में मिलूँ महासागर के जी मे
पागलनी के पागलपन ले तुझे गूँथ दूँ कृष्णार्पण मे।
उड़ने दे घनश्याम गगन मे।

दिया है।[४९] साराश यह कि माखनलाल जी को मध्ययुग के भक्त का हृदय मिला है। भावना-विचारणा मे, आस्था-अभिलाषा मे, उल्लास मे, विश्वास मे, याचना मे, प्रार्थना मे वे एक भक्त दिखलाई पड़ते है।

माखनलाल जी की भक्ति का दूसरा पक्ष भी है। वे राष्ट्र-सेवा को भी आराध्योपासना ही मानते है। देश-भक्ति को वे साधना-मार्ग मानते है जिस पर चल कर वे अपने आराध्य के चरणो तक पहुँच सकते है। उनकी गीत-गगा का सागर और कारा की कठिन तपस्या का वरदान एक है। उनके लिए जो भीतर भगवान है वही बाहर देश है। मरण को वे त्यौहार मानते है, कारण कि उससे बलिदान की पूर्णता प्रकाशित होती है और बलिदान के पूर्ण होने पर आराध्य प्रसन्न हो जाता है। दिनकर जी के शब्दो मे "उनके भीतर का योद्धा भक्त और भक्त योद्धा है।" वास्तव मे भक्ति भगवान के चरणो तक पहुँचानेवाला एक मार्ग है। माखनलाल जी देश-सेवा को भी एक मार्ग मानते है जिस पर चल कर भगवान के चरणो तक पहुँचा जा सकता है। दोनो मार्ग एक ही लक्ष्य तक पहुँचाते है। परतु, विद्वानो का ऐसा मत रहा है कि आज के युग मे आत्मोन्मुख, पराश्रयापेक्षी, निष्क्रिय, भाव-प्रधान भक्ति की अपेक्षा परोपकारमूलक, स्वावलबिनी, उद्यम प्रधान, कर्मप्रिय, राष्ट्र सेवा ही अधिक हितकर है। आज हम स्वतत्र है। परतु, जब देश परतत्र था, चारो ओर निराशा छाई हुई थी, तारुण्य सोया था, उस समय घर के एकात कोने मे

---

४९. **जय जय जग-आधार विश्व-वन-माली जय जय**
नित नव रचना-कुशल अरे ओ ख्याली जय जय
नव बल, नव उत्साह नया पन छाया जय जय,
हम नये नये लो हो गये नई नई पाई विजय

ध्यान लगा कर भाव-मग्न हो जाने से या मदिरो मे नाच-नाच कर भजन गाने से देश का उद्धार न होता। आवश्यकता थी सोये हुए तारुण्य-केसरी को ललकार कर जगाने की, स्वातन्त्र्य-सग्राम मे सैनिको का सघट्ट जमा करने की, मातृ-भू की वेदी पर अपने मस्तको को फूल बना कर चढा देने वालो को उत्साहित करने की। माखनलाल जी ने यही सब किया। उनकी भक्ति देशकाल के अनुरूप ही रही। छत्रपति शिवाजी भी इसी प्रकार के भक्त थे। कहा जाता है कि पहले वे एकात साधना की इच्छा रखते थे, परतु पश्चात् समर्थ गुरु के उपदेश से उन्होने देश-सेवा का व्रत ले लिया। बन्दा बैरागी के विषय मे भी ऐसी ही बातें बतलाई गई है। एकात, वैयक्तिक भावना को सामाजिक भूमि पर प्रतिष्ठित करने का जो श्रेय समर्थ गुरु रामदास जी को था वही इस युग मे योगिराज अरविन्द को है। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद सर्व प्रथम उनके ही श्री मुख से स्वरित हुआ। उन्होने ही सबसे पहले देश-सेवा को आध्यात्मिक रूप-रग दिया। तभी से देश सेवा भगवान की पूजा बन गई। हिन्दी मे इस पूजा-भावना का यदि किसी ने समुचित सत्कार किया है तो वे माखनलाल जी ही है। हिन्दी के और किसी भी कवि मे यह भावना नही मिलती। उनके प्रारभिक काव्य मे इस भावना की झलक मिल जाती है। आगे चल कर तो यह भाव धारा प्रचड वेग धारण कर लेती है। शूल की वीर-सेज पर राते काटने का निश्चय कर वे अपने जीवन को आशा की डोर लेकर आई हुई वैभव की पनिहारिन के फदे मे न फॅसने के लिए चेतावनी देते है, क्योकि वे अपना बलिदान कर अपने आराध्य की झॉकी देखना चाहते है[५०]। यहीं हमे उनके आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की झलक मिल जाती है।

---

५०. **वैभव की पनिहारिन आई द्वारे अमृत पिलाने**
रूठी, दु खित गई, तुम थे मुझ पर दीवाने,

प्रारंभिक काव्य मे ही उनकी दो कविताएँ 'रामनवमी' पर मिलती हैं। दोनो मे देश-प्रेम और भक्ति का सुदर सयोग हुआ है। कवि भगवान से देशोद्धार के लिए प्रार्थना करता है। आर्यों का रथ पथ उन्मुक्त हो, क्षत्रिय-कुल का गौरव जागरित हो और देश स्वतत्र हो, इन सबके लिए कवि भगवान का आह्वान करता है[५१]। परतु दोनो कविताओ के स्वर मे अतर है। पहली कविता सन् १६०६ मे लिखी गई है, और दूसरी इसके दस वर्ष पश्चात् सन् १६१६ मे लिखी गइ है। पहली कविता मे भक्ति का रग गाढा है, आशा के स्वर सबल हैं, विनय की नम्रता और विश्वास की दृढता है। परतु, दूसरी 'रामनवमी' तक आते-आते भक्ति का रग फीका हो गया है, आशा के स्वर धीमे पड़ गए हैं, विनय के स्थान पर आवेश और विश्वास के स्थान पर असतोष छा गया है। चिरकाल तक पुकारते-पुकारते कवि की पुकार चीत्कार बन जाती है। इस बार की नवमी को भी खाली जाते देख कर कवि धैर्य खो कर कह उठता है, "क्या नवमी फिर भी खाली जायेगी रे इस बार।" यह कविता तत्कालीन राजनीतिक निराशा का सुदर चित्र उपस्थित करती है। बात यह है कि ये दोना कविताए सकाम स्वरो से पूर्ण है। कवि की कामना है कि भगवान उसके देश का उद्धार करे। परतु, बार-बार स्वरो के निष्फल शून्य मे विलीन होने पर——बँधे हुए द्वार पर निराश भिखारी की अतिम खीझ भरी पुकार-सा——कवि इस कविता मे अत्यत उद्विग्न हो उठा है। इस प्रकार हम देखते है कि माखनलालजी की भक्ति मे मध्ययुगीन

आज शूल की वीर सेज पर सोचा काटें रातें,
वह आई आशा की डोरी लेकर, करने घातें,
बँध मत जाना मेरे जीवन, बलि हो झाँकी झाँकूँ,

५१. पधारो, दशो दिशा मे नाथ हुआ आर्यो का रथ-पथ बद
पधारो, रघुकुल की वह शान—जिलाओ—दिखला कर स्वच्छद।

भक्तो की भावना और विचारणा है, समयानुकूल भक्ति का स्वस्थ स्वरूप है और चिरकालिक प्रतिकूल परिस्थितिजन्य असतोष की झलक भी।

प्रेम-काव्य—

द्विवेदी-युग बडा आदर्शप्रिय, मर्यादावादी और नीरस युग रहा है। इस युग मे प्रेम जैसी प्रवृत्ति के लिए स्थान न था। शृगार इस युग की अस्पृश्य प्रवृत्ति समझी जाती थी। कवि गण इसका चित्रण अत्यत डरते-डरते करते थे। जो करते भी थे वे उसे आदर्श के रग मे डुबो डुबो कर करते थे। इस युग का प्रेम-काव्य श्रीश्रीधर पाठक के 'एकातवासी योगी' से प्रारभ होता है और उससे प्रभावित होकर 'प्रेम-पथिक', 'शिशिरपथिक', 'मिलन' 'ग्रन्थि' आदि मे बहता रहा है। इसकी सर्व प्रथम विशेषता यह रही है कि यह आख्यानमूलक है। दूसरे, उसका आदर्शीकरण किया गया है। पतजी की 'ग्रन्थि' मे प्रेम के निराशामूलक स्वरूप की भी अभिव्यक्ति हुई है। परतु, प्रेम के आदर्शीकरण की प्रवृत्ति प्राय सब कवियो मे पाई जाती है। प्रेम के उदात्तीकरण की यह धारा छायावाद युग की भूमि मे भी बहती रही। 'प्रेम पथिक' मे प्रसादजी ने प्रेम-पथ का उद्देश्य उस सीमा पर पहुँचना बतलाया है जिसके आगे कोई राह नही है [५२]। प्रेम को उन्होने निर्वैयक्तिक और परमेश्वर का स्वरूप माना है [५३]। प्रेम की यही आदर्शात्मिक प्रवृत्ति समाजोन्मुखी कर के समाज प्रेम और विश्व प्रेम मे पर्यवसित कर दी गई है। 'प्रियप्रवास' की राधा इसका ज्वलत उदाहरण है।

---

५२. इस पथ का उद्देश्य नही है श्रात भवन मे टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा पर जिसके आगे राह नही

५३ इसका परिमित रूप नही जो व्यक्ति मे बना रहे
क्योंकि यही प्रभु का स्वरूप है जहाँ कि सबको समता है।

परतु, जब हम माखनलाल जी की प्रेमाभिव्यक्ति पर दृष्टिपात करते है तो हमे ज्ञात होता है कि उनकी प्रेमाभिव्यक्ति आख्यानमूलक नही है। दूसरे, उनमे वैयक्तिक पक्ष भी मुखर हो उठा है और तीसरे, उनका प्रेमादर्श कुछ दूसरे ही प्रकार का है। निस्सदेह माखनलाल जी द्विवेदी-युग की प्रेम-काव्य-धारा से पृथक खडे हुए दिखलाई देते है। हमें आगामी युग की प्रमुख प्रवृत्ति व्यक्तिवाद का सर्वप्रथम प्रस्फुटन इनमे ही दिखलाई देता है।

सन् १९१४ मे कवि की धर्मपत्नी का देहावसान हो गया और तभी से उनके हृदय का प्रेम पिघल-पिघल कर वेदना की धारा बन कर बह रहा है। सन् १४ के पहले की प्रेम-सबधी कविताए उनके काव्य-सग्रहो मे नही है। इस वर्ष से ही उनका 'प्रेमी' और 'साहित्यिक' एकाकार हुए जान पडते है। अपने जीवन-साथी का साथ छूटा देख कर कवि फूट-फूट कर रो पडा। निम्नाकित पदो मे वेदना की मुक्त और मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है —

> भाई, छेडो नही, मुझे खुल कर रोने दो'
> यह पत्थर का हृदय आँसुओ से धोने दो,
> रहो प्रेम से तुम्ही मौज से मजु महल मे,
> मुझे दुखों की इसी झोपड़ी मे सोने दो।
> कुछ भी मेरा हृदय न तुमसे कह पायेगा,
> किन्तु फटेगा,— फटे बिना क्यो रह पायेगा,
> सिसक–सिसक सानद आज होगी श्री–पूजा
> बहे कुटिल यह सुख दुःख क्यो बह पायेगा।

व्यक्तिगत वेदना का यह स्पष्ट व्यक्तीकरण आगे इनमे भी नही मिलता। कभी-कभी कवि प्रेम की उस स्थिति का भी वर्णन करने लगता है जिसमे चार आँखे एकाकार हो जाती है और बिना कुछ

कहे ही मन समझ लिया जाता है। परतु, इस प्रेम व्यापार की सार्थकता कवि तभी मानता है जब वह देशानुराग मे परिणत हो जावे। उसके मत में प्रेम का वास्तविक अर्थ झाँसीवालियो ने ही समझा था अथवा वे समझ सकती है जिन्हे मसूर-सा दूल्हा मिले और उनके यौवन का फूल शूली पर खिले —

> किन्तु यह दिन व्याह का, यह गालियाँ,
> जानती है सिर्फ झाँसीवालियाँ,
> या कि फिर मसूर–सा दूल्हा मिले,
> मधुर यौवन-फूल शूली पर खिले।

हम देखते है कि कविता का आरभ प्रेम से होता है और अत बलिदान की भावना मे। कहा गया है कि उनकी अत्यल्प रचनाएँ ही ऐसी हैं जिनमे इस प्रकार का भावातर न हो। इसका कारण क्या है? यहाँ यह ध्यान मे रखना आवश्यक है कि यह भावातर केवल उनकी प्रेम-सबधी रचनाओ मे ही मिलता है। देश-प्रेम सबधी रचनाओ मे यह बात नही है। देश-प्रेम सबधी रचनाओ मे भाव की एकतानता आदि से अत तक अव्याहत बनी रहती है। कोई दूसरा विरोधी भाव उसमे नही आ पाता। इसलिए प्रेम-सबधी रचनाओ मे भाव-व्याघात का कारण देशानुराग की प्रबलता माना जा सकता है। अर्थात् उनमे देश-प्रेम इतना प्रबल और प्रखर है कि प्रेम की भावना उठते न उठते उसकी तीव्रता मे तिरोहित हो जाती है। परतु, यदि वास्तव मे ऐसा होता और उनकी प्रेमानुभूति तीव्र न होती तो उनकी अनेक प्रेमानुभूतिपरक रचनाओ की मर्मस्पर्शिता का रहस्य समझ मे न आता और न उनकी परवर्त्ती रचनाओ मे प्रेम का रग गाढा ही हो पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि वेदना के भार को हल्का करने के लिए या तो महत् उद्देश्य की सघन छाया मे आ

जाता है या भक्ति की गगा मे नहा कर विरहातप को शांत कर लेना चाहता है। यह भावातर वास्तविक न होकर एक प्रकार का आवरण कहा जा सकता है जिसके भीतर कवि अपने आँसुओ को छिपाने का प्रयास करता है। इसी भावातर मे हमे उनके प्रेम के आदर्शीकरण का स्वरूप भी उपलब्ध होता है। द्विवेदी युग के कवियो ने प्रेम का आदर्शीकरण आध्यात्मिक लोक मे जाकर किया, परतु माखनलाल जी ने अपने हृदय की प्रेम-पयस्विनी को मातृ-भूमि के चरणो की ओर मोड कर उसे एक अभिनव रूप मे उपस्थित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके प्रेम का आदर्शीकरण तत्कालीन कवियो से भिन्न है।

उनकी 'उड़ने दे घनश्याम गगन में' कविता एक नव दिशा का सकेत करती है। परतु कृष्णार्पण की भावना इसमे भी जुड़ी हुई है। अभिव्यक्ति की आधुनिकता का इसमे अच्छा परिचय मिलने लगता है।

व्यग काव्य : —

व्यग के मूल मे आलोचनात्मक प्रवृत्ति काम करती है। अवाछित बातो को प्रभावपूर्ण शैली मे सामने लाकर उनका परिहार करना उसका प्रयोजन होता है। द्विवेदी-युग के प्राय सभी कवियो ने देशवासियो की राजनीतिक कुठा, सामाजिक सुषुप्ति एव धार्मिक और सास्कृतिक ह्रासशील प्रवृत्तियो को लक्ष्यकर व्यग का प्रयोग किया था। माखनलाल जी ने भी इसको अपने काव्य मे प्रश्रय दिया है। 'साहित्य देवता' के निबधो मे तो इसका प्रचुर परिमाण मे प्रयोग मिलता है। उनके कुछ व्यग सामाजिक है, कुछ मनोवृत्तियो पर है और कुछ शासन-सत्ता से सबधित है। 'हे भाई' कविता मे समाज मे फैली हुई अत्याचार, कायरता, हिंसा, छल, कपट, पाखड, नास्तिकता, निर्दयता आदि वृत्तियो पर व्यग किया गया है। परतु, यह व्यग वाच्य है, व्यग्य नहीं। अभिधाश्रित व्यग कलात्मक दृष्टि से बहुत उच्चकोटि का नहीं माना जा सकता। शासन-सत्ता

से सबंधित व्यग 'चरण की ठोकर' कविता मे दिखाई देता है। उदाहरण के लिए –

इतने पर भी कैद मे जो मे इतराने लगूँ,
क्यों न भला श्रीचरण की मृदु ठोकर खाने लगूँ।

इस पद मे 'श्री चरण' और 'मृदु' मे अत्य त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि का प्रयोग हुआ है। इसमे 'श्री चरण' का अर्थ होगा क्रूर पैर और 'मृदु' का अर्थ होगा कठोर। यहाँ पर व्यग व्यग्य है, वाच्य नही। 'तीरन्दाजी' कविता मे कवि ने पुरुष की मनोवृत्ति पर व्यग किया है। सवादात्मक शैली मे राम और सीता के प्रतीको द्वारा कवि ने पुरुष की सकुचित मनोवृत्ति को सु दर रीति से व्यजित कर दिया है। सीता के पूछने पर कि दोष न हो तो तनिक मुझे भी तीर चलाने दो, राम कहते है –

दोष ? हाँ दोष यही होगा, ले,
अबला कह पायेगा न कोई तुझे
तू न होती तो जीतता कैसे
दोष यह देवेगा ससार मुझे।

इस पद से व्यञ्जित होता है कि पुरुष ने स्त्रियो को कर्म-क्षेत्र मे प्रविष्ट नही होने दिया। यदि वे कर्म-क्षेत्र मे प्रवेश कर लेती तो वे अबला न रहती और न अत्याचार ही सहती। दूसरे, पुरुष को जीवन-सग्राम की विजय का अखड, अविभाज्य श्रेय भी नही मिलता। इस कारण से पुरुष ने स्त्री को सबल नही होने दिया। एक स्थान पर उन्होंने आधुनिक अपटूडेट विद्यार्थी-वर्ग पर भी व्य ग कस दिया है

बूट चाहिये, सूट चाहिये
कालर हैट और नेकटाय
केन चाहिये, चेन चाहिये–
घड़ी सहित फिर डेली चाय

देखो इन पर लिखा न होवे
कहीं "मेड इन हिन्दुस्थान।"
क्योंकि हमीं तो हैं इस बूढे
भारत के भावी विद्वान्।

उनकी एक अप्रकाशित 'स्वर्ग' नामक रचना मे बगुला-भक्तो की भी खबर ले ली गई है —

खिची हुई सूरतो के लोग वहाँ बैठे होगे,
माला लटकाये, लबा चदन लगाये खूब
'ब्रह्म सत्य,' 'जगन्मिथ्या,' 'सत्यवद,' 'धर्मचर'
सुनते बुखार चढ आयेगा उठेगे ऊब।

इस प्रकार हम देखते है कि उनका व्यग बहुमुखी हो कर बहा है। कभी वह राजनीति की लटो मे उलझ जाता है और कभी समाज के समीप सरक आता है। कभी वह धर्म की धज्जी उड़ाता हुआ दिखलाई देता है, तो कभी अनुकृत सभ्यता की शिखा पकड कर हिलाने लगता है।

यह हुआ उनके प्रारभिक काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियो का विश्लेषण।

प्रारंभिक काव्य का बहिरग :—

कवि के प्रारभिक काव्य के अतरग का अवलोकन करने के पश्चात् अब हम उसके बहिरग पक्ष पर भी दृष्टिपात करेंगे। उसके अतर्गत हमको भाषा, छद और शैली पर, तत्कालीन पृष्ठभूमि को ध्यान मे रखते हुए, विचार करना है।

१७ वी शताब्दी के साहित्यिक नेता भारतेन्दुजी ने कविता के अतरग मे क्रान्ति उत्पन्न करके उसे जीवन के निकट तो ला दिया था, परतु प्राक्तन सस्कारो मे पले होने के कारण वे ब्रज-भाषा की माधुरी का मोह न छोड सके। चिर प्रतिष्ठित ब्रज-रानी को काव्यासन से उतार कर जन-वाणी को उसके स्थान पर मूर्द्धाभिषिक्त करने का महत्कार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी

के हाथो से सपन्न हुआ। जिस समय द्विवेदीजी ने यह काम अपने हाथों में लिया उस समय तक श्रीधर पाठक के 'एकातवासी योगी' और 'जगत सचाई सार' खडी बोली के उदीयमान रूप का परिचय दे चुके थे। परतु पाठकजी ने "कहॉ जले है वह आगी" जैसे प्रयोग भी किए थे। द्विवेदीजी की रचनाओ और उनके अनुवादो का प्रभाव अपेक्षाकृत कम दिखलाई पड़ा। द्विवेदीजी भाषा को सरल, सुबोध तथा शुद्ध व्याकरण सम्मत बनाना चाहते थे। उनका आदेश था कि गद्य और पद्य की भाषा भिन्न न हो और शब्दो का प्रयोग रसानुरूप हो। सरल और सुबोध भाषा को भाषा का 'प्रसाद गुण' कहते है। यदि प्रासादिकता को बोध-स्तर सापेक्ष माने तो भाषा की शैशवावस्था मे उसका अर्थ गद्यात्मकता होगा। व्याकरण सम्मत शुद्ध भाषा के आग्रह ने ब्रज भाषा की सहज माधुरी को हिन्दी की हद मे आने से रोका। परतु ब्रज भाषा के चिर सचित मधु का लोभ अनेक कवियो को बीसवी शताब्दी मे भी ब्रज भाषा मे रचना करने के लिए बाध्य करता रहा। प्रसादजी ने 'चित्राधार' की रचना पहले ब्रज भाषा मे ही की थी। रत्नाकरजी का 'उद्धव शतक' अब भी काव्य रसिको को आनद देता है और आज भी आचार्य रसालजी ब्रजभाषा के कवित्त सवैयो के साथ 'तूली तूली' और 'भूली भूली' को रख कर कुढ जाते हैं। जब हिन्दी ने ब्रज के प्रभाव को अस्वीकार कर दिया तो वह सहज ही उर्दू काव्य रूपो और शब्दो की ओर उन्मुख हुई। उसमे उर्दू का चलता और चटकीलापन दिखलाई पड़ने लगा —

चार डग हमने भरे तो क्या किया,
है पडा मैदान कोसों का अभी।
काम जो है आज के दिन तक हुए,
है न होने के बराबर वे सभी।

परतु द्विवेदीजी ने सस्कृत वर्णिक वृत्तो का हिन्दी मे प्रयोग करने के

लिए और सस्कृत के श्रेष्ठ ग्रथो का हिन्दी मे अनुवाद करने के लिए कवियो को आदेश दिया और स्वय इस कार्य मे सलग्न हुए। फलतः हिन्दी मे भी सस्कृत का पौरुष परिलक्षित होने लगा। उदाहरण के लिए हरिऔधजी की निम्नाकित पक्तियाँ उद्धृत की जा सकती है —

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दुबिम्बानना।
तन्वगी कलहासिनी सुरसिका क्रीडा-कला-पुत्तली।
शोभा-वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य-लीलामयी।
श्रीराधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य सन्मूर्ति थी।

इस प्रकार इस युग मे हमको भाषा के तीन रूप उपलब्ध होते है —

(१) ब्रज मिश्रित हिन्दी या शुद्ध ब्रज
(२) उर्दू प्रभाव सयुक्त हिन्दी
(३) और सस्कृतनिष्ठ हिन्दी

आचार्य द्विवेदीजी का झुकाव सस्कृतनिष्ठ शुद्ध हिन्दी की ओर ही रहा। फलस्वरूप भाषा दिन पर दिन गद्यात्मक और रसहीन होती गई। "क्या न विषयोत्कृष्टता लाती विचारोत्कृष्टता ?" जैसे प्रयोग भी किए जाने लगे।

छन्द-क्षेत्र मे भारतेन्दु-युग मे ही नवीनता के दर्शन होने लगे थे। ब्रज-भाषा के कवित्त, सवैया, दोहा, कु डलियाँ, गेय-पद आदि के अतिरिक्त बँगला का 'पयार', फारसी की 'गजल' और 'बहर' तथा लोकगीतो के लावनी, कजली, ख्याल, खिमटा आदि लेकर भारतेन्दु और प्रेमघनजी ने हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि की थी। परतु द्विवेदीजी ने सस्कृत वर्ण-वृत्तो का हिन्दी मे पुनरावतरण किया। वे सस्कृत से तो प्रभावित थे ही, तत्कालीन मराठी काव्य-परपरा से भी प्रभावित थे। उस समय मराठी मे वर्ण-वृत्तो का ही अधिकतर प्रयोग किया जा रहा था। इसको देख कर उनके मन मे हिन्दी मे भी वर्ण-वृत्तो का प्रयोग करने की उत्कठा जागृत

हुई। उन्होने 'महिम्न स्तोत्र', 'विहार-वाटिका' और 'ऋतु तरगिणी' मे स्वय अनेक वर्णिक छदो (शिखरिणी, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, बसततिलका, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्र वज्रा, स्रग्धरा आदि) का प्रयोग किया और अन्य कवियो को भी इनका प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया। छद विधान के विषय मे उनके निम्नलिखित निर्देश थे --

(१) सामान्य कवियो को विषय के अनुकूल छन्दोयोजना करनी चाहिये।

(२) छद-विधान मे नवीनता लानी चाहिए।

(३) किसी एक छद मे ही काव्य-रचना का विशेष कौशल लाना चाहिये।

(४) पदान्त मे अनुप्रासहीन छद भी भाषा मे लिखे जाने चाहिये।

छद-विधान मे नवीनता लाने के लिए वे सस्कृत-प्रयुक्त वृत्तो तथा बोल-चाल की हिन्दी-कविता के लिए उर्दू के छदो को उपयुक्त समझते थे। सस्कृत वृत्तो का स्फुट प्रयोग प० चन्द्रशेखरधर मिश्र और राजा लक्ष्मणसिंह चौहान ने किया था, परतु आयोजित प्रयत्न द्विवेदीजी के द्वारा ही हुआ। सस्कृत वृत्तो मे अत्यानुप्रास नही होता था। द्विवेदीजी ने भी इस प्रकार का दिशा-निर्देश किया। परतु इस युग के अधिकाश कवियो ने अन्त्यानुप्रास का मोह नही छोड़ा। केवल हरिऔधजी का 'प्रियप्रवास' ही इस दिशा का दीप-स्तभ कहा जा सकता है। श्री नाथूराम 'शकर' ने बधन मे ही छद का चमत्कार सिद्ध किया और मात्रिक छदो मे भी वर्णिक बधन का आयोजन किया। भारतेन्दुजी और प्रतापनारायण मिश्र ने उर्दू छदो का मार्ग भी खोल दिया था। द्विवेदीजी ने भी इस प्रवृत्ति का अभिनदन ही किया। हरिऔधजी ने उर्दू छद-शैली से प्रभावित होकर चौपदे, चौतुके, छैपदे, छैतुके लिखे। हाली के मुसद्दसो (षटपदियो) से

प्रभावित होकर सनेहीजी, माखनलालजी, भगवानदीनजी आदि कवियो ने हिन्दी के मात्रिक छदो से ही षटपदियाँ बनाई । बॅगला के माइकेल मधुसूदनदत्त के 'मेघनाद बध' ने भिन्न तुकात कविता को बड़ा बल दिया। गणवृत्तो एव वर्णवृत्तो मे तुकातहीन कविता का प्रयास तो अनेक कवियो ने किया, परतु मात्रिक छदो मे इस प्रकार का प्रयास सर्व प्रथम प्रसादजी ने ही किया। २१ मात्रा के अरिल्ल छद मे उन्होंने 'महाराणा का महत्व' और 'करुणालय' की और ३० मात्रा के छद मे 'प्रेमपथिक' की रचना की। उदाहरण के लिये —

कहो कौन है ? आर्य जाति के तेज सा
देश-भक्त, जननी के सच्चे दास है,
भारतवासी ! नाम बताना पडेगा,
मसि मुख मे ले अहो लेखनी क्या लिखे ।

श्री सुमित्रानदन पत ने भी 'पीयूषवर्षी' छद मे 'ग्रन्थि' की रचना की। गणवृत्त, वर्णिक वृत्त तथा मात्रिक वृत्तो मे अन्त्यानुप्रास से मुक्ति मिलने पर भी एक न एक बधन लगा ही रहा। छदो के तीन बधन होते है। परिमाण, अन्त्यानुप्रास और लय। निरालाजी ने लय प्रधान छदो की रचना की और शेष दो बधनो को अस्वीकार कर दिया। लय मात्रा-प्रधान या वर्ण प्रधान हो सकती है। वर्णिक लय प्रधान मुक्त छद का एक उदाहरण यह है —

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न अमल कोमल तनु तरुणी
जुही की कली
दृग बद किए शिथिल पत्राक मे

अँग्रेजी की चतुर्दशपदिया (Sonnets) का प्रयोग भी कवियो ने किया। बँगला के त्रिपदी और पयार छदो को भी हिन्दी मे पचाने का प्रयास हुआ। चिरकाल से चली आती हुई गीत परपरा का पालन भी प्रसाद, रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न, मैथिलीशरणगुप्त, लोचनप्रसाद पाडेय आदि कवियो ने किया। उर्दू की गजल शैली भी कतिपय कवियो ने लय के साथ और कुछ कवियो ने छद और लय दोनो के साथ स्वीकार कर ली। माखनलाल जी, सनेही जी, श्री बदरीनाथ भट्ट आदि कवियो ने इसका सुन्दर प्रयोग किया है। इस शैली के गीत 'राष्ट्रीय वीणा', 'भारतगीताजलि', 'राष्ट्र भारती' मे प्रचुर परिमाण मे सगृहीत है। पद-गीत, गजल गीत तथा लोकगीतो के सयोग से इस युग का सर्व प्रमुख प्रगीत शैली का प्रादुर्भाव हुआ। अग्रेजी के सबोध-गीत (Ode), वीर-गीत (Ballad) तथा शोकगीत (Elegy) भी हिन्दी मे दिखलाई पड़ने लगे। इस प्रकार हम देखते है कि इस युग के कवि छदो के विषय मे बड़े सजग और सचेष्ट थे। वे जहाँ भी जो अच्छी वस्तु मिलती थी, उसे ग्रहण कर लेते थे। सस्कृत, बँगला, उर्दू, अँग्रेजी और जन-साधारण से भी उन्होने काव्य रूपो को चुन-चुन कर ले लिया है। इस युग मे सैकडो प्रकार के छद-प्रयोग दिखलाई पडते है। हम यहाँ हिन्दी की आत्मा को अपनी अभिव्यक्ति के उपयुक्त माध्यम की खोज मे व्याकुल देखते है।

भाषा और छद के क्षेत्र मे इस युग मे जितनी जागरूकता परिलक्षित होती है उतनी शैली के क्षेत्र मे नही। द्विवेदीजी कविता मे मनोरजन और उपदेश दोनो को अनिवार्य मानते थे। "कविता का विषय मनोरजक और उपदेशजनक होना चाहिए।"—यह उनका आदेश था। रीति-कालीन काव्य विषयो के विरोध मे उन्होने कहा था—"यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत-अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओ

पर प्रबध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओ के 'गतागत' की पहेली बुझाने की। चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनत आकाश, अनत पृथ्वी, अनत पर्वत,—सभी पर कविता हो सकती है, सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरजन हो सकता है।" उपदेश को कविता का विषय घोषित कर देने से जहाँ काव्य मे एक ओर नीतिमत्ता आई वहाँ दूसरी ओर नीरसता भी छाया के समान आ लगी। द्विवेदीजी ने कवियो को जो विषय दिए थे वे वर्णनात्मक कोटि के थे और आचार्य-श्री को भाषा भी गद्य के समीप की ही अभिप्रेत थी। रस-राज श्रृगार का काव्य से बहिष्कार कर दिया गया और ब्रज की मधुर पदावली को भी हिन्दी कवियो ने अधिकतर स्वीकार नही किया। इधर भाषा को व्याकरण-सम्मत-शुद्धता की डोरी मे बाँध कर गद्य के और भी निकट खीच दिया गया। इस प्रकार उपदेशात्मकता, श्रृगार के बहिष्कार तथा ब्रज भाषा की मधुर पदावली के अस्वीकार, वर्णनात्मक विषय, व्याकरण-सम्मत शुद्ध भाषा आदि तत्वो ने मिलकर इस युग की शैली को नितान्त नीरस और इतिवृत्तमयी कर दिया। ब्रज भाषा की मधुर कविताओ को पढने के बाद द्विवेदी युग की प्रारभिक कविताओ को पढ कर जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा था—"अब देखिये कैसी भोडी कविता है।" परतु यह भोडापन आगे चल कर इस युग मे ही बहुत कुछ दूर हो गया था। मनोरजन के लिए द्विवेदीजी ने चमत्कारात्मक काव्य को प्रोत्साहन दिया। इसके लिए उन्होने सस्कृत के सूक्ति-रत्नो का सचय कर हिन्दी की शोभा बढाई। सस्कृत से ही कवियो को अन्योक्ति काव्य की प्रेरणा भी प्राप्त हुई। इस प्रकार हिन्दी मे सूक्ति और अन्योक्ति शैलियाँ भी आई।

द्विवेदी युग के बहिरग का विहगावलोकन करने के पश्चात् अब माखनलालजी के प्रारभिक काव्य के बाह्य पक्ष पर विचार करना उपयुक्त

होगा। भाषा की दृष्टि से उन्होने ब्रज भाषा मे भी कतिपय रचनाएँ की हैं। उदाहरण के लिये —

तोको ही नित रटे शेष शभु अरु नारद।
पाकर तेरी प्रभा हुये ये विज्ञ विशारद॥
ध्यान किये थे भगत भाव भाषा के दारद।
कीजिये इत आ कृपा अहो माता मम शारद॥

सरस्वती की विनय—असग्रहीत

उपर्युक्त पद मे 'तो को', 'इत आ' प्रयोग ठेठ बुन्देली के लगते है। 'दुख भोगी' नामक कविता मे ब्रज भाषा का प्रयोग है, यथा—

कैदीपन को मुकुट सॅवारे धारा की बैजन्ती डारे,
विपद चॅवर डोलत मस्तक पर परत प्रहार पुहुप सुख कारे।
ऐ प्यारे, दुखभोगी प्यारे।

जीवन-बीज लगात सक तजि उठत भाग्य-अकुर रतनारे
निहरत, हॅसत, फॅसत है तारी विपद-विहग उडत बेचारे।
ऐ प्यारे, दुखभोगी प्यारे।

इसी प्रकार हेला, लखो, बिराये, मनुहार, वारना, रतनारे आदि प्रयोग भी यत्र तत्र मिल जाते है। परतु ये प्रयोग अत्यत स्वाभाविक ढग से भाषा के सहज प्रवाह मे आ गए है। उपर्युक्त दो उदाहरण कवि की सामयिक उमग के परिचायक कहे जा सकते है। कवि की अभिरुचि ब्रज भाषा की ओर नही दिखलाई पडती। उर्दू के जन-प्रचलित शब्दो का इस कवि ने अपने साहित्य मे प्रचुर प्रमाण मे प्रयोग किया है। मुबारक बादी, आजादी, इकार, ख्याली, गुमराह, कुर्बान, मेहमान, होश, जोश, गुलाम, मजबून, मजबूर, नूर, इज्जत, अरमान, आबाद, रोज, सिर्फ, बाजुओ, नक्काश आदि शब्द बड़े सुन्दर और स्वाभाविक ढग से इनके

काव्य मे प्रयुक्त हुए है। सस्कृत के शब्दकोष की ओर इनकी दृष्टि कम गई। फिर भी अब्धि, कुत्सित, भृत्य जैसे शब्द यथा स्थान आ ही गए। वर्चस्व जैसे एकाध अप्रचलित शब्द भी अन्त्यानुप्रास के आग्रह से उन्होने स्वीकार कर लिए है। व्यगपूर्ण रचनाओ मे उन्होने आवश्यकतानुसार अग्रेजी के शब्दा का प्रयोग किया है। पासपोर्ट, कमाडर, फीस, बूट, सूट, कालर, हैट, चेन, मेडइन्, पार्लिमैन्ट, रिफार्म एक्ट आदि शब्द व्यग की तीव्रता को और भी प्रखर करने के लिए प्रयुक्त हुए है। अपने मानस मन्दिर के आराध्य के चित्र की नवधा की नौकोनेवाली 'फ्रेम' भी बहुत फिट बैठी है --

नवधा की नौ कोनेवाली
जिस पर फ्रेम लगा दूॅ
चदन अक्षत भूल प्राण का
जिस पर फूल चढ़ा दूॅ।

सस्कृत की सामासिक पदावली का प्रयोग उन्होने किया तो है, परतु बहुत कम। दोष-दुख-दुर्जन-पालक, पार्थ-पुत्र-बल, लव-कुश कौशल जैसे प्रयोग अधिक नही है। भाषा का सहज अयत्न-साध्य स्वरूप ही उनके काव्य मे उपलब्ध होता है। भिन्न-भिन्न भाषाओ से निस्सकोच शब्द ग्रहण उनकी उदार और गुण-ग्राही वृत्ति का परिचय देता है। न तो उनकी भाषा सस्कृतमयी क्रियाशेष हिन्दी ही हुई और न 'शुद्ध' सरल होते-होते शुष्क गद्य की सीमा तक गिरी। उन्होने जनता के सुख दुख को, जनता की आशा-आकाक्षाओ को जन वाणी मे ही व्यक्त किया है। शब्द-चयन की स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा सरस, सजीव, भावाभिव्यक्ति मे समर्थ और सपन्न रही। द्विवेदी युग की नीरसता और गद्यात्मकता उसमे न आने पाई। निश्चय ही माखनलालजी ने द्विवेदी-युग मे, जब कि आचार्य और उनके अनुयायी खड़ी बोली को खडी करने मे व्यस्त थे,

भाषा का स्वतन्त्र, समर्थ और अनुकरणीय स्वरूप उपस्थित कर दिया था। भाषा का स्वरूप व्यवस्थित न होते हुए भी उसकी अद्भुत मिठास आलोचकों ने स्वीकार की है। उनकी भाषा मे सस्कृत का पाडित्य नहीं है और न उर्दू का आधिक्य ही। दैनिक जीवन की बोली मे कही हुई उनकी बाते मन को प्रसन्न करती है और उनके व्यग गहरी चोट पहुँचाते है। परतु इतना सब होते हुए भी आगामी युग ने उनकी भाषा के स्वरूप को स्वीकार न कर सस्कृतनिष्ठ हिन्दी को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। प्रसादजी की भाषा के ही आसपास छायावाद युग डग भरता रहा। इसका कारण यह हो सकता है कि एक तो माखनलालजी की भाषा व्यवस्थित न थी। दूसरे, वह भारत की सास्कृतिक निधि को व्यक्त करने मे कदाचित् समर्थ न थी। हृदय की भावनाओ को तो उसमे सरलता से अभि व्यक्त किया जा सकता था। परतु भारत की गभीर सास्कृतिक समस्याओ को यह दैनिक जीवन की चलती हुई बोली बोल न पाती। इसलिए कवियो ने अधिकतर सस्कृतनिष्ठ हिन्दी का ही प्रयोग किया। प्रोक्ति प्रयोग से उनकी भाषा भरी है। गोद हरी होना, बात खरी होना, जगलो की खाक छानना, गले का तौक बनना, धूल उडाई जाना जैसे प्रयोग उनकी भाषा को सरस और सजीव बनाते है। परतु प्रलयकर का प्रलकर, अन गिनती का अनगिन, दर्शन का दर्श, दैवी का दैवीय, महाराज का महराज, हरियाली का हरियाला जैसे प्रयोग निश्चय ही कवि पर आक्षेपो के अवसर ला देते है। "कृति कालिमा बढाते भाई" मे 'से' की विभक्ति का लोप कर दिया है। इसलिए न्यूनपदत्व के कारण "कृति की कालिमा बढाते भाई" का भी सदेह होने लगता है। 'तुझे उछलता देख, लगे मत" मे 'लगे मत' काव्योपयुक्त प्रयोग नहीं लगता। इसी प्रकार "यही बात **अनुमान** गया" मे सज्ञा का क्रियावत् प्रयोग, "जीवन की बेहोशी में **आनदी** है" मे ई का स्वरागम तथा "यह किरनबेला मिलनबेला बनी अभिशाप **होगा**" मे स्त्रीलिंग की क्रिया के लिये पुलिंग की क्रिया का

प्रयोग हुआ है। यद्यपि प्रसादजी मे भी इस प्रकार लिंग विपर्यय पाया जाता है और पतजी ने भी प्रभात का स्त्रीलिग मे प्रयोग किया है, परतु व्याकरण की इतनी स्वच्छदता छायावाद के कवियो मे भी नही पाई गई है। इतना सब होते हुए भी माखनलालजी की भाषा अपनी सजीवता और सरसता के लिए हिन्दी-साहित्य मे एक विशिष्ट स्थान रखती है।

छदो की दृष्टि से तो यह कवि बहुत निराश कर देता है। ऐसी कविताएँ अत्यल्प है जिनमे छदो का सयत्न प्रयोग हुआ हो। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के हृदय मे भावनाएँ जिन शब्दो मे और जितने शब्दो मे उठी उनको ही कवि ने कलम के घाट से काव्य की धारा मे उतार दिया है। उनका परिष्कार और सुधार कर उन्हे शास्त्रीय रूप देने की उसने अधिक चिन्ता नही की। जो बात जैसी निकल गई वह ठीक है। इसलिए उनकी अनेक रचनाओ मे छद के शास्त्रीय रूप का आभास तो मिल जाता है, परन्तु उसका शुद्ध रूप एक-दो पदो मे ही आ पाता है और इन एक दो पदो के आधार पर ही अनुमान लगाना पडता है कि कवि का अभिप्रेत छद यही है। उदाहरण के लिए—

आँखों मे है रौद्र
हृदय मे वीर, कठ मे करुणा
घटनाओं की आग, सुखातीं
आशाओं का झरना।

उपर्युक्त छद के प्रथम चरण मे ११, द्वितीय मे १७, तृतीय मे १६ और चतुर्थ मे १२ मात्राएँ है। परन्तु यह विषमता थोड़ी-सी सावधानी से ही दूर हो सकती थी। यदि द्वितीय चरण की प्रथम पाँच मात्राएँ प्रथम चरण मे मिला कर लिखी जाती तो पूरा पद १६-१२ मात्रा वाले शास्त्रीय रूप मे आ जाता। इसी प्रकार—

वीर देश के बच्चे हो तुम
घबडाने का काम नहो,
सूखी पुस्तक और परीक्षाएँ
शिक्षा का नाम नही,

उपर्युक्त पद मे भी १६, १४, १८ और ११ मात्राएँ है। इसलिए छद के प्रवाह को पूर्ण करने के लिए 'का' पर तीन मात्रा के समय तक ठहरना पडता है। इस प्रकार माखनलाल जी के हाथ से अनेक स्थानो पर छदो की बडी दुर्दशा हुई है। यतिभग के लिए मैने अनेक स्थानो पर तुलसीदासजी का यह दोहा उद्धृत देखा—

दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटपतर मन मलीन कृस गात॥

तुलसीदासजी की रचनाओ के ये अपवाद है, परन्तु हमारे कवियो मे ये बाते नियम की सीमा तक पहुँच गई है। माखनलालजी के काव्य मे भी यह दोष अनेक स्थलो पर आया है। यहाँ पर एक दो उदाहरण ही अलम् होगे—

जिनको 'बाल' समझ कर माता
दूध पिलाती सुधा समान,
जिनको 'पाल' हुई है जगती-
तल मे वह आनन्द-निधान !

और

होवे बनवास कारा-
वास, नर्कवास
पद चूमे अमरत्व
उसे पडा रह जाने दे,

परन्तु इतना सब होते हुए भी उनके छदो मे प्रवाह की कमी नही है। मन की सहज उमगो मे उठ-उठ कर बहनेवाले शब्द छद की सहज धारा से इधर-उधर होकर भी अटकते नही। उनकी छद-योजना की यही सबसे बडी विशेषता कही जा सकती है।

वर्णिक वृत्तो का प्रयोग इन्होने नही किया। द्विवेदी-युग मे रह कर भी द्विवेदीजी के प्रभाव से सर्वथा मुक्त रह कर काव्य-रचना करने वाले कवि बहुत थोड़े थे। इन अत्यल्प कवियो मे एक नाम माखनलाल जी का भी लिया गया है। न तो इन्होने सस्कृत के वर्णिक वृत्तो का प्रयोग किया न बॅगला के पयार आदि छदो का, न अॅग्रेजी की चतुर्दशपदियो का। उर्दू की गजल-शैली का प्रभाव उन पर अवश्य पडा है और उन्होने इसका प्रयोग भी किया है। परन्तु सामान्य रूप से उनके काव्य मे मात्रिक छदो को ही स्थान मिला है। प्रगीतियो का निर्माण भी एकाधिक मात्रिक छद के मेल से कर लिया गया है। इस प्रकार हम देखते है कि वे छदो की दिशा मे अधिक सजग होकर नही चले और न उन्होने इस युग के अन्य कवियो की भॉति छदो के विविध प्रयोग ही किए। निरालाजी के समान उन्होने छद के परिधान को उतार कर फेका नही, परन्तु उसे पहने रह कर भी यत्र-तत्र फाड़ दिया।

शैली की दृष्टि से माखनलालजी की कविता अवश्य ही अपने समसामयिक कवियो से आगे रही है। प्रसादजी की सन् तेरह की रचनाओ के साथ माखनलाल जी की भी इसी सन् की रचनाओ को रखा जाय तो अन्तर स्पष्ट हो जाता है। उनकी सन् तेरह की 'मेरा उपास्य' नामक रचना को ही लीजिए—

'लो आया'—उस दिन जब मैने
सध्या-वदन बद किया,
क्षीण किया सर्वस्व, कार्य के
उज्ज्वल क्रम को मद किया,

द्वार बद होने ही को थे,
वायु-वेग बलशाली था,
पापी हृदय कहाँ ? रसना मे,
रटने को वनमाली था।
अर्द्धरात्रि, विद्युत प्रकाश, घन-
गर्जन करता घिर आया,
लो जो बीते, सहूँ—कहूँ क्या,
कौन कहेगा—'लो आया।'
'लो आया'—टप्पर टूटा है—
वातायन दीवारे है,
पल-पल मे विह्वल होता हूँ,
कैसी निर्दय मारे है।

इस रचना मे अभिव्यक्ति की एक नवीनता है जो द्विवेदी युग की सामान्य काव्य-शैली से तो भिन्न है ही, परन्तु छायावाद के उदीयमान नक्षत्रो की तत्कालीन शैली से भी चार चरण आगे है। सन् तेरह मे प्रसादजी का 'करुणालय' प्रकाशित हुआ और चौदह मे 'महाराणा का महत्व।' इन सब मे प्रसादजी शैली के नए-नए प्रयोगो मे ही व्यस्त थे। उनकी प्रौढ शैली के दर्शन सन् बीस के आस-पास ही होते है। परन्तु माखनलालजी की सन् सोलह की रचनाओ मे ही उच्चकोटि की लाक्षणिकता, विरोधाभास, विशेषण-विपर्यय आदि छायावाद की विशेषताओ का प्रौढ प्रयोग दिखलाई पड़ने लगता है। उनकी सन् सोलह मे लिखी हुई 'राम नवमी' कविता इस बात का सुन्दर प्रमाण है —

हे जीवन के बिन्दु, साधना की
सीपी को साध

विदलित, ताडित, अपमानित
के ऐ मीठे अपराध!

*　　*

आकर्षण के कल कपोल के
ऐ साँवले डिठौने!
पागल हुई पुतलियों के
हे विविध रूप धर छौने!

*　　*

अरे पतित के रक्त-चिह्न,
ओ मीठी कसक हिये की,
जी की, जिसे जीभ मत—
जाने, प्यारी भूल किये की।

*　　*

जग का मान कुचल पैरों से,
ऐ मोहन मुसकान,
आसाकेत-सिंधु कूजित,
ऐ महाप्राण की तान।

*　　*

प्रीति-पुत्तली के प्रेरक!
ओ बाजीगर के तार,
निरस तार की रस बरसावनि,
उन्मादिनि झंकार!

आ सबलों के शील,
योगियों की पथ-भूली शाति
आ पिसतों के हृदय,—
गरीबी की प्रलयकर क्राति !

* *

आ पुकारती हुई सभा मे
दिग्वसना के चीर।
आ सब कुछ खोने वाले—
के जीवन साथी, धीर।

इन पक्तियो को पढकर 'पल्लव' के पतजी और 'आँसू' तथा 'लहर' के प्रसादजी का स्मरण हो आता है। परतु साथ ही यह भी स्मरण रखना है कि ये पक्तियाँ 'आँसू', 'लहर', 'पल्लव' आदि से वर्षों पहले लिखी गई है। 'साधना की सीपी की साध', 'आकर्षण के कल कपोल' मे लाक्षणिकता, 'मीठे अपराध', 'निरस तार की रस बरसावनि' और 'दिग्वसना के चीर' मे विरोधाभास तथा 'पथ-भूली शाति' मे विशेषण विपर्यय के प्रयोग द्रष्टव्य हैं। अतिम पद तो अत्य त मार्मिक बन पडा है। जहाँ एक ओर वह सर्वस्वहता, अनाथ अबला भारत माता का चित्र है वही दूसरी ओर वह जनता के मानस-पटल पर अमिट रेखाओ से बना हुआ द्रौपदी-चीर-हरण का चित्र भी है। 'दिग्वसना' द्रौपदी तथा भारतमाता के लिए एव 'सब कुछ खोनेवाले' पाडवो तथा भारतवासियो के लिए आया है। इस पद मे शब्द-शक्त्युद्भव ध्वनि का सुन्दर चमत्कार दिखलाई पडता है। इस प्रकार हम देखते है कि उनकी शैली मे छायावाद की अधिकाश विशेषताएँ छायावाद युग की मान्य समय-सीमा के पहले ही प्रौढ रूप मे उपस्थित हो चुकी थी। परतु पुस्तकाकार प्रकाशन न होने के कारण उनकी रचनाओ का ऐतिहासिक मूल्याकन न हो सका।

सूक्तिमयता उनकी शैली की दूसरी विशेषता कही जा सकती है। परतु उनकी सूक्तियाँ संस्कृत से प्रेरणा ग्रहण नहीं करती। वे अपने पैरो पर खड़ी होकर अपने स्वतत्र अस्तित्व की घोषणा करती है। उनके मूल मे चमत्कार-चातुर्य या वाग्वैदग्ध्य नही होता और न वे उपदेशात्मकता का भार ही वहन करती है। उनका जन्म अधिकतर भावातिरेक के क्षणो मे होता है। श्री नददुलारेजी वाजपेयी के शब्दो मे "उनकी सूक्तियो मे उपदेशात्मकता कारण नही है, भावना का अतिरेक ही कारण है।" उदाहरण के लिये निम्नलिखित पद द्रष्टव्य है——

भावो के धन, दावो के ऋण,
बलिदानो मे गुणित बना।
और विकारो से भाजित कर,
शुद्ध रूप प्यारे अपना॥

उपर्युक्त पद मे जोड, घटाना, गुणा, भाग—सब मिलाकर पूरा अक-गणित तैयार कर दिया गया है। परतु यहाँ पर पाँच मे से तीन घटा कर तीन का गुणा करके छै का भाग नही देना है। कवि इससे अपने जिस दैन्य भाव की व्यजना करना चाहता है उसमे उसे पूर्ण सफलता मिली है। नीतिमय सूक्तियो या कोरी चमत्कारक सूक्तियो का माखनलालजी ने सृजन नही किया है। उन्होने न तो——

बडे पेट के भरन मे है रहीम दुख बाढ़ि।
या तें हाथी हहरि कै दिए दाँत द्वै काढ़ि॥

—जैसी बाते कही है और न मिस्सी लगे दाँतो के लिए "मनो खेलते है लारिका हबसी के" ही लिखा है।

द्विवेदी-युग के कवियो की शैली की वर्णनात्मकता इतिवृत्तात्मकता या नीरसता माखनलालजी की रचनाओ मे नही पाई जाती। सन् बारह

या तेरह के लगभग ही ये आत्माभिव्यजक रचनाएँ देने लग गए थे। बाह्य विश्व की इनके मन पर जो प्रतिक्रिया होती थी, उसको ही इन्होने अधिकतर शब्द-बद्ध करने का प्रयास किया है। एक तो भावुक प्रकृति और दूसरे आत्माभिव्यजक शैली के सयोग से इनका काव्य वर्णन-प्रधान इतिवृत्तात्मक न हो सका। इनकी कविताओ के अधिकाश विषय वे ही है जिनके साथ कवि हृदय का रागात्मक सबध जुडा हुआ है। इन्होने बाह्य वस्तुओ का वर्णन नही किया। उनका काव्य वर्णनात्मक कोटि का नही, भावात्मक कोटि का अधिक है। भावातिरेक के अतिरिक्त शैली के नव नव प्रयोग भी उनके काव्य को समसामयिक साहित्य से स्वतत्र करने मे सहयोग देते है। सबोध-शैली और संवादात्मक शैली के दर्शन तो उनके काव्य मे अनेक स्थलो पर होते है। नाटकीय सौन्दर्य भी यत्र तत्र दिखलाई पड़ जाता है, जैसे—

> शीश पर वह देखो दुर्दैव—
> साध कर खडा तीक्ष्णतर बाण,
> अरे चल, साधेंगे कर्त्तव्य
> तुझे लेना हो ले ले प्राण।

अलकारो के पीछे माखनलालजी नही पड़े है। भाव की सहज धारा मे जो पुष्प स्वय किनारे से कूद गए है, उनके ही दर्शन यहाँ होते है। उनके अलकार सेना मे भरती किए हुए रगरूट नही, स्वय सेना मे आए हुए उत्साही सैनिक है। बात यह है कि प्रबल भावातिरेक के सूर्यातप मे उनके काव्य के अन्य उपकरण नक्षत्रो की मदप्रभा ही विकीर्ण कर पाए है। भाव को ही यदि उनके काव्य का प्राण, शरीर और प्रसाधन कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। कही कही तो उन्होने विदेशी वस्तुओ को सशब्द उपमान रूप मे बड़े सुन्दर ढग से चित्रित किया है। 'नवधा की नौ कोनेवाली फ्रेम' का उल्लेख ऊपर हो चुका है। 'मातृभूमि के पृष्ठपत्र

पर प्रतिदिन पाराग्राफ सॅभारे' का पाराग्राफ भी इसी प्रकार का प्रयोग है। गोस्वामी तुलसीदासजी की "राम कथा सु दर करतारी। ससय विहग उडावनि हारी।" चौपाई की प्रतिध्वनि भी दो-एक स्थलो पर मिलती है, यथा—"विहरत, हॅसत, फॅसत दै तारी विपद-विह ग उड़त बेचारे।" और "वासना-विह ग वृज-वासियो के खेत चुगे तालियॉ बजाओ आओ मिल के उडाओ नेक।" उनकी राष्ट्रीय कविताओ के उपमान अधिकतर राष्ट्रीय जीवन से ही चुने गये है जिससे उनका प्रभाव और भी अधिक बढ जाता है। उनके राष्ट्रीय उपमानो मे भी तत्कालीन घटनाएँ उपमान के रूप मे आकर हमारी सवेदना को अत्यत उद्दीप्त कर देती है, जैसे—

मै "मुँहबदी" का हार हिये,
"मत लिखो" कठिन ककण धारे,
"भारत रक्षा" के शूलो की,
पावो मे बेडी भनकारे।
"हथियार न लो" की हथकड़ियाँ
रौलट का हिय मे घाव लिये
डायर से अपने लाल कटा
कहती थी ऑचल लाल किये॥

उपर्युक्त पद मे "मुँहबदी", "मत लिखो", "भारत रक्षा", "हथियार न लो" उन घटनाओ के सकेत है जो राष्ट्रीय आदोलन को दबाने के लिए गोराशाही द्वारा प्रयुक्त दमन-नीति का परिणाम बने। माखनलालजी ने इन समस्त घटनाओ को बधन-सूचक उपमान बनाकर भारत माता की परतत्रावस्था का करुण दृश्य उपस्थित कर दिया है। 'लाल' शब्दो मे यमक भी अनायास ही आ गया है।

यह हुआ उनके प्रारभिक काव्य का बहिरग।

प्रौढ़ काव्य

सन् बीस तक के प्रारंभिक काव्य को उनका प्रयोग-काल माना जा सकता है। सन् २० से लेकर अब तक की रचनाएँ उनके प्रौढ-काल के अंतर्गत आवेगी। इस काल मे उनकी पूर्वोल्लेखित प्रवृत्तियाँ ही विकसित होती है। पहले जिन प्रवृत्तियो की रेखाएँ भर ही खिंच पाई थी, वे ही अब रगो का सयोग पाकर पूर्ण चित्र के रूप मे प्रस्तुत होती है। राष्ट्रीय भावना मे बलिदान के स्वर प्रखर हो गये है, साथ ही प्रेम भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए अधिक आकुल दिखलाई देता है। वीर और शृ गार, आग और पानी का यह सयोग कुछ विचित्र सा अवश्य लगता है। परतु यह कोई नई बात नही है। सारे चारण-काव्य का शौर्य-सद्म शृ गार की नीव पर ही स्थित है। भारतेन्दु-युग के कवियो ने भी जहाँ एक ओर जागरण की भेरी बजाई है, वही दूसरी ओर उन्होंने प्रणय-वीणा के तारो से झकार भी उठाई है। 'हिमाद्रि तु ग शृ ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' और 'निकल मत बाहर दुर्बल आह लगेगा तुझे हँसी का शीत' गानेवाला व्यक्ति एक ही है। उसी प्रकार 'मसल कर अपने इरादो सी, उठा कर दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे' और 'मेरे राजा मत मान करो मुझसे पूजा कैसे होगी' गानेवाला व्यक्ति भी एक ही है। बात यह है कि यह युग मानव-जीवन की सार्वजनिक स्वतत्रता के लिए जीवन के समस्त बधनो को तोडने पर तुला है। राजनीतिक क्षेत्र मे आसेतु-हिमाचल के आबाल-वृद्ध की मुक्ति का उद्घोष हुआ। सामाजिक क्षेत्र मे वर्ण-व्यवस्था की दीवारें गिरने लगी। साहित्य के क्षेत्र मे भी क्रान्ति उत्पन्न हो चुकी थी। भाव, भाषा, छंद, अलकार सब मे नई रुचि का परिचय मिलने लगा था। व्यक्ति-स्वातत्र्य की प्रबल भावना ने साहित्य मे भी वैयक्तिक

सुख-दु ख, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन आदि को व्यक्त करने की छूट दे दी थी। इसलिए कवियो ने जहॉ एक ओर राजनीतिक बधनो को तोडने के लिए देश के युवको को पुकारा, वहॉ दूसरी ओर उन्होंने अपने व्यक्तिगत सुख-दु ख, विरह मिलन आदि को भी काव्य का विषय बना दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय रचनाओ और प्रेम-सबधी रचनाओ––दोनो मे एक ही स्वतत्रता की भावना काम करती हुई दिखलाई देती है। माखनलालजी के काव्य मे दोनो प्रकार की भावनाऍ मिलती है। उनके प्रारभिक काव्य की भक्ति-भावना राष्ट्र-प्रेम मे पर्यवसित होकर बहुत कुछ अपना स्वतत्र अस्तित्व खो देती है और रहस्यात्मक प्रवृत्ति भी यहॉ आकर बहुत बढ गई है। प्रकृति-सौन्दर्य के कतिपय चलचित्र भी उनके प्रौढ काव्य मे देखने को मिल जाते है। अभिव्यजना मे प्रौढता आ गई है। गीत निखर उठे है। इस प्रकार प्रवृत्तियो का पूर्ण विकास, अभिव्यजना की प्रौढता तथा गीतो का निखार सूचित कर देते है कि कवि अपने प्रौढ काल मे प्रवेश कर चुका है। सन् उन्नीस सौ बीस को ही मैने उनके काव्य का मध्य-बिन्दु इसलिये चुना कि यह वर्ष राजनीतिक और साहित्यिक मोड़ की भी सूचना देता है। गाधी-युग और छायावाद-युग का प्रारभ सामान्यत सन् बीस से ही माना जाता है। अब मै उनके प्रौढ काव्य की प्रवृत्तियो पर प्रकाश डालने का प्रयास करूँगा।

राष्ट्रीय काव्य

यदि राष्ट्र-प्रेम की भावना उनके प्रारभिक काव्य मे तीव्र थी तो उनके प्रौढ काव्य मे वह अवश्य ही तीव्रतर हो गई है। इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि उनकी भक्ति और प्रेम की धाराऍ भी अब राष्ट्र-प्रेम की धारा मे आकर मिल गई है। उनके राष्ट्रीय काव्य मे भी प्रबलतम भावना बलिदान की है। कवि भक्ति मे, प्रेम मे, कला मे, साहित्य मे, सर्वत्र एक बलि की भावना को ही मुखरित देखना चाहता है।

अब बलि ही उसके साहित्य के प्राणो का स्पदन बन गई है। बलिशाला और मधुशाला मे, प्रलय और प्रणय मे वह कोई अतर नही देखना चाहता। मरण त्यौहार हो गया, बलिदान मीठा बन गया। साजन की रथ की राह भी सूली के पथ पर आकर ही दिखलाई पडी। चुबनो का मूल्य सिर बन गए और सूली की सेज पर प्रभु का दर्शन होने लगा। प्रेम हमारे भौतिक जीवन की प्रमुख और प्रबल प्रवृत्ति है, भक्ति का सबध आध्यात्मिक जीवन से है। इन दोनो भौतिक और आध्यात्मिक भावनाओ को कवि राष्ट्र की ओर उन्मुख कर देना चाहता है, लोक और परलोक से सबध रखनेवाली समस्त भावनाओ को राष्ट्र-पूजन का प्रसाधन बना देना चाहता है। इस ससार मे 'देह प्रान ते प्रिय कछु नाही।' उन्ही प्राणो को राष्ट्र-देव की पूजा का पुष्प बना देने के लिए कवि अत्यत व्याकुल है। बलिपथियो के पथ पर फेका हुआ फूल बनने की लालसा उनके भावुक हृदय के तीव्र राष्ट्र-प्रेम की व्यजना करती है।[1]

गॉधीजी को पहले कवि ने देशोद्धारक, पूज्य, जनप्रिय नेता के रूप मे चित्रित किया है। उनके अहिंसात्मक आदोलन मे उसने आस्था भी प्रकट की है। आगे भी उनकी यह भावना पूर्ववत् ही बनी रही। गॉधीजी के सिद्धातो का प्रभाव उनपर स्पष्ट परिलक्षित होता है। अत्याचार का प्रतिकार करना वे 'श्रुति-सम्मत' मानते है। परतु अत्याचारी का अनिष्ट उन्हे अभिप्रेत नही। हिंसा और घृणा को वे पाप मानते है। अहिंसक असहकारिता का उन्होने बार-बार समर्थन किया है और उसे स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधन माना है। भौतिक बल की अपेक्षा आत्मिक बल पर उन्होने जोर दिया है और एकाध स्थल पर विश्व के समस्त पिछड़े हुए देशो को उठाने की भावना भी व्यक्त की है। परतु यह मानवतावाद

---

१ मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ मे देना तुम फेक
मातृभूमि पर शीष चढाने जिस पथ जावे वीर अनेक।

की विश्व-व्यापी भावना भी इनमे कम ही दिखलाई पडती है। कारण कि कवि स्वदेश की विषम समस्याओ मे ही इतना अधिक उलझा रहा कि उसकी दृष्टि देश और देश-वासियों से बाहर जा ही नही सकी। स्वावलबनमयी कर्मण्यता का माखनलालजी ने बार बार आग्रह किया है। कदाचित् इसमे ही हमको गाँधीजी के चर्खा-आदोलन जैसे व्यावहारिक कार्यक्रमो का आभास मिल सकता है। गाँधीजी का सैद्धान्तिक पक्ष उनके जीवन मे अधिक अभिव्यक्त हुआ है। वे प्रार्थना के पीछे प्रचड पुरुषार्थ की शक्ति को अनिवार्य मानते है और त्याग को कर्म का परिवेष। इस प्रकार वे गीता के :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्व कर्मणि ॥

तक पहुँच जाते है। यही हमे उनकी राष्ट्रीयता आध्यात्मिक ऊँचाइयो तक उठती हुई दृष्टिगत होती है। गाँधीजी की आध्यात्मिक राष्ट्रीयता दर्शन-परक थी, परतु माखनलालजी मे भावना-परक आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का स्वरूप दिखलाई देता है जिसका मै अभी ही उल्लेख करूँगा। गाँधीजी की मृत्यु के उपरान्त 'मानवता' पत्रिका मे उनकी 'युग और तुम' नामक कविता प्रकाशित हुई थी जिसमे कवि ने 'युग तुम मे और तुम युग मे कैसे झाँक रहे हो बोलो' कह कर गाँधीजी को युग-पुरुष के रूप मे चित्रित किया है। साथ ही उन्हे 'तेरा विश्वास गरीबो का धन' और 'क्रान्ति की प्रलय लहर मस्तानी'[1] कह कर हरिजन-आदोलन का सूत्रधार तथा स्वातन्त्र्य-सग्राम का कर्णधार भी सिद्ध किया है। सक्षेप मे उन्हे अहिंसा, असहकारिता, निष्काम कर्म आदि मे विश्वास रहा है और उन्होने गाँधीजी का श्रद्धास्पद, युगातरकारी, युग-पुरुष के रूप मे चित्रण किया है।

---

१ है तेरा विश्वास गरीबों का धन अमर कहानी।
तो है तेरा श्वास, क्राति की प्रलय लहर मस्तानी ॥

ऊपर मैने आध्यात्मिक राष्ट्रीयता की बात उठाई थी और कहा था कि माखनलालजी मे भावना-परक आध्यात्मिक राष्ट्रीयता का स्वरूप उपलब्ध होता है। इसके मूल मे दो तत्त्व काम करते है—भक्ति और प्रेम। 'चले सूली उसे प्रभु का दरस हो' के अनुसार भक्ति देश-प्रेम मे परिवर्तन हो गई। इसलिए भक्ति के लिए आवश्यक समस्त भावुकता राष्ट्र-प्रेम की ओर उन्मुख हो गई। दूसरे 'चुम्बनो का मूल्य सिर' होने से प्रेम भी त्याग की भावना से दीप्त होकर राष्ट्र की सेवा के लिए उपस्थित हुआ और अपनी तीव्र भावनामयी प्रेरकता के कारण राष्ट्र सेवा मे सहायक बन गया। भक्ति और प्रेम का भावमय कलेवर निस्सदेह निष्काम कर्मयोग की दार्शनिक देह से भिन्न है। इसी भिन्नता के आधार पर मैने उनकी राष्ट्रीयता को भावना-परक कहा है।

उन्होने समसामयिक राजनीति से प्रभावित होकर भी कतिपय कविताओ की रचना की है। 'मरण-त्यौहार' नामक कविता मे उन्होने लिखा है —

> है रिपोर्टों मे कलेजा छप रहा,
> देश के 'आनद-भवनो'ने कहा।
> 'कुरसियों की है मधुर स्वाधीनता,
> छोड देंगे हम गुलामी, दीनता'॥

'रिपोर्टों' से यहाँ उनका तात्पर्य सन् १९२८ की नेहरू-रिपोर्ट से है जो अखिल भारतीय-दल-सम्मेलन के सभापति पडित मोतीलाल नेहरू ने लिखी थी। श्री सी० आर० दास की मृत्यु के पश्चात् उदार दल के नेताओ ने अग्रेजो से सहयोग करने की नीति पुनः अपना ली थी। पडित मोतीलाल नेहरू ने स्कीन कमीशन की सदस्यता स्वीकार कर ली। मध्य-प्रदेश के श्री एस० बी० ताबे भी गवर्नर की कार्य-कारिणी के सदस्य बन गए। कवि उदार दल की इस समझौते की नीति से सदा असतुष्ट रहा है। इसका आभास हमे 'कुरसियो की है मधुर स्वाधीनता' के व्यगात्मक वाक्य से

मिलता है। सन् १९३८ की 'अमर राष्ट्र' नामक रचना भी समसामयिक राजनीति पर उनकी मानसिक प्रतिक्रिया का सुन्दर चित्र उपस्थित करती है। कवि यहाँ पर गांधीजी का अनुयायी न होकर पंडित जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचंद्र बोस के झंडे के नीचे दिखलाई पडता है। उसे अब समझौते और सुधार की नीति मे विश्वास नही रहा। इस समय राष्ट्र-सभा के दो दल थे। गाँधी दल अंग्रेजो से समझौता करने के लिए तैयार था। परंतु श्री सुभाषचंद्र बोस के नेतृत्व मे देश के युवक-गण इस सुधार और समझौते की नीति की निन्दा कर रहे थे और हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा भी देश को स्वतंत्र करने के लिए कटिबद्ध थे।[3] माखनलालजी की सन् १९३८ की 'अमर राष्ट्र' नामक रचना स्पष्ट रूप से उनकी नेताजी के नेतृत्व की स्वीकृति है। उदाहरण के लिए —

अमर राष्ट्र, उद्दण्ड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र,
यह मेरी बोली।
यह 'सुधार' 'समझौतों' वाली,
मुझको भाती नही ठठोली॥

उपर्युक्त पद में सुधार और समझौतेवाली नीति को वे ठठोली मानते

---

3 During the years 1938-39, the Congress was divided into two Camps with different ideas on struggle The Rightists were devoted to the Gandhian cult and were prepared for a compromise with Britain in case it could be had with honour. Subhaschandra Bose, the Leader of the leftists, condemned them for their reformist and compromising out-look.

—Dr. V P. S Raghuvanshi

है और राष्ट्र मे उद्दण्डता अभिप्रेत बतलाते है। यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि आदोलनो की सतत विफलताओ के कारण अहिंसात्मक क्रान्ति से कवि की आस्था उठ चली है। देश के तत्कालीन निराश वातावरण का भी इस कविता मे आभास मिल जाता है। सन् १६४६ की 'बिदा' नामक कविता मे भी कवि का असतोष छलक रहा है। तौल-तौल कर किए गए त्याग से वह सतुष्ट नही है। वक्तव्यो और भाषणो मे सिकुड़ी हुई राजनीति उसे उपहासास्पद लगती है। 'श्यामल रगो की नदियो मे लाल रग बह आए तो' वह प्रसन्न हो सकता है। 'कुछ करोड़ कायर गणना का जीवन-गढ ढह जाए तो' उसे कोई चिन्ता नही। स्पष्ट ही कवि अब स्वतत्रता प्राप्ति के लिए अत्यत अधीर हो गया है। इष्ट प्राप्ति के लिए वह सशस्त्र-क्रान्ति का प्रयोग भी करने के लिए तत्पर है। उसके केश तो पहले ही श्वेत हो चुके थे। पुतलियो के भी श्वेत होने के पहले वह देश को स्वतत्र देख लेना चाहता है। इस कविता मे कॉग्रेस की 'धीरे-धीरे' की नीति से असतुष्ट और व्यग्र जनता के मानस का अच्छा परिचय मिलता है। इस प्रकार मैने उनकी तीन दूरस्थ वर्षों की कविताओ के द्वारा बतलाने का प्रयास किया है कि कॉग्रेस की नीति से उनकी कभी पटरी नही बैठी। वे उनकी समझौते और सुधार वाली 'पुरुषार्थहीन' नीति से सदैव असतुष्ट ही रहे और उनका असतोष वैयक्तिक न होकर देश की बहुसख्यक जनता के मानस का प्रतिबिम्ब रहा है। वे कॉग्रेस के कवि नही, जनता के कवि है। इसलिए आज भी वे जनता की भावनाओ को वाणी दे रहे है। आज कॉग्रेस ने अधिकार प्राप्त कर लिया। परतु उसने उन समस्त बलिदानो को विस्मरण-वन्या मे बहा दिया है, जिसकी नीव पर स्वतत्रता का महल खडा हुआ। गॉधीजी के त्याग-सेवा सपन्न पथ पर उसके पैर डॉवाडोल हो रहे हैं। कृषको के आशा भरे नयनो मे भी अब निराशा का अँधेरा गाढा होता जा रहा है।

काले बाजार बढ रहे है। आदर्शों की मिट्टी-पलीद हो रही है। बलि का मूल्य लोगो की आँखो मे घट गया है। श्री अचलजी द्वारा सकलित 'काव्य-कौमुदी' मे उनकी 'विजय की स्मरण वेला' नामक कविता से उनकी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् की विचार-धारा पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उन्हे दुःख है कि 'मिट कर स्वय मोहन चितेरा' जो 'चित्र जीवित कर गया' उसे 'अधिकार का उजला अँधेरा' मिटा रहा है। जिनके नाम पर सौ सौ सूलियाँ सुहागिन थी, जिनके गान पर अगणित बेढियाँ सुगधित थी आज वे ही 'बलि-मूर्तियाँ हमने भुलाई' है। जो किसान 'दुर्भाग्य-क्षय' माँगते थे, उन्हे 'सौभाग्य-क्षय' की निधि मिली है। इस प्रकार हम देखते है कि वे नए अधिकारियो के कडे समालोचक के रूप मे भी सामने आते है।

देश की सामाजिक अवस्था पर भी उनकी दृष्टि पहुँचती रही है। लोग देश के नाम पर अपना बलिदान करने मे डरते थे। युवक-गण राग-रग मे मस्त थे। विद्वान लपलपाती हुई जीभ से धुँआधार भाषण देकर उद्धारक बन जाते थे। मासिक वेतन पर जीवन को बेच कर लोगो ने परतन्त्रता के बधनो को दृढ कर लिया था। उदरभर वृत्ति का विकास हो रहा था। आत्मविश्वास रसातल को जा रहा था। विदेशी शिक्षा-पद्धति ने भारतीयो के आत्म-गौरव को नष्ट कर दिया था। विलासिता बढने लगी और कवि-गण भी हुँकारो के बदले प्रणय की आहे भरने लगे। सन् १६४६ की 'बिदा' नामक कविता मे सामाजिक स्थिति के अनेक सकेत उपलब्ध होते है। परतु ये सकेत प्रासगिक ही है। कवि जमकर समाज की दशा का निरीक्षण करने के लिए कही भी नही बैठा है। व्योम-सी विशाल राष्ट्र-भावना मे ये अन्य बाते तारा-गणो की भाँति ही यत्किंचित कवि के ध्यान को आकर्षित करती है।

जेल के जीवन से सबधित लगभग डेढ दर्जन कविताएँ उपलब्ध होती हैं। सन् १६२१ मे बिलासपुर सेन्ट्रल जेल मे और सन् १६३० मे जबल-

पुर सेन्ट्रल जेल मे उनका आतिथ्य हुआ है। परतु सन् १६२१ की कविताओ मे विश्वास की शक्ति है, आस्था का अवलब है, अदम्य उत्साह की प्रफुल्लता है। सन् ३० मे विश्वास के कुसुम मे संदेह के कीटाणु प्रवेश कर गए है, आस्था के महत्व की नीव हिल गई है और उत्साह एव उत्फुल्लता के स्थल पर निराशा से उत्पन्न उग्रता आ गई है। सन् २१ मे जो कवि कहता था कि 'जिस ओर लखूँ तुम ही तुम हो प्यारे इन विविध शरीरो मे' वही सन् ३१ मे कहने लगता है 'तुही क्या समदर्शी भगवान!' और भगवान को अन्यायी ठहराने के लिए अनेक तर्क-वितर्क उपस्थित करता है। कवि के प्रथम जेल-जीवन की मानसिक प्रसन्नता और द्वितीय जेल-जीवन की मानसिक विषण्णता का कारण तत्कालीन राजनीतिक वातावरण है। 'कैदी और कोकिला' नाम की प्रसिद्ध कविता जबलपुर सेण्ट्रल जेल की दीवारो के भीतर लिखी गई थी। 'झरना' और 'आँसू' जैसी रचनाएँ यद्यपि सीवे जेल-जीवन से सबध नही है फिर भी 'आँसू' के प्रेरक तत्व को मनोवैज्ञानिक कारावास की काली कोठरी मे ढूँढ लेगा और 'झरना' तो स्पष्ट रूप से कैदी के अनुपात-विवर्द्धन का कारण है, क्योकि वह कई बातो मे कैदी से अधिक ऊँचाई पर स्थिर है'।

कुछ कविताएँ उद्बोधनात्मक है। पहले भी इस प्रकार की अनेक कविताएँ दिखलाई पड़ती है, जैसे 'भारत के भावी विद्वान' 'देश मे ऐसे बालक हो' 'राम नवमी' आदि। इधर भी 'प्रवेश', 'सेनानी', 'युगतरुण से' रचनाएँ इसी प्रकार की हैं। इन कविताओ मे भी वही बात दिखाई देती है। पहले तो कवि आत्म-विश्वास के साथ भगवान को अवतरित होने के लिए पुकारता था, देश के बालको को बढने के लिए आदेश देता था, परतु आगे वह कहने लगा 'रुधिर का मोल पानी हो न जाये, न बलि-पथ मे बहक जाये जवानी।' उनकी सन् १६४० की 'जवानी' शीर्षक कविता उनके हृदय के ज्वालामुखी का प्रचड विस्फोट है

जिसमें कवि ने 'ग्रामसिंहो' में खेलती हुई 'मस्तानी जवानी' को बलि का द्वार खोल कर भूडोल करने के लिए ललकारा है :—

द्वार बलि का खोल
चल, भूडोल कर दे,
एक हिम-गिरि एक सिर
का मोल कर दे,
मसल कर अपने
इरादों सी, उठा कर
दो हथेली है कि
पृथ्वी गोल कर दें ?
रक्त है ? या है नसों मे क्षुद्र पानी।
जाँच कर, तू सीस दे, दे कर जवानी ?

ये पंक्तियाँ पढ़ कर नवीनजी की 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये' कविता का स्मरण हो आता है। देश मे व्याप्त निराशा से कवि-गण पूर्णत प्रभावित थे। नवीन जी की 'आज खड्ग की धार कुण्ठिता है खाली तूणीर हुआ' कविता देश की पराजित शक्ति और तज्जन्य निराशा का अच्छा परिचय देती है। कवियो मे जो उग्रता दिखाई देती है उसके मूल मे प्रगाढ निराशा सचित है। 'जवानी' कविता की प्रचड उग्रता के मूल मे एक और मनोवैज्ञानिक कारण है। पत्नी की श्राद्धतिथि के दिन इसकी रचना हुई है। हृदय की ज्वाला आँखो के आकाश मे आँसू का बादल न बन कर सीधी वाणी के द्वार से अग्नि की धार बन कर बह गई और प्रिय की कगार टूट जाने के कारण देश की व्यापक भूमि मे फैल गई। भूमि-सा धानी बाना पहने, प्रिय को साथ लेकर नरमुण्ड माला पहने जवानी को जगाने वाले माखनलालजी को देखकर चूड़ावत सरदार और हाड़ी रानी

की लोक-प्रसिद्ध कथा का स्मरण हो आता है। यह निरवलब प्रेम की उग्र प्रतिक्रिया है।

कतिपय श्रद्धाजलियो एव सस्मरणो का उल्लेख कर मै इस प्रसग को समाप्त करूंगा। श्रद्धाजलियो मे पहले की 'तिलक' और अबकी 'स्वर्गीय मप्रेजी की महायात्रा पर' तथा असग्रहीत 'युग और तुम' नामक रचनाएँ बडी अच्छी बन पडी है। इन श्रद्धाजलियो मे कवि ने उन महापुरुषो के जीवन की घटनाओ और कार्यों का उल्लेख कर उनको अपनी श्रद्धा समर्पित की है। ये श्रद्धाजलियॉ अत्यन्त भावुक शैली मे लिखी गई है। सस्मरणात्मक कविताएँ अनेक प्रकार की है। गणेश शकरजी विद्यार्थी से सम्बन्धित उनकी अनेक कविताएँ है, जैसे 'सतोष,' 'लौटे,' 'बधन-सुख' 'नटोरियस वीर' (असग्रहीत)। सर माल्कम हेली ने विद्यार्थीजी की फाइल पर लिखा था Notorious editor of a notorious paper इस पर माखनलालजी ने 'नटोरियस वीर' नामक कविता लिखी। उसकी कुछ पक्तियॉ इस प्रकार है –

तू नटोरियस, हम नटोरियस, है नटोरियस तीस करोड,
जिन हृदयो जन्मा 'नटोरियस', हृदय न करना उनकी होड़
तीखे शूल हुए है आहा! प्यारे फूल हृदय को चीर,
जुग-जुग जीता रहे दमकता, भारत के नटोरियस वीर।

'राष्ट्रीय झडे की भेट' बिहार के सत्याग्रही श्री हरदेवनारायण सिंह (जो नागपुर झडा सत्याग्रह मे शहीद हो गए थे) के प्रति कवि की सस्मरणात्मक श्रद्धाजलि है। सामान्य रूप से उनकी अधिकाश रचनाओ का कलेवर किसी न किसी सस्मरण के हाड मास से ही बनता है। 'माता' की भूमिका मे उन्होने लिखा है—"इस सग्रह की कितनी ही तुकबदियॉ, घटनाएँ बन कर मेरे सामने खडी हैं। यदि हम उनके काव्य के दो कोटियो मे विभाजित करे और एक को सस्मरणात्मक और दूसरी

को असस्मरणात्मक कहे तो उनकी अधिकाश रचनाएँ प्रथम कोटि मे ही आवेगी।

इस प्रकार हम देखते है कि उनकी राष्ट्रीय रचनाओ मे बलिदान की भावना, गाधीजी तथा समसामयिक राजनीति का प्रभाव, आध्यात्मिकता, सामाजिक अवस्था के सकेत, जेल-जीवन का चित्रण, उद्बोधन, सस्मरण तथा श्रद्धाजलियाँ उपलब्ध होती है। इनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि एक राष्ट्रीयता की भावना ही कितने रूपो मे व्यक्त की जा सकती है। भारत के ऐतिहासिक वीरो और उसके विगत वैभव से माखनलाल जी को मोह नही दिखलाई पडता। इसका कारण आलोचको ने देश की राजनीति मे उनका सक्रिय सहयोग माना है। उन्होने ऐतिहासिक वीरो को न लेकर वर्तमान नेताओ को ही अपने काव्य का विषय बनाया है, विगत वैभव के चित्रण से देश के आत्माभिमान को जागरित न कर, वर्तमान दीन दशा का दिग्दर्शन करा, देशवासियो मे आत्म ग्लानि को ही स्फुरित किया है। इससे साध्य मे तो कोई अन्तर नही आता, साधन अवश्य भिन्न हो जाते है। परन्तु यह साधन वैभिन्य ही उनकी वर्तमान के प्रति तीव्र सवेदना का परिचायक बन जाता है। उनके समसामयिक कवि प्रसादजी के काव्य मे तो नही, नाटको मे अवश्य अतीत-प्रेम प्रगाढ रूप मे परिलक्षित होता है।' परन्तु प्रसादजी का अतिशय अतीत प्रेम ही कही-कही वर्तमान जीवन-सवेदनाओ को वाणी के द्वार तक आने मे बाधा पहुँचाता है। इस प्रकार हम प्रसादजी और माखनलाल जी मे दो भिन्न प्रकार की राष्ट्रीयताओ के दर्शन करते है। प्रसादजी की राष्ट्रीयता व्यापक और अतीताश्रित है और माखनलालजी की राष्ट्रीयता सीमित वर्तमानाश्रित। एक आत्माभिमान को जागरित करती है, दूसरी आत्मग्लानि को। दिनकरजी की राष्ट्रीयता मे अतीत और वर्तमान का सम्मिश्रण दिखलाई देता है। वे भारत के ऐतिहासिक शौर्य, वैभव

एव जागृति को तथा वर्तमान कायरता, दरिद्रता एवं सुषुप्ति को एक साथ देखते है। वे आज को देख कर अतीत का स्मरण करते है और अतीत को देख कर आज से उसकी तुलना कर कभी आँसू बहाते और कभी आग उगलते है।

प्रेम काव्य—

प्रेम छायावादी कवियो की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है। प्रसादजी तो प्रेम, सौंदर्य के ही कवि कहे जाते है। पतजी, निरालाजी और महादेवीजी मे भी किसी न किसी रूप मे इसके दर्शन हो जाते है। प्रसादजी का वैयक्तिक प्रेम अपनी तीव्रता और गभीरता के कारण आध्यात्मिक ऊँचा-इयो तक स्वय ही उठ गया है। अनुभूति की गहराई से उत्पन्न उदात्त वृत्ति को डा० रामरतनजी भटनागर ने काव्यात्मक रहस्यवाद कहा है। प्रसादजी मे इसी काव्यात्मक रहस्यवाद के दर्शन होते है। महादेवीजी के प्रेम की दिशा ही दूसरी है। वे प्रारभ से ही अज्ञात और आध्यात्मिक प्रिय के प्रेम-प्रदीप को प्राणो के आँचल मे छिपाकर सजग पग आज तक मग पर बढती जा रही है। निर्विशेष रहस्यवाद एकमेव उनकी अखड सपत्ति है। परतु माखनलालजी का प्रेम भौतिक भूमि की वस्तु है जो ऊर्द्धमुख न होकर या तो राष्ट्र-देव की शरण लेने का बहाना करता है या वाणी की भूल-भुलैयो मे छिपने का प्रयास करता है। आलबन की अस्पष्टता भाव की विशृङ्खलता तथा गोपन प्रवृत्ति के कारण उनकी प्रेम-सबधी रचनाओ का कलेवर रहस्यमय हो जाता है और आलोचको को उनकी यह रहस्यात्मकता खटकने भी लगती है। कवि के इस रहस्य का कारण उसकी अज्ञात मानसिक भूमियो मे ही खोजा जा सकता है, जो कवि के निकट सपर्क मे आने वाले व्यक्तियो के लिए ही शक्य वस्तु कही जा सकती है। मै पहले कह चुका हूँ कि उनकी यह अस्पष्टता प्रेम-सबधी रचनाओ का ही गुण है। राष्ट्रीय रचनाओ मे यह गोपन

त्ति का गोलमोल नही पाया जाता। ऐसा लगता है कि कवि हम से कुछ छिपाने लायक बातो को स्पष्ट रूप से नही कह रहा है। वह हम से कुछ छिपाना चाहता है। भगवान जाने क्यो ? एक बात और भी है। पत्नी की श्राद्ध-तिथियो पर लिखी गई रचनाएँ वेदना की तीव्रता, स्पष्टता और अभिधा की आत्मीयता मे बेजोड बन पडी है। यद्यपि छायावाद के नाम मे ही अस्पष्टता की गूँज है, फिर भी वह अस्पष्टता भाव-गोपन का परिणाम नही कही जा सकती, अभिव्यक्ति शैली की वक्रता ही उस के मूल मे रही है।

विधुर जीवन की व्यथा इनके काव्य मे बडे तीव्र रूप मे व्यक्त हुई है। अपने 'राजा' को पुकारते समय इनकी वाणी मे वेदना साकार हो उठती है। मरे हुए अरमानो की चिता पर आहो की आग जल उठी, समस्त आकाक्षाएँ भस्म हो गई। इतने पर भी इन भस्मीभूत आकाक्षाओ की माला बना कर जब कोई उनके मानस मे चुपके से घुस आता है तब वे विकल हो कर पूछ उठते है—"क्या जीवन को ठुकरा मिट्टी का मूल्य बढाने आये हो ?" आशा जब अँगडाई ले ही रही थी कि निगोड़ा विश्वास जाग उठा और सुख के सपनो का प्रभात हो गया। 'आशा ने जब अँगड़ाई ली विश्वास निगोडा जाग उठा' और प्रसादजी की 'आशाओ की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना' पक्तियो मे कितना साम्य है। 'दूर उस आकाश के उस पार' प्रिय है, जहाँ कल्पना भी निराश हो जाती है। ऐसी अवस्था मे वह विकल हो कर गा उठता है 'बोल तो किसके लिए मैं गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?' अज्ञेयजी की 'दूर वासी मीत मेरे, पहुँच क्या तुम तक सकेंगे काँपते ये गीत मेरे ?' रचना भी इसी प्रकार की हृदय को हिला देने वाली कविताओ में से है। प्रिय के न रहने से 'प्राणो की मसोस, गीतो की कडियाँ बन-बन रह जाती है' और कवि कातर होकर कह उठता है ? 'तेरे एक-एक सपने पर सौ-सौ जग न्यौछावर राजा।'

इस प्रकार के गीतो मे वेदना की बडी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। ये उनकी बड़ी प्राणवान रचनाएँ है। 'ऑसू' के प्रसादजी और इन गीतो के माखनलालजी बहुत समीप दिखलाई पडते है। पत्नी की श्राद्ध-तिथि को लिखी गई रचनाएँ भी इसी कोटि की है।

'उर्दू कविता की तर्जे अदा' के सस्पर्श से हिन्दी-साहित्य को सर्व प्रथम सरस बनानेवाले माखनलालजी पर वहाँ की प्रेम पद्धति का भी कुछ प्रभाव पड़ गया है। अरब और फारस की प्रेम-पद्धति मे प्रिय बडा निष्ठुर होता है। उसके हृदय मे दया का भाव उत्पन्न करने के लिए प्रेमी मर-मर कर अपना हाल सुनाते है। प्रसादजी का प्रिय भी बडा निष्ठुर था——

रो रो कर सिसक कर
कहता मै करुण कहानी
तुम सुमन नोचते फिरते
करते जानी अनजानी।

——ऑसू——

माखनलालजी भी अपने 'जालिम' प्रिय के हृदय मे दया उत्पन्न करने के लिए अनेक कष्ट सहने को तत्पर हैं——

फौलादी तारो से कस ले
'बधन' मुझ पर बस ले'

---

१ "विद्यापति के पदों मे काव्यात्मक रहस्यवाद प्रचुर मात्रा में है। सौन्दर्य और प्रेम को देखने की उनकी दृष्टि इतनी मार्मिक और तीव्र है और उनकी तद्-विषयक अनुभूति इतनी गहरी है कि हम रहस्य के ऊँचे स्तर पर उठ जाते हैं।" (पृष्ठ १४६ विद्यापति एक अध्ययन)।

कभी सिसक ले
कभी मुसक ले
कभी खीच कर हँस ले,
कान खेच ले,
पर न फेकूँ,
गोदी मे मुझे उठा कर,
कर जालिम
अपनी मनमानी
पर,
'जी' से लिपटा कर।

परतु यह प्रभाव अधिक मात्रा मे नही दिखलाई पडता। जो कुछ है वह बहुत थोड़ा है। इसी प्रकार शारीरिक सस्पर्श भी ढूँढने पर मिल सकते हैं। 'गो-गण सँभाले नही जाते मतवाले नाथ' और 'वासना-विहग व्रज-वासियो के खेत चुगे' तथा 'युगुल भुज के हार का' हिये मे उपहार न होने की टीस इसी बात का परिचय देते हैं। यह शरीर की स्वाभाविक भूख-प्यास है और इसका उन्होने निस्सकोच सकेत कर दिया है। परतु 'परिरभ-कुभ की मदिरा' पीने का 'निश्वास-मलय के झोके' लेने का तथा निर्दय नायक की 'निपट निठुराई' का उन्होने वर्णन नही किया।

इनकी प्रेम-सबधी रचनाओ की एक और विशेषता है। अनेक रचनाओ में प्रेम और बलिदान का द्वन्द्व दिखलाई पड़ता है। प्रिय की डाल से छूट कर प्रेम का पुष्प राष्ट्र-देव के चरणो मे चढ कर सार्थक हो लेना चाहता है। इसके लिए कवि प्रयास करता हुआ भी दिखलाई पड़ता है। वह प्रणय के रथ को प्रलय के पथ पर ले चलने का बार-

चार आग्रह करता है और इसीलिए उनकी अनेक रचनाओ का प्रारभ प्रेम से होता है और अत बलिदान मे। परतु जहॉ कविता प्रेम से प्रारभ होकर बडी दूर तक प्रेम को लेकर ही चलती है, वहॉ अनायास अत मे बलिदान को सामने ला रखना कुछ अस्वाभाविक लगता है, वैसे ही जैसे 'नौका-विहार' और 'सध्या तारा' मे पतजी प्रकृति-रानी के अनत सौन्दर्य की लहरो मे डूबते-उतराते अनायास दर्शन के रेगिस्तान मे कूद कर रह जाते है। यह भाव-व्याघात अच्छा नही लगता। इसे मन समझाने का एक बहाना भले ही कह लें। मै यहॉ उन रचनाओ की बात नही कह रहा हूँ जिनके मूल मे राष्ट्र-प्रेम ही प्रधान है और जो शृगार-प्रिय युग-यौवन को दृष्टि मे रख कर उपदेश तथा उद्बोधन के लिए लिखी गई है। ऐसी रचनाओ का उल्लेख पहले हो चुका है। उन रचनाओ मे और इनमे अतर है। वे समाज के युवको को दृष्टि मे रख कर लिखी गई है, इनका सबध कवि की वैयक्तिक भावना से है, उनमे राष्ट्र-प्रेम प्रधान है, इनमे कवि का अपना प्रेम प्रधान है, वे रचनाऍ युग की वाणी हैं, ये कवि-हृदय की बोली, उनमे कवि सेनानी और मार्ग-प्रदर्शक के रूप मे सामने आता है, इनमे उक्त पथ पर चलने का प्रयास करने वाले के रूप मे, उन रचनाओ मे प्रेम के उदात्तीकरण की उत्साही वृत्ति काम कर रही है, इनमे निरवलब अतः निराश प्रेम के लिए आश्रय ढूढने का आयोजन दिखलाई पड़ता है। उदाहरण के लिए 'हिम-तरगिनी' की अट्ठाइसवी कविता ली जा सकती है। इस कविता मे कवि अपने प्रिय से कुछ बाते कह रहा है। बाते कहते-कहते वह अनायास 'कैसे सखे कसाला, बलि-स्वर-माला गुँथ जाने दे।' कह कर चुप हो जाता है। सिमरिया वाली रानी की कोठी पर लिखी हुई सन् २२ की कविता भी इसी प्रकार की है। 'याद की प्याली मे बिछुडना घोलता-सा,' 'हृदय की कसको मे गुप-चुप टटोलता-सा,' 'पुराने दुख-दर्दों की गॉठ खोलता-

सा,' 'महा प्रलय की वाणी मे उन्मत्त बोलता सा,' जजीरो को मधुर आमत्रण अचानक मरदानो का प्रेरक बन जाता है। यह तो हुई प्रेम और बलिदान की बात। इसी प्रकार प्रेम और भक्ति मे भी द्वन्द्व के दर्शन होते है। कवि भक्ति की पावन गगा मे विरह की ज्वाला को शात करने का प्रयास करता है। परतु वह कर नही पाता। 'दीठ-डोरियो पर माधवको बार-बार मनुहार' कर वह थक जाता है। परतु इससे होता कुछ नही। उल्टे 'पुतली पर बढता-सा यौवन-ज्वार लुटा' हुआ न देख सकने के कारण दोनो पुतली के कारागृह 'सावन की झर' लगा देते है। यह है 'अपने प्रति सचाई, अपने आत्मा के रहस्य को खोलने का निष्कपट प्रयास।' (अचलजी)। परतु अनेक स्थलो पर उन्होने इस प्रयास को पास नही आने दिया। वहाँ पाठक अँधेरे मे टटोलता ही रह जाता है। यदि कठिनाई से कोई सूत्र हाथ आता भी है तो अचानक दूसरा भाव आकर उसे हाथ से खीच लेता है और पाठक फिर अँधेरे मे टटोलने लगता है। 'कुज कुटीरे यमुना तीरे' कविता इसी प्रकार की है। 'उन्मूलित वृक्ष' की अन्योक्ति का विश्लेषण करते हुए श्री निरालाजी ने अपने एक लेख मे लिखा था कि, "उनकी प्राय सभी पक्तियो का दूसरा पार्श्व समालोचक की दृष्टि मे बडा अधकारपूर्ण है।" इस वाक्य के साथ जब हम अचलजी के ऊपर उद्धृत वाक्य को मिला कर देखते है, तो दो विरुद्ध बाते दिखलाई पड़ती है। परतु न तो उनकी सब कविताओ मे दिन के प्रकाश की स्पष्टता है और न सब मे गोधूली का धुँधलपन ही। कुछ कविताओ का पार्श्व अवश्य अधकारपूर्ण है और कुछ मे आत्मा के रहस्य को खोलने का निष्कपट प्रयास भी निःसदेह उपलब्ध होता है। स्वय कवि का मत है कि, चवालीस बरस हिन्दी-जगत मे काम करने का आडबर करने के बाद भी मै, बीते बरसो की लिखी-बेलिखी बीती घटनाओ के सामने 'ईमानदार' लिख सकने मे निरुत्तर रहा हूँ।" "इस

सग्रह की कितनी ही तुकबदियाँ, घटनाएँ बनकर मेरे सामने खडी है" और कदाचित् अनेक घटनाओ को ईमानदारी से नहीं लिखा जा सकता। तात्पर्य यह कि उनकी अनेक रचनाएँ अत्यन्त अस्पष्ट हैं। वैयक्तिक जीवन से सबध होने के कारण, अनेक भावो के द्वन्द्व के कारण उनकी रचनाओ के इति-अथ को एक सीधी रेखा से मिला देना बड़ा कठिन हो जाता है। उनमे द्वन्द्व भी अनेक प्रकार के है। पाप और पुण्य, धर्म और प्रेम, प्रेम और बलिदान, राष्ट्र और भगवान, आस्था और अनास्था ऐसे कितने ही द्वन्द्वो की जोड उनके हृदय मे होती है। इनके 'क्यो' का समाधान कुछ तो युग के वातवरण मे मिलेगा और कुछ उनके निजी जीवन मे।

रहस्यवादी काव्य —

आस्था और अनास्था के द्वन्द्व की बात ऊपर कही गई है। पहले कवि को भगवान मे अटूट आस्था थी। अपने निर्बल देश की रक्षा के लिए कवि ने कइ बार भगवान को पुकारा था। आस्था के आधार को वह भगवान मानता था और अपने को भक्त। परतु आगे चलकर यह बात न रही। आशा के स्वर धीरे-धीरे निराशा मे बदले और निराशा तर्क के तारो पर झूल कर दूसरे किनारे पर कूदने का उपक्रम रचने लगी। 'राम नवमी' पर सन् १९०६ और १९१६ की दो रचनाओ को पढने के पश्चात् सन् १९३९ की 'तू ही क्या समदर्शी भगवान ?' कविता को पढने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। भक्ति का राष्ट्र-प्रेम मे पर्यवसान, देश-व्यापी निराशाजन्य अनास्था, जीवन की मृत्यु के द्वार तक सग जाने-वाली वेदना आदि ने मिल कर कवि की आस्था की दीवारो को हिला दिया है।

यहाँ भक्ति-भावना तो लुप्त हो चली। परतु उनके स्थान पर एक दूसरी भावना का जन्म हुआ। प्रेम ऊपर उठने का प्रयास करने लगा। दूसरी ओर दर्शन ने तर्क की तुला पर तौल कर उसके लिए एक सर्व-

सुन्दर आलबन की ओर इ गित किया। शताब्दियो पहले मानव-जाति ने उसे प्रियतम के रूप मे स्वीकार कर लिया था। देश पर दु ख पडा। जनता ने भगवान को पुकारा। पर कोई आया नही। उसे कुछ निराशा हुई विज्ञान और उसके अनुयायिओं ने इसी समय आवाज लगाई कि भगवान कोई चीज नहीं है। युग के निराश स्वर सदेह मे परिणत हो गए। परतु तर्क की दुहाई देनेवाला विज्ञान भगवान के दर्शनानुमोदित, तर्क-सिद्ध प्रियतम रूप पर आघात न कर सका। इसलिए युग-भावना उसकी ही ओर बड़े बेग से दौड पडी। अब भक्ति प्रेम बन गई और भगवान प्रियतम। भक्त और भगवान के अनेक सबध अब प्रेमी और प्रेमिका के एक सबध मे आकर सिकुड़ गए। इसी ने काव्य में रहस्यवाद को जन्म दिया।

माखनलालजी के काव्य मे भी रहस्यवाद के प्रचुर परिमाण मे दर्शन होते है। रहस्यवाद दर्शन के आधार पर खड़ा होता है। दार्शनिक भूमि पर आकर केवल एक ब्रह्म ही सत्य रहे जाता है। यह नानात्वमय जगत्प्रपच उस एक का ही बाह्य प्रसार बन जाता है। विश्व की विविधता में भी उसकी ही एकता दिखलाई पडने लगती है। परतु इसके लिए सर्व प्रथम 'अह' का नाश आवश्यक है। कबीरदासजी ने लिखा है.— 'आपा मेट्या हरि मिलै।' माखनलालजी ने भी इसी भावना को इस प्रकार व्यक्त किया है —

> जहाँ से जो खुद को
> जुदा देखते हैं,
> खुदी को मिटा कर
> खुदा देखते है।

'जित देखौ तित तूॅ' की भावना भी 'जिस ओर लखूॅ तुम ही तुम हो' मे व्यक्त हो गई है। 'कुटिया का राजा ही बन रहता कुटिया की

रानी' मे प्रेमी और प्रेमिका, परमात्मा और आत्मा का अभेदत्व अभिव्यंजित हुआ है। इस प्रकार हम देखते है कि उनके काव्य मे रहस्यवाद की अद्वैत-भूमि का यत्र तत्र सकेत मिल जाता है। परतु इस अद्वैत-भूमि के सकेत भर ही मिलते है। निरालाजी के रहस्यवाद का प्रगाढ पाडित्य यहाँ उपलब्ध नही होता। निरालाजी में दार्शनिक पक्ष प्रधान है, इसलिये अद्वैत-भूमिका का सुस्पष्ट विवेचन वहाँ सहज ही मिल जाता है। परतु माखनलालजी की गहरी भाव-धारा मे उस भूमि का दर्शन आयास से ही होता है। वे भाव-प्रमुख कवि है। उनके रहस्यवाद मे भी भावना की प्रधानता है।

रवीन्द्रनाथजी की 'गीताजलि' का प्रभाव भी उनकी कतिपय कविताओं में है। उदाहरण के लिए—आत्मा अभिसार के लिए घनघोर अँधेरे से भरे पथ पर अकेली ही निकलती है। परतु उस सन्नाटे मे भी उसे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई उसका पीछा कर रहा है। इस स्थिति का चित्रण विश्वकवि रवीन्द्रनाथ और माखनलालजी दोनो ने किया है—

सकेत-निकेतन ओर चली
मै निपट अकेली ही निकली
पथ मे घनघोर अँधेरा है,
यह कौन ? कि इस सन्नाटे मे
जो करता पीछा मेरा है

श्री रवीन्द्रनाथ (गीताजलि अनु०)

रैन अँधेरी, बीहड पथ है,
यादे थकीं अकेली
आँखें मूँदे जाती है

चरणों की बानी किसकी है ?
यह अमर कहानी किसकी है ?

—श्री माखनलाल—

'शीतल-गध-पवन' का रवीन्द्रनाथजी की अनेक कविताओ मे प्रिय के आगमन-सदेश या प्रिय के दूत के रूप में चित्रण हुआ है। इसलिए प्रात पवन के बहते ही सारा ससार आनद से भर जाता है, तरु-वृन्द जाग उठते है, विहग गा उठते है। इसलिए—

वायु का झोका जहाँ आया वहाँ
विश्व मे क्यो सनसनाहट मच गई ?

(माखनलाल जी)—

इसका उत्तर हमे निम्न-लिखित पक्तियो में सहज ही मिल जाता है —

ये शीतल-गन्ध-पवन की जो
धीमी-धीमी झकझोरें सी
तेरा आगम-सदेस ही तो
प्रिय, लेता है हिलकोरे सी

(श्री रवीन्द्रनाथ-गीताजलि अनु०)—

इसी प्रकार 'चला तू अपने नभ को छोड पा गया मुझ मे तब आकार' तथा 'अरे अशेप शेष की गोटी तेरा बने बिछौना सा' और 'मेरे 'मैं' ही में तो उदार, तेरी अपनी है छुपी हार' एव 'मेरी हार कि तेरी माला' आदि को पढ कर कहा जा सकता है कि माखनलालजी पर 'गीताजलि' का प्रभाव है। ऐसा प्रतीत होता है कि माखनलालजी का 'राजा' शब्द भी गुरुदेव का ही प्रसाद है। परतु विश्व कवि का राजा महामहिम, अनत ऐश्वर्य-सपन्न और अव्यक्त होते हुए भी अत्य त स्पष्ट

है । माखनलालजी का एक ही 'राजा' लौकिक सीमा-रेखाओ से आबद्ध भी है और उनसे परे भी। इस द्विविद्ध रूप के गर्भ से अस्पष्टता उत्पन्न होती है। परतु इन रचनाओ की तड़पन जलन, वेदना, आह, कराह सब मिलकर इस दु ख के देश का ही भान कराती है। 'गीताजलि' के अक्षय आनद, अमित उल्लास के देश का इनसे परिचय नही मिलता रवीन्द्रनाथ जी की आत्मा का आनद अलौकिक है, इनकी वेदना लौकिक अधिक। 'यह सभी तुम्हारा प्यार हमारे हृदय हरन' कह कर विश्व कवि प्रकृति को परमात्मा का प्यार घोषित कर देते है। कचन की किरणो का प्रभात मे तरु पल्लवो पर नर्तन, गगन मे मद गति से घनो का सचरण। बहती हुई शीतल मद पवन सभी परमात्मा के प्रेम का परिचय देते है। विश्व-कवि में प्रकृति का सोल्लास ग्रहण मिलता है।

हिन्दी मे प्रकृति का यह रूप पत जी और महादेवी जी मे सम्यक् रूपेण परिलक्षित होता है। पतजी की प्रकृति आध्यात्मिक सकेतो से परिपूर्ण है। महादेवी जी की प्रकृति आध्यात्मिक सकेत भी उपस्थित करती है और स्वय एक साधिका के स्वरूप मे भी प्रस्तुत होती है। वह भी महादेवी जी की आत्मा के समान परमात्मा की एक प्रेमिका है जो अपने प्रियतम के विरह मे व्याकुल है। 'यह जग क्या, लघु मेरा दर्पण' कह कर महादेवी जी ने इस दृष्टि कोण को स्पष्ट कर दिया है। प्रकृति का यह स्वरूप सूफियो की सपत्ति प्रतीत होता है जहॉ प्रकृति के सौन्दर्य मे परमात्मा का आभास पाया जाता है और समस्त प्रकृति का विरह विकल रूप भी उपलब्ध होता है। जायसी के 'पदमावत' को पढने से यह बात स्पष्ट हो जाती है। परतु माखनलाल जी मे प्रकृति का निषेध प्राप्त होता है। वे इसे 'जगत बखेडा' कह कर छोड़ने की बात कहते है। 'कुञ्ज कुटीरे, जमुना तीरे' 'जदुवसी' को देख कर भी वे कालिन्दी की लहरो, तथा रत्नाबर परिधान-परिवेष्ठित पगली प्रकृति को उन्मादक मीठे

सपने-सी ही बतलाते है। यह दृष्टिकोण कबीर के मायावाद के अधिक निकट दिखलाई पड़ता है। कबीर ने प्रकृति को कभी सहानुभूति की दृष्टि से नहीं देखा। उसे आत्मा और परमात्मा के बीच बाधा उत्पन्न करने वाली माया ही माना है। इसी दृष्टिकोण से प्रभावित होने के कारण माखनलाल जी में कदाचित प्रकृति के प्रति छायावादी कवियो जैसा अनुराग नहीं है। प्रकृति-सौन्दर्य के प्रति विरक्ति का कारण उनकी वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की विषम परिस्थितियो को भी माना जा सकता है। कही-कही प्रकृति का आध्यात्मिक वेदना को उद्दीप्त करने वाला रूप भी दिखलाई पड जाता है और कही वह आध्यात्मिक सकेतो को भी उपस्थित कर देती है। परतु ऐसे स्थल अधिक नही है।

अनेक स्थलो पर तो उनकी रहस्य-भावना और भी अधिक रहस्यमयी हो उठी है। इसका एक कारण तो यह प्रतीत होता है कि वे जो कुछ कहते है वह एक बात न हो कर अनेक बातो का सगुम्फन होता है। वे अपने उपचेतन का विश्लेषण न कर उसकी यथावत् अभिव्यक्ति कर देते हैं। उपचेतन मे न जाने कितनी बाते एक साथ सोई रहती है। वे सब भावातिरेक के क्षणो मे एक साथ उठ कर कलम के घाट से काव्य की धारा मे कूद जाती है। इसीलिए कवि प्रकृति को एक ही स्थल पर 'उन्मादक मीठे सपने-सी' मान कर जहाँ मायावाद की अभिव्यक्ति करता हुआ दिखलाई पडता है, वही 'कुञ्ज कुटीरे, यमुना तीरे' यदुवशी को देख कर उसे सत्य भी मान लेता है। वह प्रकृति को ग्रहण भी करता है और उसका निषेध भी। ये दो विरुद्ध बाते हैं। इसलिए उनकी रहस्य-भावना का अस्पष्ट होना स्वाभाविक है। दूसरे, शैली की दृष्टि से भी वे स्थान-स्थान पर सचेत हो जाते है। उदाहरण के लिए 'हार' का प्रयोग होते ही कवि तत्काल दूसरे हार का प्रयोग कर देता है और पद में यमक

की एक गाँठ और पड़ जाती है, यथा—"प्रथम 'हार' के हार बना कर मेरे हारो की वनमाला फूल उठी तुझको पहिना कर।" शब्दो मे ही नही, प्रोक्तियों तक में कवि इस प्रकार का खेल कर जाता है। उदाहरण के लिए—"आज मै बनलूँ बधूटी 'बाँध गाँठ' कि गाँठ छूटी।" गाँठ बाँधना और गाँठ छूटना एक साथ ही रख दिए गए है। शैली की इस सजीवता के कारण उन्हे सूक्तिप्रिय कवियो की श्रेणी मे बैठना पड़ा है। उनके काव्य मे इससे भी कुछ अस्पष्टता बढी है। रहस्यात्मक कविताओ के रहस्य का रग इससे अनेक स्थानो पर गाढा हुआ है। एक और बात जिसे छायावादी युग की परपरा का प्रसाद कह सकते है। जयदेव के समय से ही राधा कृष्ण के नाम पर शृ गारिक कविताएँ लिखी जाने लगी थी। परतु जयदेव का ध्येय विलास-कला के द्वारा भी हरि-स्मरण करना था। उन्होने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है—

यदि हरि स्मरणे सरस मनो
यदि विलास कलासु कुतूहलम्।
मधुर कोमल कात पदावलीं
शृणु तदा जयदेव सरस्वती ॥

परतु विद्यापति के समय तक आते-आते हरि-स्मरण का लक्ष्य लुप्त हो गया था और विद्यापति के पद समस्या बन गए कि उनमे आध्यात्मिकता है या भक्ति है अथवा शृंगार है। रीतिकाल मे यह समस्या ही नही रही। राधा-कृष्ण के नाम पर निधड़क कवि-गण नायक नायिका की काम केलि का चित्रण करने लगे। परतु आधुनिक काल तक आते-आते कृष्ण कवियो के नायक भी न रह सके और गली-गली के 'कन्हैया' बन गए। तब कवियो ने उनके पूर्वज परमात्मा को पकड़ा और राधा-कृष्ण के स्थान पर आत्मा और परमात्मा का जुगल जोडा तैयार हो

गया । इस प्रकार इन प्रतीकों के पर्दे के पीछे मानुषीय विरह-मिलन की अभिव्यक्ति एक दीर्घ परपरा से चली आ रही है । इस युग के कवियो ने एक और चतुराई चली । अपने प्रिय को पुल्लिग के पीढे पर बैठा कर उसका स्वागत किया । इसका परिणाम यह हुआ कि पाठक और भी भ्रम मे पड गया । इस प्रकार इस आत्म-गोपन की प्रवृत्ति के कारण जीवन का लौकिक प्रेम रहस्यात्मक भाषा बन कर निकला । परतु त्रिशकु की तरह न तो वह भूकी भागीरथी मे नहा पाया और न गगन गगा की लहरो म किलोल ही कर पाया । माखनलालजी ने भी ऐसे अनेक सदिग्ध पदो की रचना की है । उनके राजा, मनमोहन, दिलवर सब इसी प्रकार के प्रयोग है जो दोनो ओर खीचे जा सकते है । इस खीचातानी मे रचनाओ का अर्थ स्पष्ट नही हो पाता । कुछ आलोचको का मत है कि उनकी रचनाओ मे अस्पष्टता का एक कारण स्वय रहस्यवाद ही है । परतु रहस्यवाद अस्पष्ट नही होता । रहस्यवादियो का प्रियतम अज्ञात और अव्यक्त होते हुए भी बुद्धिगम्य होता है, उसे बुद्धि की आँखो से किसी भी स्थूल वस्तु के समान देखा जा सकता है । छायावादी कवियो मे अस्पष्टता का कारण रहस्यवाद नही, उनकी आत्म-गोपन की प्रवृत्ति है । रहस्यवाद का वे अनेक स्थानो पर साध्य के रूप में नही, साधन के रूप में प्रयोग करते हैं ।

माखनलालजी की रहस्य भावना का आलबन निर्गुण और सगुण का मिश्रण प्रतीत होता है । कभी तो उनका भगवान निर्गुण निराकार दिखलाई पड़ता है और कभी रामकृष्ण का सगुण रूप रख कर सामने आता है । परतु अधिकतर ऐसा होता है कि वे भक्ति-युग के प्रतीको का नाम तो लेते हैं, किंतु उनकी दृष्टि अज्ञात अव्यक्त सत्ता की ओर ही रहती है । कबीर के राम भी इसी प्रकार के थे । वे राम की बहुरिया बनते थे, राम का नाम जपते थे, परतु उनकी दृष्टि सदैव निर्गुण ब्रह्म-राम

की ओर ही जमी रहती थी। उन्होंने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट भी कर दिया है—"दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना। राम नाम कर मरम है आना।" यही बात आलोच्य कवि मे भी दिखलाई पडती है। उसके माधव, जदुबसी, मोहन मोर-मुकुट-पीताबरधारी कृष्ण नही है। ये सब निर्गुण ब्रह्म के ही नाम है, अवतार नही। परतु शताब्दियो से राम और कृष्ण के नाम के ही त्याग और भक्ति की भावना भाँवरे देती आ रही है। इनके प्रयोग से सर्व प्रथम जो भावना जागरित होती है, वह भक्ति की ही होती है, रहस्य की नही। कभी-कभी वे अपने आराध्य की रूपरेखा भी निश्चित कर देते है, जैसे—

माखन पाव वृन्दावन मे बैठा विश्व नचावे,
वह मेरा गोपाल, पतन पहिले पतित उठावे!
व्याकुल ही जिसका घर है अकुलातों का गिरिधर है
मेरा वह नटवर है, जो राधा का मुरलीधर है।

पर इस सीमा पर आकर रहस्यवाद की इति श्री हो जाती है। साराश यह कि उनकी रचनाओ मे रहस्यात्मकता, भक्ति और इन दोनो का मिश्रण, ये तीनो बात पाई जाती है।

प्रकृति प्रेममूलक काव्य—

प्रकृति से छायावादी कवियो को बड़ा प्रेम रहा है। वह काम और मोक्ष की सिद्धि का एक बड़ा साधन बन गई है। वह कभी अज्ञात और अव्यक्त सत्ता का प्रतिबिम्ब बन कर और कभी उस अज्ञात की प्रेमिका बन कर सामने आती है और रहस्य-काव्य को जन्म देती है। दूसरी ओर वह मानव-जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, विरह-मिलन, राग-विराग आदि को भी व्यक्त करती रही है। इसीसे छायावादी काव्य का सृजन

होता है। कवि-गण प्रकृति के सहज सौंदर्य की ओर आकृष्ट हुए, उसमें उन्होने प्राणो की अनुभूति की और एक सवेदनशील हृदय भी पाया। कवियो ने मानव-जीवन से उसका साम्य देख कर उसके ही द्वारा अपनी भावनाओ को व्यक्त करना प्रारभ कर दिया। साराश यह कि इस युग के कवियो ने प्रकृति को अनेक दृष्टियो से देखा और उसका अनेक प्रकार से अपने काव्य में प्रयोग किया। पतजी प्रारभ मे प्रकृति की अपार सुषमा पर मुग्ध रहे और अपने काव्य-पट पर उसके ही सौन्दर्य का चित्र खीचते रहे। पतजी ने प्रकृति का कल्पनात्मक चित्रण किया। निरालाजी ने प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र उपस्थित किये। प्रकृति के किसी एक अग का सपूर्ण चित्र उपस्थित कर देना निरालाजी के प्रकृति चित्रण की एक बड़ी विशेषता रही है। प्रसादजी की प्रकृति के प्रति प्रथम तो जिज्ञासात्मक दृष्टि रही, पश्चात् वे उसे मानुषीय विरह मिलन के इ गितो पर नचाते रहे। महादेवीजी की प्रकृति प्रमुख रूप से अपना नाना प्रकार शृ गार कर 'चिर सु दर' के आने की राह देखती हुई दिखलाई पड़ी। माखनलालजी में सर्वप्रथम तो विशुद्ध प्रकृति चित्रण का अभाव है। उन्हे प्रकृति से प्रेम नही है। इसीलिए वे वन की अपेक्षा वनमाली मे छिपना चाहते है—"छिपूँ ? किसमे ? वन मे ? ना सखि वनमाली मे।" इधर पतजी तरल तरगो को छोड़ कर, इ द्रधनुष के रगों को छोड कर बाला के केश-पाश मे भी नेत्रों को नहीं उलझाना चाहते। प्रकृति की सहज सुषमा के लिए वे नारी के उन्मादक सौन्दर्य की उपेक्षा कर जाते है। माखनलालजी प्रकृति के लिए इतना बड़ा उत्सर्ग करने को तैयार नही है। उन्हे तो प्रकृति और उनके जीवन मे अनेक बार वैषम्य दिखलाई दिया है। 'कैदी और कोकिला' तथा 'झरना' शीर्षक कविताओ मे यह भाव स्पष्ट रूप से झलक रहा है।

झरने को देख कर कवि कहता है कि मै अपनी कृति से भू-मडल को कुभीपाक बना देता हूँ और यह अपने स्वच्छ पानी से ससार को स्वर्ग बनाता है। मेरी वाणी से युवको का शोणित उष्ण नही हो पाता और यह पक्षियो तक को पागल कर 'कल कल' कहला लेता है। मैं अवरोधो से रुक जाता हूँ और यह वज्रो के हृदय भेद कर भी आगे बढ जाता है। इस प्रकार की भावना 'कैदी और कोकिला' नामक कविता में भी व्यक्त हुई है। स्वच्छद रूप से विस्तीर्ण व्योम में विचरण करनेवाली विश्व-प्रशसिता कोकिल को हरी डाल पर बैठी देख कर काली कोठरी की सकीर्ण सीमाओ मे बैठा हुआ रुदन-वर्जित कवि कह उठता है—"देख विषमता तेरी मेरी।" सामान्य रूप से छायावादी कवियो ने प्रकृति का यह रूप चित्रित नही किया है। उनकी प्रकृति उनके सुख से सुखी और दुख से दुखी हुई है। वह सहानुभूतिमयी है, उपेक्षामयी नही। मानव-जीवन के आकाश मे आशा का उदय होते ही प्रसादजी का कवि देखता है कि—"उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी सी उदित हुई" और विरह विदग्ध श्रद्धा का चित्रण करते हुए वह देखता है कि—"सध्या अरुण जलज केसर ले अब तक मन थी बहलाती।" माखनलालजी ने प्रकृति का उपेक्षामय रूप देखा है, इसलिए वे उसका निषेध करते है। अन्य छायावादी कवियो ने उसका सहानुभूतिमय रूप देखा है, इसलिए वे उसका स्वागत करते है।

परतु ऐसा प्रतीत होता है कि ये प्रकृति का निषेध एक दार्शनिक के नाते ही कर सके है। शकराचार्य जी के अद्वैत दर्शन के अनुसार यह समस्त ससार असत्य और अवास्तविक है। प्रकृति माया है जो परमात्मा के मिलन मे बाधा उत्पन्न करती है। कदाचित् इस कवि के प्रकृति-निषेध

के मूल में यही दार्शनिक तथ्य रहा है। परतु कवि के नाते वह प्रकृति के अपार सौन्दर्य की उपेक्षा न कर सका। सन् १९४४ की 'कविता कल्याणी' नामक रचना से यह बात स्पष्ट हो जाती है। बादलो की चादर में लुकता-छिपता चद्रमा, विन्ध्या के 'झर-झर' कर झरने वाले बेकाबू पागल झरने, पावस का प्यारा इद्र-धनुष, वसुधा का हरियाली से भरा आँचल, व्योम के नीले रथ पर आती हुई तारो की बारात, चचल पवन-हिंदोल पर झूलने वाले रग बिरगे बादल जिस दिन कवि ने देखे, उसका कहना है कि—"उस दिन आई जल धारा के तट, मेरी कविता कल्याणी!" अर्थात् प्रकृति के सौन्दर्य को देख कर उसके हृदय मे कविता की धारा बह चलती है। परतु यह दृष्टि कवि मे बहुत देर से आई। अन्यथा उनके काव्य में प्रकृति सौन्दर्य के राशि-राशि चित्र उपलब्ध होते। परतु कुछ तो अपने विशिष्ट दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण और कुछ जीवन की विषम परिस्थितियो के कारण कवि प्रकृति के सौन्दर्य से अपनी काव्य-श्री की अभिवृद्धि न कर सका। जेल-जीवन के कटु अनुभव उनकी हृदय भूमि मे इतने गहरे पैठे हुए हैं कि प्रकृति मे भी वे जेल का वातावरण ही देखने लगते है इसलिए वे 'धीरे-धीरे' नामक कविता मे तरु-लता को सीखचे, शिलाखड को दीवार, नदी को द्वार, मयूर की बोली को जजीर की झनकार और चीते की बोली को पहरे का 'हुशियार' कहते हैं। सारी प्रकृति को ही जेलखाना बना दिया है। इतना ही नही, वे समस्त भारत की कल्पना भी कारागृह के रूप मे करते है। 'कोमलतर बन्दीखाना' तीस कोटि कैदियो से भरा था, हिम-गिरि की दीवार कारागृह थी, गगा-यमुना गले का तौक थी, बगाल और अरब सागर की लहरे हथकड़ियाँ थी, हिन्द महासागर पैर की साँकल

बन गया था। इस प्रकार पूरा भारत ही बदी खाना था। यह सत्य है, परतु इससे भी अधिक सत्य है कवि के कारागृह-जीवन की कटु अनुभूतियाँ जो बार-बार उसके साहित्य में व्यक्त होती रही हैं। पद्य ही नहीं, गद्य में भी यही बात मिलती है। कतिपय रचनाओ मे उन्होने प्रकृति का प्रतीकात्मक चित्रण किया है। 'फूल की अभिलाषा,' 'कलिका से—कलिका की ओर से' तथा 'विद्रोही' नामक रचनाओ मे फूल, कलिका तथा वृक्ष कवि की आत्मा के प्रतीक बन कर आए हैं। प्रकृति के आलबनगत चित्रण का तो इन मे अभाव है। परतु वह उद्दीपन का काम अवश्य करती है। 'कैदी और कोकिला' नामक रचना मे प्रकृति का यह स्वरूप दिखलाई पडता है। एक बार कोकिल का स्वर सुन कर कवि की भावना उद्दीप्त हो उठती है और फिर वह उसे भिन्न भिन्न विरोधी रूपो में भी चित्रित कर चलता है। जहाँ कोकिल कैदी से अनेक बातो में सुखमय स्थिति मे होने के कारण 'रुलाने वाली' प्रतीत होती है और उसका स्वर 'बेसुरा' लगता है, वही कैदी-जीवन के 'काले सकट-सागर' से उसका रग-साम्य होने के कारण उसका स्वर-माधुर्य 'जी के घावो पर तरलामृत' भी बरसाता है। इस प्रकार उन्होने प्रकृति के एक ही अग को अनेक भावनाओ से सश्लिष्ट कर चित्रित किया है। उपमान के रूप मे प्रकृति का प्रयोग सब कवियो के समान माखनलाल जी ने भी किया है। 'प्राण के बाग मे प्रीति की पद्मिनी', 'मानस मे सकट के कज', 'नयन के बॅगले मे सकेत पाहुने' इसी बात के सूचक है। परतु इस प्रकार के प्रयोग अधिक नही है। ढूँढने पर ही कुछ और एकत्र किए जा सकते हैं। उनकी प्रकृति मे एकाध स्थल पर आध्यात्मिक उल्लास का भी सकेत मिलता है। रहस्यवाद के प्रसग मे प्रकृति के इस स्वरूप का

उल्लेख हो चुका है। साराश मे, माखनलालजी के काव्य मे प्रकृति के प्रासगिक उल्लेख ही प्राप्त होते है, राष्ट्रीयता, प्रेम या रहस्यात्मकता के समान वह उनके काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति बनने का दावा नही कर सकती।

काव्य चिन्तन—

माखनलालजी की अनेक रचनाओ मे उनकी काव्य-सबधी धारणाएँ व्यक्त हुई है। गद्य मे भी 'साहित्य-देवता' मे उनके साहित्यिक विचार सग्रहीत हैं। 'हिम किरीटनी' का 'आत्म-निवेदन' और 'माता' की 'भूमिका' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अमृतपत्रिका के सन् १९५३ के स्वाधीनता विशेषाक मे प्रकाशित उनकी 'भारती' नामक रचना भी उनके साहित्यिक विचारो पर अच्छा प्रकाश डालती है।

'हिमकिरीटनी' के 'आत्म-निवेदन' मे उनकी सर्व प्रथम मान्यता यह है कि कवि युग के प्रभाव को स्वीकार कर उसे भी वाणी देता है और मानव की शाश्वत मनोभावनाओ को भी अभिव्यक्त करता है। यद्यपि बहिर्जगत की वाणी सामयिक होने के कारण समय परिवर्तन के साथ ही अनस्तित्व मे विलीन हो जाती है, फिर भी कवि 'युग के परिवर्तनो से आँखें मूँद कर अपनी कला को पुरुषार्थमयी नही रख सकता।' इसलिए वह युग का चित्रण करता है। परतु दूसरी ओर वह मानव की मूल मनोभावनाओ तक पहुँचने का भी प्रयास करता है। इस कार्य मे उसे 'सूझ' सहायता पहुँचाती है। क्योकि वह 'समय के तीनो टुकड़ो के अन्त करण मे से गुजर कर उन्हे छेदता हुआ, नित्य नवीनता के साथ बढता जानेवाला मानवता का वह डोरा है, जिस पर सपूर्ण विश्व के जड़-चेतन का भान ठहरा हुआ है। वह 'विकास की साँस, विवेक की धड़कन और अस्तित्व का सवेदनशील परम कौशल है।' अनुभूतियो के

मूल तक पैठा देनेवाली यह 'सूझ' जिस प्रकार अनुभूति (सॉस) को विद्रोहिणी नही कही जा सकती, उसी प्रकार प्रणय और प्रलय में, हृदय और मस्तिष्क मे कोई विद्रोह नहीं है। कवि की ये धारणाएँ उनकी अनेक रचनाओं में व्यक्त हुई हैं।

'माता' की भूमिका मे उन्होंने कवियो से कुछ शिकायतें की हैं। उनकी सबसे बडी शिकायत यह है कि हिन्दी के कवियो ने राष्ट्र के अमर शहीदो को श्रद्धाजलियॉ नही चढाई। मदनलाल ढींगरा, गोपीनाथ साहा, चद्रशेखर आजाद, भगत सिंह जैसे वीर देश की सेवा मे बलि बन गए, परतु उनके लिए अभी तक किसी भी कवि की वाणी नही खुली। दूसरे, कुछ कवि 'ऐसे पैदा हुए, जो जिंदगी से चलने को कहते है और कलेजे से गाने को, उन्हे न हमने बलि की कीमत मे कूता, न गायन के जाज्वल्य ज्वाला के मूल्य मे।' तीसरी शिकायत यह है कि आलोचकों ने ऐसे कवियों पर मत बनाते समय उनके जीवन के त्याग और उत्सर्ग को भुला दिया। आलोचक 'ऑखो और आवेगो के आकर्षण, अथवा अपनी गुरुता के बोझ मे ऐसा भूला कि सूली पर भूला, और कष्टो की तस्वीरें, गीतो पर मत बनाते समय उसे दीखी ही नही।' उन्होने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि जीवन और साहित्य मे अतर नही होना चाहिए। देश, विश्व और कला की दूरी अब अधिक नही सही जा सकेगी। इसलिए वे दृढता पूर्वक कहते है कि, "बलि और गीत, ये, युग की बीहड़ भूमि पर, एक दूसरे के पूरक-पथी है।" उनकी रचनाओं में भी ये ही धारणाएँ अनेक प्रकार से व्यक्त हुई है। प्रलय या बलि बहिर्जगत की मॉग है और प्रणय या गीत अतर्जगत के उच्छ्वास। इसलिए यदि ये एक दूसरे के पूरक न हो तो क्या हो सकते है? इसीलिए

कवि गाता है कि, "प्रलय-प्रणय की मधु-सीमा मे जी का विश्व बसा दो मालिक।" या "स्वर छेड़ो कल्याण राग से अतिम राग भैरवी गाओ।" बहिरतर के साम्य का इस कवि मे बड़ा आग्रह पाया जाता है। जब युग-देवता बलि-पूजा की भीख माँग रहा हो, तब प्रणय की आहे भर-भर कर रोने वाले कवियो पर उनने कटु व्यग किए है। वे ऐसे गान चाहते है जिनसे मस्तक गर्वोन्नत हो उठे और सारा आकाश-मडल गूँज जाय। यदि गान ऐसा न हुआ तो उसे वे मक्खी का भिनभिनाना कहते है—

गान ? जब मस्तक उठा,
काँपा नभो-वितान।
भिनभिनाती मक्खियाँ भी
लिख चलेंगी गान।

इसमें कोई सदेह नही कि उनकी कतिपय रचनाएँ ओज की साकार प्रतिमाएँ बन गई हैं। आग लगाने वाला ओज यदि देखना हो तो उनकी 'जवानी' की ज्वालाएँ देखना चाहिए। परतु इसका यह अर्थ नही कि उनमे ज्वाला ही ज्वाला है। उनमे ज्वाला के साथ जल धारा का भी अपूर्व सयोग है। उनकी प्रणय की रचनाओ मे आँखो के पानी मे घुल-घुल कर छद बहे है। वे भावोन्मेष के क्षणो मे ही काव्य-सृजन के पक्षपाती है। 'भावो का जिनको अजीर्ण है' उन्हे वे कवि नही मानते। प्राण के कुञ्ज के कोटि-कोटि भाव विहगो की भीड़ हो जाने पर ही वे उन्हे बाहर निकलने की अनुमति देते है। काव्य मे अनुभूति को भी वे एक प्रधान तत्त्व मानते है। उनका कहना है कि, "यदि स्वय सुभद्रा पर बीती का गाढा रग न होता, तो क्या उन रचनाओ के प्राणो तक

कोइ पहुँच पाता ?" रामचरितमानस का उल्लेख करते हुए उन्हो ने कहा है कि, "जो रामचरित-मानस गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखी, उसे यदि शान के वेश्यागारो मे बैठ कर किसी पानवाली के यहाॅ पान खाते हुए, जिन्दगी बितानेवाले किसी नगण्य ने लिखी होती, तो क्या उसका मूल्य 'रामचरितमानस' होता ?" अनुभूति के समान ही वे सूझ (कल्पना) को भी काव्य का प्रमुख उपादान मानते है। एक स्थान पर तो वे उसे काव्य का कलेवर तक कह देते है, जैसे —'सूझो का पहिन कलेवर सा।' वे सूझ की मोम दीप से तुलना करते है, जो जब चाहे जब बुझाया जा सकता है, जब चाहे जब जगाया जा सकता है। इस प्रकार वे काव्य मे भावना और कल्पना का सुदर सयोग चाहते है। उनके काव्य पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो वे इस सयोग सिद्धि के लिए प्रयास करते हुए दिखलाई देते है। परतु यह नही कहा जा सकता कि उनका प्रयास सफल ही हुआ है। क्योकि भावना की दौड़ मे कल्पना कई बार पीछे रह गई है और अनेक स्थानो पर सूझ (कल्पना) ने ऐसा जाल बुना है कि भावना के आॅचल की कोर भी पकड़ मे नही आ पाती।

उनकी 'भारती' नामक रचना की देह ही साहित्यिक विचारो से बनी है। इसे 'साहित्य देवता' का लघु सस्करण कह सकते है। कवि अब चाहने लगा है कि साहित्य मे आसेतु हिमाचल का चित्रण किया जाय। हिन्दी की देह मे समस्त भारत के प्राणो का स्पन्दन हो। अब भारती हृदय हृदय के सिंहासन पर उतर आवे। अब कवि भारत-भारती का आह्वान करता है, वह युग-साहित्य चाहता है। छायावादी कवियो की सृजनहीन कोमलता को वह कोमलता का सहार कहता है। देश के कोटि-कोटि श्रमिको, कृषको—अपने श्रम-जल से भारत को नंदन बनानेवालो को भारती के मदिर मे न पाकर वह क्षुब्ध हो उठता है —

जिसने श्रम-कण सौंप भारती भारत-नंदन को लहराया,
प्राणों पर दे प्राण कि जिसने सिपहगिरी को धन्य बनाया।
क्यों तेरी रागों मे रंगिणि उनका रक्त नहीं भर आता ?
क्यों तेरी वीणा पर मानिनि उनके राग न कोई गाता ?

नारी के स्त्री-रूप पर ही अभी तक लेखकों की दृष्टि जाती रही है। परन्तु नारी माता, बहिन और बेटी भी होती है और उसके ये स्वरूप भी उतने ही सरस होते हैं, जितना स्त्री का स्वरूप। इसलिए वे उसके स्त्र्येतर स्वरूपों को भी साहित्य मे सम्यक रूप से अवतरित करने का आग्रह करते हैं —

नारी गई कि प्राण चल दिए, माना, किन्तु रसों की रामा—
माता, बहिन, बेटियाँ भी तो नारी ही होंगी अभिरामा।
वेणी खोल, एशिया की सब भूमि-भाग बालायें धायीं,
तेरा माखनचोर जगा दे री भारती जसोदा माई।

आज वे साहित्य मे अखिल भारत का चित्रण चाहते है और भारती के स्वरों को अग जग के स्वरों मे मिला कर विश्व-व्यापी बना देना चाहते हैं —

सजग विश्व जन-गण सुनता है, जग के स्वर पर स्वर दो रानी!
छा जाओ भारती जगत पर प्रतिभामयी देश की वाणी!
उठो देवि, कल्याणवदिता शस्त्रशास्त्र पूजिता उठो तुम!
गिरि-वन, निर्जन, प्रलय प्रभंजन रसवती जूझिता उठो तुम!
चढा कुमारी के तूँबे पर तार खूँटियाँ हिमगिरि पर दे,
गावो भैरव राग सृजन की विश्ववद्य कूजिता उठो तुम!

निस्सन्देह माखनलालजी ने हिन्दी-साहित्य की कमियों को पहचाना है और तत्पूर्त्यर्थ उचित दिशा निर्देश किया है। परंतु विचारक के

अतिरिक्त वे स्वय भी कवि है और काम करने की अपेक्षा करवानेवाले 'दादा' होते हुए भी उन्होने इस दिशा मे पैर उठाया है। 'माता', 'माँ का मन', 'मोल तोल' कविताओ मे उन्होने मातृ-हृदय के चित्रण का प्रयास किया है।

अन्य भाव सवेदन —

उनकी कतिपय रचनाओ मे आत्मनिक्षेप की भावना भी पाई जाती है। 'उपालभ' और 'मील का पत्थर' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। 'मनुहार' नामक रचना मे आत्मोद्बोधन है और 'आँसू' तथा 'वेदना गीत' मे निराशा। 'घर मेरा है' मे विरक्ति और 'यह किस का मन डोला' तथा 'वह टूटा, जी जैसा तारा !' मे पराजय का भाव निहित है। वे सब भावनाएँ उनके अतर्जगत से सबधित है। इन सब मे उन का निराश और पीड़ित व्यक्तित्व ही प्रतिबिम्बित हुआ है। वैयक्तिक वेदना जहाँ सामाजिक पराजय से मिल गई है वहाँ निराशा का रग और भी गाढा हो उठा है, जिसकी मानसिक प्रतिक्रिया 'जवानी' जैसी कविताओ मे अत्यत उग्र रूप मे व्यक्त हुई है। फिर भी राष्ट्रीय रचनाओ का उनका वीर व्यक्तित्व इस निराशा और पराजय की भावना पर छा जाने मे समर्थ हुआ है। उनकी प्रेम-सबधी रचनाओ से विधुर-विरही के जीवन पर प्रकाश पड़ता है। रहस्यात्मक रचनाओ मे वे किसी सीमा तक रहस्यवादी और मुख्य रूप से भक्त के रूप मे प्रकट हुए है। साहित्य पर सम्मति देते समय, समाज की आलोचना करते समय, वे कभी कभी विचारक भी बन गए हैं। इस प्रकार प्रमुख रूप से उनमे योद्धा, प्रेमी, भक्त और विचारक इन चार रूपो का समाहार है, जिनमे कवि प्रथम को ही प्रमुखता देता है :—

सूली का पथ ही सीखा हूँ,
सुविधा सदा बचाता आया,
मै बलि-पथ का अगारा हूँ,
जीवन-ज्वाल जगाता आया।

काव्य-तत्त्व

अनुभूति—

पूर्व-परिच्छेदो मे माखनलालजी के काव्य की प्रवृत्तियो का अध्ययन कर लेने के पश्चात् अब हम उनके काव्य-तत्वो पर भी विचार करेंगे। काव्य-तत्वो में सर्व प्रथम अनुभूति-पक्ष पर विचार करना है। सामान्यत अनुभूति तीन प्रकार की होती है—प्रत्यक्षानुभूति, स्मृत्यानुभूति और सकल्पानुभूति। प्रत्यक्षानुभूति इन्द्रिय सन्निकर्ष के आधार पर तथा सकल्पानुभूति बौद्धिक प्रक्रिया की नींव पर खड़ी होती है। माखनलालजी की राष्ट्रीय रचनाओ और प्रेम सबधी रचनाओ मे प्रत्यक्षानुभूति के दर्शन होते है। देश के स्वतन्त्रता-सग्राम मे माखनलालजी ने सक्रिय सहयोग दिया है। उन्होने देश मे होने वाली हलचल को उसके भीतर से देखा है तथा उसकी सफलता-विफलता, आशा-निराशा आदि का स्वय अनुभव किया है एव तदनुभूति को काव्यात्मक वाणी प्रदान की है। प्रेम-सबधी रचनाओ मे भी यही बात पाई जाती है। उनमे भी जीवन के कटु अनुभव की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। राष्ट्रीय रचनाओ का ओज, आवेश, पुकार और ललकार तथा प्रेम-सबधी रचनाओ के आह और आँसू तीव्र स्वानुभूति के गर्भ से उत्पन्न हुए है, कल्पना के आकाश से नही टपके। स्मृत्यानुभूति के अतर्गत उनके प्रकृति काव्य को ले सकते है, जिसमे वे पूर्वानुभूत प्रकृति-चित्रो को कतिपय अवसरो पर यथावश्यक अभिव्यक्त कर देते है। उनके रहस्यवादी काव्य मे सकल्पानुभूति के दर्शन होते है। आधुनिक युग मे रहस्य-तत्व की साधना सभूत प्रत्यक्षानुभूति सभव नही। इसलिए अब रहस्यानुभूति को सकल्पात्मक ही माना जा सकता है, जिसमे बुद्धि-विलास का प्राधान्य होता है। यदि हम उनकी रचनाओ को विशुद्ध और

सश्लिष्ट अनुभूति की दृष्टि से देखें, तो केवल राष्ट्रीय रचनाएँ ही विशुद्ध अनुभूति के अतर्गत आवेगी। अनुभूति की आन्यत एकतानता का निर्वाह इन रचनाओं मे ही हो पाया है। प्रेम और भक्ति से सबधित रचनाएँ सश्लिष्ट कोटि की है। अधिकाश रचनाओ मे प्रेम राष्ट्र-भावना मे मिल गया है और कभी-कभी वह रहस्यमय भी हो उठा है। इसी प्रकार भक्ति की भावना भी राष्ट्रोन्मुख होकर ही सामने आई है। विशुद्ध भक्ति के दर्शन उनकी बहुत कम रचनाओ मे होते है और प्रेम भी निरावरण रूप मे अत्यल्प स्थलो पर व्यक्त हुआ है। कुछ रचनाएँ ऐसी भी है जिनमे किसी दूसरी भावना का सश्लेष न हो कर बौद्धिकता का मिश्रण पाया जाता है। भक्ति को तर्क के ऊहापोह मे देखने का प्रयास इसी बात का सूचक है। द्वन्द्वात्मक रचनाएँ तो उनकी सश्लिष्ट अनुभूति का और भी सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है। धर्म और प्रेम, पाप और पुण्य विश्व-सौन्दर्य और दार्शनिकता आदि एक दूसरे मे गुँथे हुए दिखलाई पडते हैं। तीव्रता और गहराई की दृष्टि से देखा जाय, तो सामान्यत राष्ट्रीय रचनाएँ ही सर्व प्रथम ध्यान आकृष्ट करती है। प्रेम-सबधी रचनाएँ गोपन-प्रवृत्ति के कारण उतनी तीव्र भावानुभूति पाठक के हृदय मे जागरित नही करती जितने तीव्र रूप मे वे कवि के हृदय मे उत्पन्न होती हैं। इस दोष से मुक्त कुछ रचनाएँ निस्सदेह तीव्रतम प्रेमानुभूति का परिचय देती है। पर ऐसी रचनाएँ इनी-गिनी ही हैं।

रस—

अनुभूति की विशुद्ध निर्विशेष अवस्था को आचार्यों ने रस-कोटि के अतर्गत परिगणित किया है। रस नौ माने गए है। माखनलालजी के काव्य मे शात, रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रसो का निरूपण नही हो सका है। वीर, शृगार, करुण, वात्सल्य और कुछ सीमा तक हास्य रस ही उनके काव्य मे स्थान पा सके हैं। सात्विक प्रवृत्तियो के कारण रौद्र,

भयानक एव वीभत्स रसो के लिए तो उनके काव्य-मदिर का द्वार बद रहा और जीवन के प्रति कर्मठ दृष्टिकोण होने के कारण वे विरक्तिमूलक शांति का उपदेश न दे सके। अन्य छायावादी कवियो के समान उनका दृष्टिकोण जीवन से पलायन नही रहा है। वे निर्जन मे भागने की इच्छा प्रकट नही करते, अपितु जीवन की धधकती हुई ज्वालाओ मे ही रस लेने की बात कहते है —

> मत बोलो बेरस की बातें रस उसका जिसकी तरुणाई।
> रस उसका जिसने सिर सौंपा आगी लगा भभूत रमाई॥

साराश यह कि, उनके काव्य मे शात रस भी उपलब्ध नहीं होता। इस निष्कासन-प्रक्रिया (Elimination process) के सपन्न हो जाने पर अब हम निश्चिंत होकर शेष रसो पर कुछ विचार कर सकते है।

वीर रस उनके काव्य का सर्व-प्रधान रस है। प्राचीन काल मे प्रमुख रूप से तीन प्रकार के वीर माने गए—दयावीर, दानवीर, और युद्धवीर। परतु आगे चल कर इनकी सख्या बढ चली और सत्यवीर, धर्मवीर, कर्मवीर आदि अनेक प्रकार के वीर भी माने जाने लगे। आधुनिक युग मे 'सत्याग्रही' वीर एक और नए प्रकार का वीर माना गया। प्राचीन काल मे वीर-रस प्रमुख रूप से युद्ध की भूमिका मे ही मिल सकता था। शत्रु आलबन होता था, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, उसे नष्ट करने के लिए नायक के हृदय मे उत्पन्न उत्साह स्थायी, गर्वादि सचारियो के द्वारा पुष्ट हो कर नायक की युद्धादि क्रियाओ मे व्यक्त होता हुआ वीर-रस की दशा तक पहुँच जाता था। इस युग मे उत्साह की व्यजना समाज और राष्ट्र की भाव-भूमि पर हुई। समाज और देश की सेवा मे प्राण तक दे देने का उत्साह इस युग के वीर-रस का स्थायी भाव बना। प्राचीन काल मे शत्रु के विरुद्ध प्रेरित उत्साह प्रमुख रूप से विध्वसात्मक था, अब वह उत्सर्ग-प्रधान हो गया, पहले वह हिंसात्मक था, अब अहिंसात्मक बन गया।

वीरता रक्त-स्नान मे नही, रक्तदान मे मानी जाने लगी। विदेशी शासन-सत्ता इसका आलबन बनी, उसके अत्याचार, शोषण आदि उद्दीपन हुए। रणभूमि मे तीर और तलवार चलाने वाले योद्धा के स्थान पर असहयोग का अस्त्र लेकर देश की विशालभूमि पर सेवा-निरत सत्याग्रही इसका आश्रय हुआ। देश की वर्तमान दीन-दशा पर ग्लानि, अमर्ष, बलि के पथ पर बढनेवालो को देख कर हर्ष, गर्व तथा उनका ही अनुकरण करने की अभिलाषा आदि सचारियो से पुष्ट होकर जागरण, आदोलन, जेल-गमन आदि क्रियाओ मे व्यक्त होता हुआ वह आधुनिक उत्साह वीर-रस की दशा को प्राप्त होता है। इस प्रकार हम देखते है कि आधुनिक वीर-भावना और प्राचीन वीर-भावना मे पर्याप्त अतर है। इस युग मे आकर वीरता प्रदर्शित करने की भूमि व्यापक हो गई, शारीरिक बल के स्थान पर आत्मिक बल की स्थापना हुई, सैनिक का स्थान सत्याग्रही ने लिया और वीर के हाथ से धातु-निर्मित अस्त्र न होकर, अहिंसा के बने हुए अस्त्र दिखलाई दिए। इस प्रकार वीरता का अर्थ ही बदल गया। अब वीरता मारने मे नही, मरने मे मानी जाने लगी।

माखनलालजी के काव्य मे आधुनिक वीर-रस ही प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है। परतु उसके सब अगो के दर्शन उनके काव्य मे नही होते। 'विभावानुभावव्यभिचारि सयोगाद्रसनिष्पत्ति' के अनुसार विभाव, अनुभाव तथा सचारी के सयोग से रस निष्पत्ति होती है। ये सब अग एक साथ उनमे नही दिखलाई पड़ते। आलबन स्पष्ट होते हुए भी उन्होने कही व्यक्त नही किया। आश्रय के रूप मे स्वय कवि सर्वत्र उपस्थित रहता है। यदि वे किसी राष्ट्रीय प्रबध-काव्य की रचना करते, तो उसका नायक आश्रय होता और कवि उसके माध्यम से परोक्ष रूप मे ही अपने भाव की अभिव्यक्ति कर पाता। परतु मुक्तक कवि होने के कारण वे प्रत्यक्ष रूप से भावाभिव्यक्ति कर देते है। उनकी वीर-भावना प्रमुख रूप से सचारियो पर आश्रित है। आचार्यो ने बतलाया है कि रस के किसी

एक अग का वर्णन कर देने से ही रसानुभूति होने लगती है। 'कामायनी' मे एक 'लज्जा' के वर्णन से ही शृ गार की सुन्दर व्यजना हुई है। माखन-लालजी के काव्य मे सचारियो का 'लज्जा' सर्ग जैसा पृथक् वर्णन तो नहीं, परतु उनकी विपुलता अवश्य है। उत्साह स्थायी की भी इनके काव्य मे कमी नही है, साथ ही वह इतना तीव्र भी है कि आवेग और उग्रता की सीमा तक पहुँच जाता है। अग्रेजो के अत्याचार, उनका व्यवहार, देश के सेवको को कारावास आदि उद्दीपनो का भी उन्होने स्थान-स्थान पर सकेत किया है। अब मैं इनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। 'सिपाहिनी' नामक कविता मे उत्साह की सुन्दर व्यजना हुई है --

किन्तु आज तो इस मुरली को रण-भेरी का डका कर लो,
या कर लो पानी वाली तलवार, उदार! मार लो—मर लो!
"जौहर" से बढ कर, घोडे पर चढ कर, जौहर दिखलाने दो,
चुडियॉ हो सुहागिनी, यौवन! यौवन अपनी पर आने दो!

इसी प्रकार प्रवेश नामक रचना मे भी जेल चलने के लिए युवको का आह्वान करते हुए कवि के हृदय मे उत्साह समाता नही--

जेल चल, जेल चल, जेल चल भाई
भारत के सत पर, मोहन के मत पर
जीवन के व्रत पर ठेल चल भाई
जेल चल, जेल चल, जेल चल भाई ॥

'तिलक' नामक रचना मे उद्दीपनो का बडा कौशल-पूर्ण सकेत किया गया है --

मै "मुँहबदी" का हार हिये, 'मत लिखो" कठिन ककण धारे,
"भारत रक्षा" के शूलो की पावो मे बेडी झनकारे।
"हथियार न लो" की हथकडियॉ, रौलट का हिय मे घाव लिये,
डायर से अपने लाल कटा, कहती थी, आँचल लाल किये।

इसमे 'मुँहबदी', 'मत लिखो', 'भारत रक्षा', 'हथियार न लो', रौलट, डायर सब मे विदेशियो के अत्याचार की एक-एक कहानी छिपी हुई है, जो वीरो के हृदय मे देश-सेवा की भावना को उद्दीप्त करती रही। कवि ने इन उद्दीपनो का उपमानवत् प्रयोग किया है।

अभिलाषा सचारी का यह उदाहरण तो अत्यन्त प्रसिद्ध है—

मुझे तोड लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावे वीर अनेक।
(अभिलाषा)

बलिपथियो की तद्रा को तोडने के लिए वे अधिकतर आवेगमयी भाषा का प्रयोग करते हैं—

फेंक तराजू रे बलि-पथी सिर के कैसे सौदे - सट्टे
बहुत किये मीठे मुँह जग के अब उठ आज दाँत कर खट्टे।
(आवेग)

और बलि-पथ से मुँह मोड़ने वाले तरुणो को सबोधित करते समय उग्र भी हो जाते हैं —

लाल चेहरा है नहीं—फिर लाल किसके ?
लाल खून नही ? अरे ककाल किसके ?
प्रेरणा सोयी कि आटा-दाल किसके ?
नेह की वाणी, कि हो आकाश वाणी,
धूल है जो जग नही पायी जवानी।
(उग्रता)

कष्ट सहने की तत्परता मे उनकी धृति की व्यजना हुई है :—

"बलि होने की परवाह नहीं, मै हूँ, कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता, जीता हूँ, माता के हाथ स्वराज्य रहे।"
(धृति)

सात्त्विक वीरता होने के कारण उसमे क्षमा की भावना भी दिखलाई पडती है —

'माता मेरे बधिकों का काली मर्दन कल्याण करें,
किसी समय उनके हृदयों मे मानवता का भाव भरें।'
(क्षमा)

'विद्रोह' नामक कविता मे गर्व व्यक्त हुआ है —

हर विपदा पर, हर प्रहार पर हमे उमड़ते देखो,
और सनसने तूफानों मे, हमे अकडते देखो।
फल फेंकेंगे कभी फूल भी फेंकेंगे हम भू पर,
विद्रोही—पर अपना मस्तक किये रहेंगे ऊपर।
(गर्व)

प्रयास करने पर और भी सचारियो को ढूंढा जा सकता है। इस प्रकार हम देखते है कि उनके वीर-काव्य मे सचारियो की प्रमुखता है। सचारियो का वर्णन करते समय या उद्दीपनो का उल्लेख करते समय आश्रय सर्वदा साथ रहा है। एक स्थल पर उन्होने वीर-रस के अनुभावो का भी वर्णन कर दिया है —

जो ओठों फड़क उट्ठा, नेत्र छाया बरसकर गाल पर जो तमतमाया
पिस उट्ठे दाँत, मुट्ठी बँधी, उठी, बस-सदा मैने उसीका गीत गाना गाया।

परतु यह उदाहरण रूप मे ही प्रस्तुत हो सका है। अहिंसा के अस्त्र का भी उन्होने अनेक स्थानो पर उल्लेख किया है। साराश यह कि, वे प्रमुख रूप से नव वीर-रस के कवि है और उनके काव्य मे इसके सब लक्षण मिलते है।

शृ गार-रस के दो प्रकारों मे से उनके काव्य मे विप्रलभ-शृ गार के दर्शन होते है। प्रासगिक उल्लेखो को छोड़कर सयोग-शृ गार का वर्णन या

चित्रण उन्होन नही किया। उनके शृ गार पर कुछ लिखते समय सबसे पहली बात जो ध्यान मे आती है, वह उनके आलबन की अस्पष्टता है। आलबन की अस्पष्टता के कारण एक समस्या उत्पन्न हो जाती है कि उनकी प्रेम-विषयक रचनाओ को विप्रलभ-शृ गार के अतर्गत लिया जाय या करुण-रस के अतर्गत। यदि इन रचनाओ का आलबन उनकी दिवगत धर्मपत्नी ही हैं, तो निस्सदेह ये रचनाएँ करुण-रस के अतर्गत आवेगी। परतु, यदि इन रचनाओ का आलबन कोई और व्यक्ति है, तो इन्हे वियोग-शृ गार के अतर्गत लिया जा सकता है। इन रचनाओ की शैली पर जब हम दृष्टिपात करते है तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये किसी मानी प्रिय के प्रति सबोधित हैं, जैसे—"बोल राजा स्वर अटूटे, मौन का कि अब बॉध टूटे।" परतु, उनका यह 'राजा' भगवान वामन की तीन डगो के समान आकाश, पृथ्वी और पाताल–तीन लोको की खबर लेता है। जहॉ वह आकाश की रहस्यात्मक सत्ता की ओर सकेत करता है, पृथ्वी की दिवगत पत्नी का बोध कराता है, वही मन के कोने मे छिपे हुए किसी दूसरे प्रिय की ओर भी इगित कर देता है। प्रथम और तृतीय अवस्था मे वह विप्रलभ और द्वितीय अवस्था मे करुण रस का आलबन होगा। उद्दीपनो की नियोजना इनके काव्य मे नही है। विप्रलभ-शृ गार पर लिखते समय कवियो ने उद्दीपनो का बडा विशद वर्णन किया है। तुलसी और जायसी जैसे प्रबध-कवियो ने तथा विद्यापति, सूरदास, मीरा आदि मुक्तक कवियो ने वियोग-वर्णन मे उद्दीपनो का बड़ा विशद और मनोरम चित्रण किया है। सामान्यत आधुनिक कवियो मे उद्दीपनो की यह परपरागत मनोरम, नियोजना नही दिखलाई पड़ती। कवियों ने प्रकृति का प्रतीकात्मक चित्रण किया। उसे मानव के सुख से सुखी और दुख से दुखी भी दिखलाया। यह प्रतीकात्मक और सवेदनात्मक प्रकृति-चित्रण उसके पूर्व उद्दीपन-रूप की पूर्ति न कर सका। दूसरे, माखनलालजी के

काव्य में प्रकृति को बहुत कम स्थान मिला है। उनके शृ गार काव्य मे न तो आलबन स्पष्ट है, न उद्दीपन का ही नियोजन है। वे प्रेमी की अनुभूति-मात्र का वर्णन करते है। इसमें तो कोइ सदेह नही कि यह अनुभूति अत्यत तीव्र है और कवि के जीवन से उसका सबध है। यदि यह कल्पनात्मक होती, तो इसमे इतनी तीव्रता और प्रखरता न आ पाती। परतु, कवि के हृदय मे वह जितनी तीव्र है उतनी ही तीव्रता के साथ वह पाठक तक नही पहुँच पाती। इसके कारण है। एक तो आलबन अस्पष्ट रहता है, दूसरे, कवि इस अनुभूति को वाग्विलास के भीतर छिपा कर और भी अस्पष्ट कर देता है। आलबन को अस्पष्ट रखने की प्रवृत्ति तो इस युग के कवियो की सामान्य विशेषता है और वाग्विलास माखनलालजी का अपना विशेष गुण। इन सब कारणों से उनके शृ गार पर स्पष्ट रूप से यही कहा जा सकता है कि वह अस्पष्ट है।

श्राद्ध-तिथियो पर लिखी हुई कुछ कविताएँ, जैसे—'वे तुम्हारे बोल' और 'भाई, छोडो नही, मुझे खुलकर रोने दो', करुण-रस के अतर्गत आती हैं। इनमे शोक स्थायी भाव है, मृत प्रिय आलबन है, 'यह पत्थर का हृदय आँसुओ से धोने दो' मे रुदन, 'चलो, सखे तुम चलो तुम्हारा कार्य चलाओ' मे प्रलाप, 'सिसक-सिसक सानद आज होगी श्री-पूजा' मे उच्छ्वास आदि अनुभाव है तथा 'पूजा के ये पुष्प गिरे जाते हैं नीचे, यह आँसू का स्रोत आज किसके पद सींचे' मे चिन्ता, 'वे तुम्हारे बोल ! वह तुम्हारा प्यार, चु बन, वह तुम्हारी स्नेह-सिहरन' मे स्मृति, 'दिखलाती, क्षणमात्र न आती, प्यारी प्रतिमा यह दुखिया किस भाति उसे भूतल पर खीचे !' मे दैन्य आदि सचारी भाव है। इन रचनाओ मे आलबन स्पष्ट है, अनुभाव और सचारियो की भी सम्यक योजना है। इसलिए इनमे रसानुभूति मे कोई बाधा नही आती। इनमे करुण-रस की सु दर निष्पत्ति हुई है।

भक्ति को कुछ आचार्यों ने रस के अंतर्गत परिगणित किया है और कुछ आचार्य उसे ईश्वर विषयक-रति कह कर शृगार-रस के अतर्गत ही मान लेते हैं। जो भी हो, आधुनिक युग मे भक्ति से सामान्य पाठक का तादात्म्य नही हो पाता। रस साधारणीकरण की अपेक्षा रखता है और भक्ति से सामान्य पाठक का साधारणीकरण होना असभव है। इसलिए विद्वानो ने भक्ति को पृथक् रस नही माना है। माखनलालजी के काव्य मे कुछ भक्ति-परक रचनाएँ है। परतु, इन भक्ति-परक रचनाओ मे भी आलबन की स्थिति निश्चित अथवा स्पष्ट नही है। कुछ रचनाएँ ऐसी है जिनमे भगवान राम का स्मरण किया गया है, कुछ रचनाओ मे नद नदन भगवान कृष्ण का आह्वान हुआ है और कुछ रचनाएँ ऐसी है जिनमे केवल 'आराध्य' के प्रति आत्मनिवेदन है। प्रारभिक रचनाओ मे भगवान राम और परवर्ती रचनाओ मे भगवान कृष्ण का अधिक स्मरण हुआ है। फिर भी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि उनकी भक्ति के आलबन भगवान राम है या भगवान कृष्ण है। क्योकि सभव है कि उनके राम कबीरदासजी के राम की तरह दशरथ-सुत न होकर अव्यक्त ब्रह्म के प्रतीक हो और इसी प्रकार कृष्ण भी। यह भी सभव है कि उनके 'आराध्य' निर्गुण निराकार न होकर सगुण साकार ईश्वर के प्रतीक हो, जिन्हे वे खिलौना बना कर गोदी मे खिलाना चाहते है। * तात्पर्य यह कि, उनकी भक्ति का आलबन निर्गुण और सगुण का विचित्र मिश्रण हो गया है, जो सबोधन मे सगुण होते हुए भी स्पष्ट रूप से सगुण नही है और सबोधन मे निर्गुण की ओर सकेत करते हुए भी स्पष्ट रूप से निर्गुण नही है। परिणाम स्वरूप भक्ति, किसी भी रस के अतर्गत परिगणित हो, भाव की अवस्था तक ही रह जाती है। उससे रसानुभूति नही हो पाती। आचार्यों ने इस दशा को भावोदय के नाम से पुकारा है।

*** अरे अशेष ! 'शेष' की गोदी तेरा बने बिछौना-सा !**
आ मेरे आराध्य ! खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना-सा !

कतिपय कविताओं मे माता के मन का चित्रण करने का प्रयास किया गया है। परतु, ये कविताएँ प्रयोगात्मक ही प्रतीत होती हैं। उनमे वात्सल्य का विदग्ध चित्रण नहीं, उदाहरण रूप मे प्रस्तुत किया हुआ शास्त्रीय विवेचन-सा मिलता है। भक्ति के समान वात्सल्य को भी आचार्यों ने नौ रसो मे स्थान नहीं दिया, पुत्र-विषयक-रति कह कर ही काम चला लिया है। परतु, सूर-सागर मे यशोदा ने मोहन की माता के रूप मे प्रकट होकर मातृ-हृदय को रति-पृथक् भाव का आश्रय मानने के लिए विवश कर दिया है। माखनलालजी की 'माता' शीर्षक रचना मे बौद्धिक चिन्तन अधिक है, हृदय का भावोद्वेलन कम। इससे अधिक मार्मिक तो असग्रहीत 'बेटी की बिदा' नामक रचना है, जिसमे पितृ-हृदय का बडा सु दर चित्रण हुआ है—

आज बेटी जा रही है,
मिलन और वियोग की
दुनियाँ अमोल बसा रही है।

*   *   *

गोदी के बरसों को
धीरे-धीरे भूल चली हो रानी
बचपन की मधुरीली कूको
के प्रतिकूल चली हो रानी

छोड जान्हवी कूल
नेह-धारा के कूल चली हो रानी
मैने झूला बाँधा है, अपने
घर भूल चली हो रानी,
मेरा गर्व समय के चरणों
पर, कितना बेबस लोटा है

मेरा वैभव प्रभु की आज्ञा
पर, कितना, कितना छोटा है ।

अतिम पद में दैन्य का कितना सु दर चित्रण हुआ है। इसी प्रकार एक 'नजर लग जावेगी' कविता मे भी माता की चिंता का तथा बालक की जिज्ञासा का सवादात्मक शैली मे बडा सु दर चित्रण हुआ है —

मॉ— लल्ला तू बाहर जा न कही
तू खेल यहीं रमना न कही
बेटा—क्यों मॉ ?
मॉ—डायन लख पायेंगी,
लाड़ले नजर लग जायेगी
बेटा—अम्मा ये नभ मे तारे है
किस मॉ के राज-दुलारे है ?

इसे पढकर श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की 'यशोधरा' के राहुल का स्मरण हो आता है। परतु, ऐसी अनेक सरस कविताओ का रसास्वादन उनके सग्रहो से नही किया जा सकता। ये रचनाएँ न जाने क्यो प्रकाशित नही की गई है ! जो रचनाएँ मातृहृदय के चित्रण क लिए प्रकाशित की गई है, वे इतनी विदग्ध और मर्मस्पर्शिनी नही है। तात्पर्य यह कि, कवि मे वात्सल्य चित्रण की क्षमता है, पर उसका अनुमान सग्रहो को पढ कर ही नही लगाया जा सकता।

कुछ व्यगात्मक कविताओ मे हास्य की झलक भी मिल जाती है। परतु, इन्हे हम हास्य के अतर्गत नही लेगे। क्योकि हास्य के मनोरजक तत्व की अपेक्षा इनमे आक्रामक तत्व अधिक है, हास्य की आनदविधायक विनोदी वृत्ति के स्थान पर असतोष की दु खमूलक वृत्ति काम करती है।

इस प्रकार प्रमुख रूप से माखनलालजी के काव्य मे वीर, शृंगार और करुण रसो की नियोजना हुई है। भक्ति और वात्सल्य को पृथक रस मान लेने पर, भक्ति और वात्सल्य की तथा व्यगात्मक रचनाओ मे यत्र-तत्र हास्य की नियोजना है। इनमे से कुछ रस भावकोटि तक ही रह गए हैं और कुछ रस-दशा तक पहुँच सके है।

माखनलालजी की रचनाओ मे अनेक स्थलो पर भावातर पाए जाते है। वे दो विरोधी रसो को एक स्थान पर लाकर रख देते है। एक भाव जब तक परिपुष्ट होते-होते रस दशा तक पहुँचने को होता है, तब तक वे दूसरे विरोधी भाव को लाकर उपस्थित कर देते है। उदाहरण के लिए —

नित्य ही बेचैन कारागार था,
रोज कैदी बन्द कर लाये गये,
कामिनी कहने लगी 'दिन चाह का।'
भामिनी बोली, 'हमारे ब्याह का।'
किन्तु यह दिन ब्याह का, यह गालियाँ,
जानती है सिर्फ 'झाँसीवालियाँ।'
या कि फिर मसूर-सा दूल्हा मिले,
मधुर यौवन-फूल शूली पर खिले।

उपर्युक्त दो पदो मे से प्रथम पद मे शृंगार की चर्चा की गई है। परतु, दूसरे पद के प्रारभ मे ही कवि ने 'किन्तु' का प्रहरी नियुक्त कर इस पद मे शृंगार का प्रवेश निषिद्ध कर दिया है। 'किन्तु' से यह सूचना मिल जाती है कि अब कोई दूसरी बात उठने वाली है। उपर्युक्त दूसरे पद मे जो बात उठी है वह उत्सर्गमूलक बलिदान की भावना है। पहले पद मे प्रेम की बेचैनी और दूसरे मे उत्सर्ग की उतावली दो बिलकुल दूसरी बातें है। पहली भावना उठते-उठते ही रह गई और दूसरी ने आकर उसे दबा दिया। इस प्रकार की स्थिति को आचार्यों ने भाव-शांति

के नाम से पुकारा है। 'जब एक भाव के उदय होते ही दूसरा भाव उदय होकर उससे प्रबल हो जाता है और उसे दबा लेता है' तब उसे भाव-शाति की अवस्था कहते है (साहित्यालोचन)। इस प्रकार के अनेक उदाहरण उनके काव्य से ढूँढे जा सकते है, क्योकि उनमे अनेक प्रकार के भावातर हुए है। भावोदय का उल्लेख मैने पहले कर दिया है। सच तो यह है कि उनका काव्य सरस अवश्य है, परतु सागोपाग रस से युक्त कम स्थलो पर ही बन पाया है।

छद—

काव्य-प्राण रस पर विचार कर लेने के उपरात अब हमे काव्य-रूपो (छदो) पर विचार करना है। उनके प्रारभिक काव्य के बहिरग पर विचार करते समय मै कह चुका हूँ कि वे छद-प्रयोग मे अधिक सजग नही है और न उन्होने विविध प्रकार के छदो का ही प्रयोग किया है। उनकी अनेक रचनाएँ ऐसी भी है जिनमे भावातिशयता के कारण प्रत्येक पद मे छद-परिवर्तन हुआ है। 'अधकार' शीर्षक कविता मे कवि १३-११ मात्रा के दोहा छद से प्रारभ करता है और १३-१६, १४-१६, १६-१६ मात्राओ के छदो का क्रमश भावानुरूप प्रयोग करता जाता है। 'बिदा' शीर्षक कविता मे भी पहले तो १६ १६ मात्रा के छद का प्रयोग हुआ है, परतु, अतिम छद मे आकर कवि उसे १२-१२ मात्रा के तोमर छद का रूप दे देता है। 'तरग-पाश' नामक कविता का १६-१२ मात्रा का सार छद क्रमश १४ १४ मात्रा के 'आँसू' छद का रूप धारण करने लगता है। साराश यह कि, भावावेग के अनुसार उनके छद परिवर्तन हो जाते हैं। फिर भी उन्होने कुछ छदो का प्रयोग किया है, जैसे कवित्त —

गो गण सँभाले नही जाते मतवाले नाथ,
दुपहर आई बर छाँह मे बिठाओ नेक।
वासना-विहग ब्रजवासियों के खेत चुगे
तालियाँ बजाओ आओ मिलके उडाओ नेक।

दंभ-दानवों ने कर-कर कूट टोने यह,
गोकुल उजाडा है गुपाल जू बसाओ नेक।
मन काली-मर्दन हो, मुदित गुवर्धन हो,
दर्द भरे उर-मधुपुर मे समाओ नेक।

इसी प्रकार 'माधव दिवाने हाव-भाव पै बिकाने' कविता का छद भी कवित्त ही है। वर्णिक वृत्तो मे भुजगप्रयात (हिमतरगिनी, पृ० ८६), स्रग्विणी (हिमतरगिनी, पृ० ४१) जैसे कुछ छदो का प्रयोग किया गया है। परतु, ऐसा प्रतीत होता है कि ये छद उर्दू के मा यम से ही कवि ने लिखे है। उस समय उर्दू की छद-शैली बडी लोक-प्रिय शैली रही है, अनेक हिन्दी-कवियो ने उसका प्रयोग किया है। माखनलालजी ने उर्दू-शब्दावली, वाक्य गठन आदि के साथ-साथ उर्दू छदो का भी हिन्दी मे उन्मुक्त प्रयोग किया। परतु, छद शास्त्र की छानबीन के पश्चात् हमे ज्ञात होता है कि उनमे से कई छन्द हमारे छदो से मिलते-जुलते छद है। उदाहरण के लिए—

तू ही है बहकते हुओं का इशारा,
तू ही है सिसकते हुओ का सहारा
तू ही है दुखी दिलजलों का हमारा
तू ही भटके भूलों का है धुर का तारा
जरा सीखचों मे समा' सा दिखा जा,
मै सुध खो चुकूँ, उससे कुछ पहले आ जा।

यह उर्दू का 'फ ऊ ल न फ ऊ ल न फ ऊ ल न फ ऊ ल न' छद है जो भुजगप्रयात छद से मिलता-जुलता है। इसी प्रकार निम्नाकित 'नित' छद की लय भी 'मुफ्त अलन मफाइलुन' की फारसी लय से मिलती है—

सजल गान, सजल तान
स-चमक चपला उठान,

गरज-घुमड, ठान-ठान
बिन्दु-विकल शीत-प्राण,
थोथे ये मोह-गीत
एक गीत एक गीत ।

'जिस ओर देखूँ बस अडी हो तेरी सूरत सामने' रचना की 'फायलातुन फायलातुन फायलातुन फायलातुन' धुन 'र त म य र' गणोवाले 'सीता' वर्णिक वृत्त से मिलती है । तात्पर्य यह कि, माखनलालजी के ऐसे छदो की लय उर्दू की ओर ही झुकी हुई है, परतु भारतीय छद-शास्त्र की व्यापकता के कारण उनका हिन्दी छदो मे भी अतभाव किया जा सकता है । उनकी 'मरण-ज्वार' शीर्षक रचना उर्दू की गजल-शैली का सु दर उदाहरण प्रस्तुत करती है —

तुम्हारे मेरे बीचोबीच
प्रणय का बँधा तार जो न हो ?
अरे हो जाय रुधिर बेस्वाद,
लाडला मरण-ज्वार जो न हो ?

यह १६ मात्रा का छद है जिसके द्वितीय और चतुर्थ चरण मे रगण (ऽ।ऽ) है । 'युग-तरुण से' शीर्षक रचना मे रुबाई-शैली के दर्शन भी हो जाते है —

घिसी-सी याद फेको जो न रस हो
मिलन कैसा जहाँ फीकी उकस हो
पता है, चुबनों का मूल्य सिर है ?
चढ़े सूली, उसे प्रभु का दरस हो ।

साराश यह है कि, उन पर उर्दू-छद-शैली का पर्याप्त प्रभाव है और उन्होने इस शैली का प्रयोग भी अपने काव्य मे किया है । परतु सबसे

अधिक उन्होने मात्रिक छदो का ही प्रयोग किया है। इनमे भी १६ मात्रावाले छद विशेष रूप से प्रयुक्त हुए है। सच पूछा जाय तो १६ मात्रा के—सम अथवा विषम—छदो मे ही हिन्दी की शक्ति व्यक्त हुई है। ये १६ मात्रा के छद ही हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल पडते है। आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने सस्कृत के वर्ण वृत्तो का हिन्दी मे प्रयोग करने के लिए आदेश दिया था और 'प्रिय-प्रवास' सस्कृत वर्ण-वृत्तो मे लिखा भी गया। परतु, सस्कृत के चिर सचित प्रचड पौरुष को वहन करनेवाले वर्ण वृत्तो का बोझ बाला खडी बोली सह न सकी, वह लडखडा गई। कदाचित प्रौढा बन कर वह उन्हे लेकर सरलता से चल सके। परतु, अभी तक उसने उस बोझ को पुन उठाने का प्रयास नही किया है। समासगुणापेक्षी वर्णवृत्त हिन्दी की विश्लिष्ट प्रकृति के अनुकूल है भी नही। द्विवेदी-युग छदो की दृष्टि से खडीबोली का प्रयोग-काल था। उसमे एक ओर तो सस्कृत के वर्णिक वृत्तो का प्रयोग हो रहा था, दूसरी ओर उर्दू के चौपदे, गजल आदि ग्रहण किए जा रहे थे। बँगला के पयारादि, अँग्रेजी की चतुर्दशपदियाँ तथा रीतिकालीन कवित्त सवैये सभी प्रकार के छन्दो का हिन्दी मे प्रयोग हो रहा था। परतु, खड़ी बोली काव्य के आरभ मे लोक-गीतो के रूप मे १५ मात्रा के चौबोला, चौपाई, १६ मात्रा के पदाकुलक, पद्धरि, अरिल्ल, चौपाई और १६—१४ की लावनी, १६--१५ के वीर (आल्हा का) छद अत्यधिक जन प्रचलित थे। इन्ही लोक-छदो ने काव्य मे नई शैली का प्रवर्तन किया। द्विवेदीजी ने इनका प्रयोग करने के लिए भी आदेश दिया था। ये ही आगे चल कर हिन्दी के अपने छद बन गए। समस्त छायावादी काव्य इन्ही १६ मात्रा के छदो के आवर्त विवर्त से परिपूर्ण दिखलाई पडता है। माखनलालजी ने भी इन्ही १६ मात्रा के छदो का सर्वाधिक प्रयोग किया है। चौपाई, अरिल्ल, पद्धरि, विष्णु-पद, सरसी,

सार, ताटक वीर, पद-पादाकुलक आदि छद इसी १६ मात्रा का परिवार है। माखनलालजी के काव्य मे यही परिवार फैला हुआ है। निष्कर्ष यह कि कतिपय उर्दू के छदो का प्रयोग करते हुए भी उन्होने हिन्दी के मात्रिक छदो का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है, परतु छद प्रयोग मे वे अधिक प्रयत्नशील नही रहे।

अलकार—

इसी प्रकार अलकारो का भी उनके काव्य मे बाहुल्य नही है। कतिपय इने-गिने अलकार ही यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए है। अलकारो की अथाह धारा मे उनके भाव-विचारादि शकुतला की मुद्रा के समान डूब नही जाते, वरन् भावो की अभग गगा पर सध्या समय छोडे हुए दो-चार दीपो के समान सुदर लगते है। उनके काव्य पर 'अलकारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्याना मत' लागू नही होता। इस दृष्टि से वे साहित्य दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ के अनुयायी प्रतीत होते है। साहित्य दर्पणकार के अनुसार अलकार शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म, शोभा को बढाने वाले, रसादि के उपकारक तथा अग के अलकारो की तरह होते है[१]। अर्थात् आचार्य विश्वनाथ अलकारो को काव्य का साधन मानते है, साध्य नही। वे रस-भावादि को प्रधान स्थान देते है और अलकारो को गौण। माखनलालजी के काव्य मे भी यही बात दिखलाई देती है। उनके काव्य मे अलकारो को प्रधानता नही मिली है। उनका काव्य भाव-प्रधान है, अलकार प्रधान नही। उनका अप्रस्तुत-विधान उनकी अनुभूति को स्पष्ट करने में सहायक ही हुआ, बाधक नही।

---

१ शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलकारास्तेऽङ्गदादिवत्॥
(साहित्य दर्पण)

यहाँ पर एक शका उठ सकती है कि जब उनके अल्प अलकार भी काव्यानुकूल है, तब उनके काव्य को बार-बार अस्पष्ट क्यो कहा गया है ? इसका उत्तर यही हो सकता है कि जहाँ तक अलकारो का सबध है, वे अस्पष्टता घटाते है, बढाते नही। अस्पष्टता का बहुत कुछ उत्तरदायित्व उनकी सूक्ति-प्रियता के सिर पर भी है।

शब्दालकारो मे यमक, श्लेष तथा अनुप्रास एव अर्थालकारो मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा प्रधान रूप मे तथा सदेह, अपन्हुति, उपमेयोपमा, मालोपमा, परिकराकुर आदि का एक-दो बार प्रयोग हुआ है। श्लिष्ट रूपक का प्रयोग भी उन्होने कइ बार किया है। अब मै इनमे से प्रत्येक के उदाहरण प्रस्तुत करूँगा। यमक-प्रयोग के विषय मे एक बात ध्यान देने योग्य है कि कवि अवसर पाते ही तुरत शब्द को पकड लेता है और यमक की सृष्टि हो जाती है। इसलिए इनके काव्य मे यमक का अनेक स्थलो पर प्रयोग हुआ है। अवसर पर यमक की उपेक्षा नही की गई है, परतु यमक के लिए अवसर की खोज भी नही हुई है। अलकारो के कतिपय उदाहरण ये है —

यमक—वे दो हाथ तुम्हारे मेरे प्रथम 'हार' के हार बनाकर
मिट कर आह प्राण रेखा से श्याम अक पर अक बनाता
बस इतना कहना मान तिलक! हम तेरे सिर पर तिलक करें
क्यों देते हो तुम 'दाग' दाग! पड जाय कहीं मत आँखो मे!
हरि को हीतल मे वद किए केहरि से क ह नख हूल-हूल

श्लेष—जब श्यामल घन आ जाते, तुझ पर जीवन ढुलकाते
तू स्वर्गंगा बन करके सुर लोक मही पर लाता

वृत्यानुप्रास—पर जो छद छद के छलिया जो तुम बद-बद के बदी
सौ-सौ सौगन्धो के साथी मैंने तुमको नहीं पुकारा

उपमा——मसल कर अपने इरादों-सी
उठाकर दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे
(मूर्त के लिए अमूर्त)

यह धीरज सतपुड़ा शिखर सा स्थिर हो गया हिंडोला
(अमूर्त के लिए मूर्त)

उपमेयोपमा——घड़ी झड़ी थी, झड़ी घड़ी थी

मालोपमा—चाहो सी, आहो सी, मनुहारो सी, मैं हूँ श्यामल श्यामल

रूपक——स्नेह-सिन्धु की नादों को सुन हृदय-हिमालय तज अपना
व्याकुल होकर दौड़ पड़ीं क्या ये दोनों गंगा जमुना ?
जिसकी साध-सुधा पाने को पखिनियाँ चाहों की चहकीं
उर-तरु की डाली-डाली में।
(सांग रूपक)

मेरे मानस में संकट के कंज शीष ऊँचा कर आए
(श्लिष्ट रूपक)

उत्प्रेक्षा——आशा ने जब अँगड़ाई ली विश्वास निगोड़ा जाग उठा
मानो पा, प्रात, पपीहे का जोड़ा प्रिय-बंधन त्याग उठा

अपन्हुति——ये न मग हैं, तव चरण की रेखियाँ हैं
शव धँस गये—नहीं जी शिव की और विष्णु की मूरत
क्या मुट्ठी भर हड्डियाँ ? नहीं ये अभिलाषायें राख हुईं।

संदेह——तेरा कल कल पीते हैं या, तेरा जल पीते हैं
हरि जाने स्वागत गाती हूँ या सौभाग बुलाती हूँ

परिकरांकुर——हे घनश्याम ! धधकते हीतल को शीतल कर दानी

विरोधाभास——कौन द्रुत-गति निज पराजय की विजय पर ?

ये ही कुछ अलकार है जिनका उन्होने अपने काव्य मे प्रयोग किया है। परतु, उनके अप्रस्तुत-विधान की कथा यही समाप्त नही हो जाती। छायावादी कवियो ने 'सामतयुगीन कविता की स्थूल अलकारप्रियता और एक ही प्रकार के अप्रस्तुतो की अशोभन आवृत्ति, का विरोध किया। वे परपराभक्त उपमानो के स्थान पर नए-नए क्षेत्रो से उपमानो का सग्रह करने लगे। अमूर्त अप्रस्तुत-विधान छायावादी कवियो की इस दिशा मे सबसे बडी देन कही जा सकती है। ये कवि सूक्ष्म मनोवृत्तियो के अगम देश से भी उपमान ढूँढ लाए, परतु नित्यप्रति के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की जलती हुई शिखाओ पर इनमे से अधिकाश की दृष्टि न जा सकी। माखनलालजी ने अमूर्त अप्रस्तुत-योजना भी दी (देखिए उपमा और मालोपमा के उदाहरण), परपरागत अलकारो मे 'मेरे मानस मे सकट के कज शीघ्र ऊँचा कर आए' तथा 'आज नयन के बँगले मे सकेत पाहुने आए री सखि' जैसी नई उद्भावनाएँ भी दी और सबसे बडी वस्तु नित्यप्रति के जीवन से उपमानो का चयन किया। 'पलको की चिक पर हृत्तल के फव्वारे', 'नवधा की नौ कोनेवाली' फ्रेम जैसे प्रयोगो से उन्होने साहित्य मे 'जीवन का अलाव' जगाया है। राष्ट्रीय घटनाओ का उपमान रूप मे ग्रहण पहले बतलाया जा चुका है।

प्रतीक—

इसी क्रम मे उनकी राष्ट्रीय प्रतीक-योजना पर भी दो शब्द कह दूँ। छायावादी कवियो ने अधिकतर प्रकृति से प्रतीको को ग्रहण किया है। प्रसादजी का 'झझा झकोर गर्जन था बिजली थी, नीरदमाला, पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला' छायावादी युग की प्रतीक-योजना का प्रतिनिधि पद कहा जा सकता है। प्रकृति के इन प्रतीको मे हृदय की कोमल भावनाएँ व्यक्त होती रही। परतु, विशाल राजनीतिक जीवन की झलक इन प्रतीको मे सभव न थी। आसेतु हिमाचल फैले हुए

विशाल देश की दु ख गाथा एव तज्जन्य प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लि उतने ही महान समर्थ प्रतीको की आवश्यकता थी। इसके लिए माखन लालजी ने पुराणो का प्रश्रय लिया। भागवत की कृष्णावतारी कथा के आधार पर उन्होने तत्कालीन राष्ट्रीय जीवन की अभिव्यक्ति की और इस प्रकार पौराणिक प्रतीकवाद को जन्म दिया। 'नि शस्त्र सेनानी' और 'जीवित जोश' शीर्षक रचनाओ मे पौराणिक प्रतीको का प्रचुर प्रयोग हुआ है। द्रौपदी भारतमाता बन गई और मोहन मोहनदास गाँधीजी हो गए[1]। गाँधीजी का सत्याग्रह सग्राम धर्म-युद्ध होने के कारण 'महाभारत' बन गया। दुष्ट शासको ने दु शासन का काम किया तथा सत्य की ओर से नि शस्त्र लड़नेवाले भगवान कृष्ण गाँधीजी के प्रतीक बन गए[2]। कृष्ण के जन्म स्थल कारागार बन गए[3] तथा वसुदेव देवकी उन कारागारो के कैदी हो गए[4]। इसके अतिरिक्त सूली पर चढनेवाले शहीदो के लिए वे ईसा और मसूर का प्रयोग भी करते है। राष्ट्रीय जीवन की सवेदनाएँ इन चिर-परिचित प्रिय पौराणिक प्रतीको मे बड़ी तीव्र और मार्मिक हो गई है। 'राम नवमी' शीर्षक रचनाओ मे उन्होने रामावतार के पात्रो का भी प्रतीक रूप मे प्रयोग किया है। यह पौराणिक प्रतीकवाद जहाँ एक ओर उनकी धार्मिक मनोवृत्ति का सूचक है, वही दूसरी ओर यह उनकी हिन्दी-साहित्य को एक बड़ी देन भी है।

---

१. द्रौपदी भारत माँ का चीर बढाने दौडे यह महराज,
मान ले, तो पहनाने लगूँ मोर-पखों का प्यारा ताज।

२. उधर वे दु शासन के बन्धु, युद्ध-भिक्षा की झोली हाथ
इधर ये धर्म-बन्धु, नय-सिन्धु, शस्त्र लो, कहते हैं—'दो साथ।'

३. 'प्यार !'—उन हथकड़ियो से और कृष्ण के जन्म-स्थल से प्यार।

४. देश के वदनीय वसुदेव, कष्ट मे ले न किसी की ओट
देवकी माताएँ हों साथ—पदों पर जाऊँगा मै लोट !

सिन्धु, नाविक और पतवार के भक्तियुगीन प्रतीकों को भी उन्होंने राष्ट्रीय द्युति से दीप्त कर दिया है। आवेश की स्थिति मे वे कर्तव्य का झूठा राग अलापनेवाले के लिए 'काग' तथा प्रेम के नाम पर रोनेवाले असमर्थ कवियों के लिए 'भिनभिनाती मक्खियाँ' जैसे प्रयोग भी कर देते हैं। मोती का प्रयोग उन्होंने पानी की बूदो एव आँसुओ के लिए किया है, जैसे—'तुझमे प्रमाद मे प्यारे ठंडे मोती लेते हैं' मे मोती पानी की बूँदो के लिए आया है तथा 'आहा ! कैसे गिरे सीपियो से ये गरम-गरम मोती' मे मोती आँसुओ के लिए आया है। तारो के लिए वे दीप का भी प्रयोग करते है, जैसे——'नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी।' उनके प्रेम-राज्य का 'राजा' भी एक प्रतीक ही है, जिसके विषय मे पहले उल्लेख हो चुका है। रहस्यात्मक रचनाओ मे उन्होंने 'मित्र' और 'पकज', 'चद्र' और 'चकोर' जैसे प्रतीको का प्रयोग किया है। परतु, उनका काव्य प्रतीक प्रधान नही है। प्रतीको का वे प्रयोग करते है, पर कम।

भाषा—

कवि की भाषा के सबध मे पहले कही हुई बातो को दुहराना नही है। प्रारभिक काव्य मे ही उनकी भाषा का स्वरूप निश्चित हो चुका था। वही पूर्व-निश्चित स्वरूप आगे चल कर भी दिखलाइ पडता है। अरबी-फारसी के शब्दो का वह निस्सकोच प्रयोग, वही बोलचाल के शब्दो की स्वाभाविक रुझान और ग्रामीण तथा देशज शब्दो का वही सहज सौन्दर्य उनके प्रौढ काव्य मे भी पूर्ववत् बना रहा। साराश यह कि, भाषा-प्रयोग मे कोई विकास नही हुआ, पूर्व-प्रयोगो की ही पुष्टि और व्याप्ति होती रही। परतु, जो छायावादी कवि द्विवेदी-युग मे भाषा के नव-नव प्रयोग कर रहे थे, वे उन प्रयोगो को पुष्ट ही नही करते रहे, उनसे भी आगे बढ गए। उनकी भाषा मे ओज है, प्रवाह है और सरसता भी है। परतु, प्रसादजी की भाषा मे जो प्रशात गाभीर्य आया, निरालाजी की भाषा मे जो प्रचड पौरुष दिख-

लाई पडा, पतजी की भाषा मे जो मसृणता विकसित हुई वह इनकी भाषा मे न हो सका। भाषा का वे एक माप-दड स्थिर कर चुके थे, उसके ही अनुसार अत तक चलते रहे। इस दृष्टि से जहाँ उनकी भाषा छाया-वादी कवियो की भाषा से भिन्न है, वहाँ एक दृष्टि से वह इस युग की भाषा के समान भी है। भाषा सबधी अराजकता मे उनकी भाषा छायावादी कवियो की भाषा से भी अधिक प्रगतिशील है। छायावादी कवियो ने आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी के भाषा सबधी निर्देशो को नही माना। समर्थ कवियो ने सकारण व्याकरण के नियमो का उल्लघन किया। पतजी ने 'प्रभात' का स्त्रीलिंग मे और 'बूँद', 'कपन' आदि शब्दो का उभय-लिंग मे प्रयोग किया और उसके लिए कारण भी प्रस्तुत किया[1]। परतु, कुछ कवि अज्ञानवश ही व्याकरण के नियमो को तोडते रहे। फलत: अनेक दोषो के साथ ही वर्ण्य विषय भी दुर्बोध होने लगा। माखन-लालजी के काव्य मे अनेक दुर्बोध स्थलो का एक कारण यह भी कहा जा सकता है। 'कैदी और कोकिला' नामक प्रसिद्ध रचना की एक पक्ति है—'हिमकर निराश कर गयी रात भी काली।' इस पक्ति का अर्थ स्पष्ट नही होता। यदि हम इसका अर्थ करते है कि हिमकर ने काली रात को निराश कर दिया, तो 'गयी' के प्रयोग से इसमे लिग दोष होगा। यदि हम इसका अर्थ करे कि काली रात ने हिमकर को निराश कर दिया, तो हिमकर और निराश के मध्य मे कर्म-

---

१ "मैंने अपनी रचनाओं में, कारण वश, व्याकरण की लोहे की कड़ियाँ तोड़ी है—मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दो को स्त्रीलिंग-पुल्लिग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। प्रभात और प्रभात के पर्यायवाची शब्दो का चित्र मेरे सामने स्त्रीलिंग मे ही आता है 'बूँद', 'कपन' आदि शब्दो का प्रयोग मै उभयलिंग मे करता हूँ, जहाँ छोटी-सी बूँद हो वहाँ स्त्रीलिंग जहाँ बड़ी हो वहाँ पुल्लिग।"

कारक की विभक्ति 'को' के न होने से इसमे न्यूनपदत्व दोष होगा। स्पष्ट है कि सदोष पक्ति कितनी अस्पष्ट हो गई है। उनकी नवीनतम सन् १९५३ की रचना मे भी 'वग के शूली पर चढते शीशो के दान' जैसे प्रयोग हैं। 'किन बिगड़ी घड़ियो मे झाँका तुझे झाँकना पाप हुआ' मे 'झाँकना' क्रिया का प्रयोग 'देखना' के लिए हुआ है। 'हृदय की पग-डडियो की राह की' मे पुनरुक्ति हुई है। स्थवक का त्रबक, औषधि का ओषध जैसे प्रयोगो मे तोड और ऊग, जूआ, कूआ, दूखता मे जोड किया गया है। इसे आचार्यो ने च्युतसस्कृति दोष कहा है। साराश यही है कि उनकी भाषा सुव्यवस्थित नहीं है। फिर भी उसके मीठे प्रभाव को विस्मृत नही किया जा सकता। बोलचाल के निगोड़ा, अलाव, ठिठोली जैसे शब्द भुलाए नही भूलते। मुहाविरो का भी उन्होने खूब प्रयोग किया है। 'छोड चले ले कुटिया तेरी, यह लुटिया डोरी ले अपनी, फिर वह पापड़ नहीं वेलने फिर वह माला पड़े न जपनी' जैसे पद मे अनेक मुहाविरे गूँथ दिए गए है। अरबी-फारसी के कतिपय अप्रचलित कमख्वाब तकसीर जैसे शब्दो को छोड़ कर, जो शब्द उन्होने ग्रहण किए है, वे उनके काव्य की रस-वृद्धि ही करते है। पतजी के समान उन्होने भाषा की पच्चीकारी नही की, इसलिए उनके काव्य मे दो-चार स्थलो को छोड़ कर शब्द-सगीतादि दृष्टिगत नही होते। परतु, उनकी उद्‌बोधन-प्रधान एव राष्ट्रीय रचनाओ मे ओज की जो अदम्य धारा है, वह किसी भी छायावादी कवि के काव्य मे देखने को नही मिलती। उनकी भाषा मे छायावादी लाक्षणिकता भी है। परतु, लाक्षणिकता उनकी भाषा का सामान्य गुण नही है। माखनलालजी अपनी भाषा के निर्माता और प्रयोक्ता दोनो ही रहे। अपनी भाषा का निर्माण उन्होने स्वय किया है और उसके प्रयोग पर वे आज तक अटल रहे है। आज भिन्न-भिन्न भाषाओ से शब्द-ग्रहण कर हिन्दी को अधिकाधिक व्यजक और व्यापक बनाने की पुकार उठ रही है उसे जन भाषा के अत्यधिक निकट लाने

का प्रयास किया जा रहा है, उसमे बोलचाल के और ग्रामीण शब्दो को भी स्थान दिया जा रहा है। यदि हम थोड़ा सा विचार करें तो इन विशेषताओ से सयुक्त भाषा माखनलालजी ने आज से वर्षों पहले दे दी थी। हमारी भाषा न तो 'हिमगिरि के उत्तुग शिखर' की ऊँचाई पर खडी हो सकती है, न 'उन्मन उन्मन गुजन' करना चाहती है, न 'शीतलच्छाय सास्कृतिक सूर्य' की ओर आँख उठा सकती है और न 'झिलमिल तारो की जाली' मे ही उलझना चाहती है। आज वह 'कोटि कोटि हृदयो मे धमनी' बन कर धडकने के लिए उतावली हो रही है। माखनलालजी ने यही अतिम भाषा दी है।

सूक्तिप्रियता—

माखनलालजी को सूक्तिप्रिय कवि कहा गया है। पडित नददुलारे जी वाजपेयी के शब्दो मे—"'भारतीय आत्मा' को मैने सूक्तिप्रधान कवि कहा है। उनकी सूक्तियो मे उपदेशात्मकता कारण नही है, भावना का अतिरेक ही कारण है।" यहाँ सूक्तियो का तात्पर्य है कि जहाँ पर पाठक की दृष्टि उक्ति के आकर्षण मे उलझ कर रह जाती है, जहाँ पाठक का ध्यान कथन के ढग पर पहले जाता है, भावना पर बाद मे, जहाँ वाक्य के विचित्र विन्यास पर दृष्टि जाकर अटक जाती है, जहाँ कवि की सूझ आकर्षण का केन्द्र बन जाती है। वाजपेयीजी ने उन्हे 'हिन्दी मे उर्दू काव्य-शैली का प्रतिनिधि' कहा है और 'उनके मुक्तको का निर्माण और तैयारी टकसाली उर्दू कवियो की-सी' बतलाई है। यह टकसाली ढग का निर्माण और तैयारी ही इस सूक्तिप्रियता के मूल मे दिखलाई पडती है। उदाहरण के लिए निम्नाकित पद लिया जा सकता है—,

कितनी दूरी ?
कि इतनी दूरी।

ऊगे भले प्रभाकर मेरे,
क्यों ऊगे ? जी पहुँच न पाता
यह अभाग अब किससे खेले ?
मेरा कौन कसाला झेले ?

उपर्युक्त पद मे वाक्य की तोड-मरोड़, प्रश्नोत्तर आदि मे उर्दू की 'तर्जेअदा' का प्रभाव दिखलाई पडता है। उर्दू की यह शैली उनके काव्य का सामान्य गुण कही जा सकती है। भावातिशयता ने भी उनके काव्य मे निश्चय ही अनेक सूक्तियो का सृजन किया है। 'किन बिगडी घडियो मे झाँका ? तुझे झाँकना पाप हुआ, आग लगे,—वरदान निगोडा मुझ पर आकर शाप हुआ !' मे उर्दू का वाक्य-विन्यास और भावातिशयता दोनो ही उपस्थित हो गए है। फलस्वरूप यह पूरा पद एक सूक्ति-सा बन गया है, साथ ही 'निगोड़ा' आकर उसे और भी चोखा बना देता है। शुद्ध भावातिरेक-जन्य सूक्तियो का एक उदाहरण यह है —

पर जो छद्-छद् के छलिया ओ तुम, बद्-बद् के बदी,
सौ-सौ सौगन्धों के साथी मैने तुमको नही पुकारा।

× × ×

पर ओ खेल-खेल के साथी, बैरन नेह्-जेल के साथी,
निज तसवीर मिटा देने मे ऑखों की उडेल के साथी,
स्मृति के जादू भरे पराजय ! मैने तुमको नहीं पुकारा !

उपर्युक्त उद्धरण मे निस्सदेह भावना का प्रवाह बड़ा तीव्र है, परतु, उसको व्यक्त करने का ढग उससे भी अधिक आकर्षक है। 'छद-छद के छलिया', 'बद-बद के बदी', 'सौ-सौ सौगन्धो के साथी' की मधुर गूँज मे भावना डूब जाती है। उनके काव्य से ऐसे अनेक पदो का सग्रह किया जा सकता है। एक विशिष्ट सूक्तिप्रियता उनकी विचित्र सूझो मे भी

झलकती है। उदाहरण के लिए—'समय सूली सा टँगा था, बोल खूँटी से लगे थे' मे कवि की नई सूझ पर ही पहले ध्यान जाता है। 'तेरी बाट देखूँ, चने तो चुगा जा, हैं फैले हुए पर, उन्हे कर लगा जा' तथा 'गुनो की पहुँच के परे के कुओ मे मै डूबा हुआ हूँ जुडी बाजुओ मे' जैसे प्रयोग सूझो की गहराई के कारण समझ की पकड मे बडी देर से आते हैं। इस तथाकथित सूक्तिप्रियता के कारण उनकी अनेक रचनाएँ अस्पष्ट और दुरूह हो गई है। इससे उनके काव्य मे जटिलता का सचार हुआ है और उसका स्वाभाविक प्रवाह क्षीण हो गया है। कोरी उपदेशात्मक सूक्तियाँ उन्होने नही लिखी है। उनकी अधिकाश सूक्तियाँ तीव्र भावावेग मे उत्पन्न हुई है और कुछ सूझो का प्रसाद है।

काव्य शैली—

उनके काव्य के रस, छद, अलकारादि पर दृष्टिपात कर लेने के उपरात अब उनकी काव्य शैली पर भी कुछ विचार करना है। छायावादी कवियो की शैली लाक्षणिकता प्रधान, अमूर्त अप्रस्तुत विधानयुक्त चित्रात्मक भाषा को लेकर चली थी। माखनलालजी की शैली मे भी ये विशेषताएँ बहुत पहले ही दिखलाई पड़ने लगी थी। आगे चल कर उनके काव्य मे अधिकाधिक बढती ही गईं। दिनकर जी के मत से इन विशेषताओ का प्रारभ और प्रौढतम स्वरूप माखनलालजी के काव्य में ही मिलता है। लाक्षणिकता के दर्शन इनकी सन् तेरह की रचनाओ मे ही होने लगे थे। सन् सोलह की 'राम-नवमी' कविता का उल्लेख पहले ही हो चुका है। प्रौढ काव्य मे भी इस लाक्षणिकता का उन्होने प्रचुर परिमाण मे प्रयोग किया, यथा—

(१) दूबों के आँसू धोती रवि-किरनों पर मोती बिखराती
विन्ध्या के झरनों पर

(२) फिर कुहू ? अरे क्या बन्द न होगा गाना ? इस अधकार
मे मधुराई दफनाना ?

(३) जी उठी निराशाओं के लिखने की आशा

(४) आशा ने जब ॲगडाई ली विश्वास निगोडा जाग उठा

(५) मैने देखा था, कलिका के कठ कालिमा देते
मैने देखा था फूलों मे उसको चुबन लेते

उपयुक्त उद्धरणो मे दूबो के आॅसुओ का धोया जाना, मधुराई का दफनाना, निराशाओ का जी उठना, आशा का ॲगड़ाइ लेना, निगोड़े विश्वास का जाग उठना, कली के कठ मे कालिमा देना, फूलो का चु बन लेना, आदि प्रयोग लाक्षणिक है। प्रथम उद्धरण मे, दूब कोई विरह-विदग्धा रोती हुई मानवी नायिका नही है, वह निर्जीव पदार्थ है। इसी प्रकार रवि-किरणें भी बर्त्तन माॅजने वाली बरौनियाॅ नही है, जो किसी पात्र को धोती हो। इसलिए 'दूबो के आॅसू धोती रवि-किरनो पर' मे मुख्यार्थ का बोध होता है। परतु, इससे दूबो पर पडे हुए ओस-बिन्दुओ को सुखाती हुई रवि-किरणो की प्रतीति अवश्य होती है। मुख्यार्थ के बोध के साथ ही जिस शक्ति के द्वारा इस अन्यार्थ की प्रतीति हुई, वह लक्षणा-शक्ति है। आँसुओ और ओस-बिन्दुओ मे तथा धोने मे और सुखाने मे साम्य है। इसलिए उपयुक्त उद्धरण लक्षणा का उदाहरण है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणो की भी व्याख्या की जा सकती है।

छायावादी कवियो ने कतिपय पाश्चात्य अलकारो का अपने काव्य में प्रयोग किया है। विशेषण-विपर्यय (Transferred epithet) मानवीकरण (Personification) ध्वन्यात्मकता (Onomatopoeia) आदि अलंकार पश्चिम के प्रभाव स्वरूप ही ग्रहण किए गए हैं। विशेषण विपर्यय यद्यपि लाक्षणिकता के अतर्गत समाविष्ट किया जा सकता

है, परतु कवियो ने उसे पश्चिमी शैली के अनुकरण के रूप मे ही स्वीकार किया है। 'थके हुए दिन के निराशा भरे जीवन की' तथा 'बच्चो के तुतले भय सी' मे थके हुए दिन तथा तुतले भय विशेषण-विपर्यय के प्रयोग हैं। ऐसे प्रयोग माखनलालजी ने भी खूब किए है, यथा—

(१) मेरी गरीब करुणा पर वे मस्तक डोल न पाते
(२) क्या लुटा ? मृदुल वैभव की रखवाली-सी
(३) डगमगी मुक्ति की धारा मे यो बढते
(४) बलि के कपन मे आती जो भटकी हुई मिठास
(५) ऊषा यह तारों की समाधि यह बिछुडन की जगमगी व्याधि

उपर्युक्त उद्धरणो मे गरीब करुणा, मृदुल वैभव, डगमगी मुक्ति, भटकी हुई मिठास, जगमगी व्याधि आदि प्रयोग विशेषण विपर्यय के परिचायक हैं। माखनलालजी के काव्य मे इनका खूब प्रयोग हुआ है। उनके काव्य से ऐसे अनेक उदाहरण एकत्र किए जा सकते है।

मानवीकरण (Personification) शैली की अपेक्षा दृष्टिकोण ही अधिक है। सर्वात्मवादी दर्शन के प्रभाव से कवियो ने निर्जीव पदार्थों को भी मानव के रूप में देखा और उन पर मानवी क्रिया-कलापो का आरोप किया। छायावाद के सभी कवियों मे यह प्रवृत्ति पाई जाती है। निर्जीव पदार्थ ही नहीं मनोवृत्तियो का भी कवियो ने मानवीकरण कर दिया। प्रसाद जी की 'कामायनी' मे 'लज्जा' मनोवृत्ति एक पात्र के रूप मे उपस्थित की गई है। श्रद्धा, इड़ा आदि पात्र भी मनोवृत्तियो के प्रतीक हैं। पतजी ने भी 'छाया' जैसी सूक्ष्म तथा निर्जीव वस्तु का साकार मानवी के रूप मे चित्रण किया है और निराला जी ने भी 'जुही की कली' को एक नायिका का रूप दे दिया है। साराश यह कि, मानवीकरण छायावादी कवियो की एक सामान्य विशेषता है। माखनलालजी ने भी इसका प्रयोग किया है, परतु अन्य कवियो की अपेक्षा कम। प्रकृति

के सौन्दर्य की ओर उनकी दृष्टि वैसे ही कम गई है, फिर इस विशिष्ट दृष्टिकोण को लेकर तो और भी कम। 'अधकार लेकर जब उतरी नव परिणीता राका-रानी' जैसे प्रयोग उनके काव्य मे अधिक नही है। 'आशा ने जब अँगडाई ली विश्वास निगोडा जाग उठा' मे मनोवृत्तियो का मानवीकरण हुआ है, जिसका उल्लेख मैंने लाक्षणिकता के उदाहरण-रूप मे भी किया है। परतु, इस प्रकार के प्रयोग भी उनमे कम ही मिलते है।

ध्वन्यात्मकता या ऑनोमोटोपोइया का प्रयास उन्होने कतिपय स्थलो पर किया है। उदाहरण के लिए निम्नाकित पंक्तियाँ ली जा सकती हैं —–

(१) तपन, लूह, घन गरजन, बरसन चुम्बन, दृग-जल, घन-आकर्षण

(२) घडी झडी थी, झडी घडी थी, गरजन, बरसन, पकिल मगजल

(३) खेल गगन मे सजनि! रमन से विश्व-विमोहन फाग री!

परतु ये प्रयोग प्रयोग ही हैं। ध्वन्यात्मकता उनके काव्य मे अधिक नहीं है। चित्रात्मक भाषा के पीछे वे अधिक नही पडे है। छायावादी कवियो मे इस दिशा मे मसृण भाषा पतजी के काव्य मे और ओजमयी भाषा निरालाजी के काव्य मे सर्वाधिक रूप मे प्रयुक्त हुई है। इन कवियो ने भाषा को चित्रमयी बनाने के लिए बड़ा श्रम किया है। भाषा-परिष्कार की इस दिशा मे माखनलालजी ने अधिक सहयोग नही दिया।

विरोधाभास का प्रयोग भी सामान्य रूप से सभी छायावादी कवियो ने किया है। यह एक अलकार भी है और लाक्षणिक शैली भी। 'शीतल ज्वाला जलती है, ईधन होता दृग-जल का' मे 'शीतल ज्वाला इसी प्रकार का प्रयोग है। माखनलालजी को यह शैली बड़ी प्रिय है। गद्य और पद्य दोनो मे उन्होने समान रूप से इसका प्रयोग किया है।

कभी कभी तो वे रचनाओ के शीर्षक तक इसी शैली से सयुक्त कर रख देते हैं। विरोधाभास के कतिपय उद्धरण ये है—

(१) खोने को पाने आये हो
(२) जो पख वायु से जग न उठे यों ठडी मेरी आग कहाँ ?
(३) शीतल अगारों से क्यों विश्व जलाने जाते हो ?
(४) चुपचाप मधुर विद्रोह बीज इस भाँति बो रहा क्यो हो ?
(५) सुलझन की उलझन है, कैसी दीवानी, दीवानी !

इन उदाहरणो मे खोने को पाने, ठडी आग, शीतल अगारे, मधुर विद्रोह-बीज, सुलझन की उलझन विरोधाभास के प्रयोग है। लाक्षणिकता के ही समान विरोध-शैली का भी उन्होंने खूब प्रयोग किया है।

इस प्रकार हमने देखा कि उनकी शैली मे लाक्षणिकता, विशेषण-विपर्यय तथा विरोधाभास की प्रधानता है और ध्वन्यात्मकता मानवीकरण आदि का प्रयोग उन्होंने कम किया है। उर्दू शैली का प्रभाव भी उनके वाक्य-विन्यास पर स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ता है जिसमे भावानुरूप वाक्य की तोड़-मरोड़ और एक विशिष्ट नाटकीयता का सन्निवेश हुआ है। इसी विशिष्टता के कारण उन्हे 'हिन्दी मे उर्दू शैली का प्रतिनिधि' कहा गया है। भाषा चित्रमयी तो कम ही स्थलो पर है, परतु अपनी ओजस्विता में वह सफल है। उनकी राष्ट्रीय और उद्बोधनात्मक रचनाओ मे जो ओज भरा हुआ है वह हिन्दी-साहित्य मे बहुत कम कवियो की रचनाओ मे आ पाया है। जिस समय कवि भावावेश मे आ गया है, उस समय भावावेश के साथ ही भाषा की व्यंजकता भी अधिकाधिक बढती गई है। भावावेश के चरम क्षणो मे उनकी शैली मे लाक्षणिकता व्यजकता, वक्रता और न जाने क्या-क्या आ गया है। शब्द-चयन द्वारा काव्य को कर्ण-सुखद बनाने की प्रवृत्ति उनकी नही है, फिर भी उनकी भाषा कोमल है, कर्ण-कटु नहीं। उनकी भाषा-शैली मसृण नही, मधुर

है, जिसमे आयास नही, सहजोन्मेष है। भाव-साम्य या प्रभाव-साम्य के आधार पर भी उन्होने अप्रस्तुतों की योजना की है। जहाँ भाव-साम्य दूर तक चलता हुआ दिखलाई पड़ता है वहाँ कवि प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग करने लगता है। 'विद्रोही' कविता इसी प्रकार की रचना है। इसमे कवि ने विद्रोही और वृक्ष मे दूर तक समानता देख कर वृक्ष को विद्रोही के प्रतीक रूप मे उपस्थित कर दिया है। आवेशाविक्य के अवसरो पर कवि कभी कभी वाग्विलास मे भी उलझ गया है। ऐसे अवसरो पर उसमे यदा-कदा वैचित्र्य-प्रदर्शन की उत्सुकता जागरित हो जाती है। परतु, इस उत्सुकता का परिणाम यह होता है कि वे स्थल अस्पष्ट से होने लगते है। कभी-कभी एक देशीय, सूक्ष्म और धुँधले अप्रस्तुतो के कारण भी रचनाएँ समझ मे नही आती। कतिपय स्थल ऐसे है जिनमे मध्याह्न की छाया-सी नितात सकीर्ण समास-पद्धति का प्रयोग हुआ है। ऐसे स्थल भी अच्छी खासी पहेली बन जाते है। उदाहरण के लिए निम्नाकित पद लिया जा सकता है—

देरी, दूरी, द्वार द्वार, पथ-बद
न रोको श्याम इसी मे।

फिर भी उनकी शैली मे आकर्षण है। पाठक अनेक स्थलो पर न समझते हुए भी कुछ समझता चलता है और जहाँ समझ जाता है वहाँ मुग्ध हुए बिना नही रहता। उनकी शैली में ओज है, आकर्षण है, नाटकीयता है और साथ ही साथ अस्पष्टता भी। 'Style is the man' (शैली ही मनुष्य है) की उक्ति के अनुसार उनकी शैली उनकी अपनी है, उस पर उनके व्यक्तित्व की छाप है। प्रत्येक बड़े कवि के समान उनकी शैली भी छिपती नही है।

बौद्धिक भूमि—

आधुनिक काव्य मे बौद्धिक भूमि की प्रधानता है। प्रत्येक कवि एक

विशिष्ट दृष्टिकोण और विचार-धारा को लेकर चलता है। रहस्यवादी कविता हो या छायावादी, प्रगतिवादी हो या गाँधीवादी, उसके पीछे कोई न कोई विशिष्ट विचार-धारा या बौद्धिक भूमि विद्यमान रहती है। माखनलालजी के काव्य मे राष्ट्रीय चेतना बौद्धिक भूमि के साथ मिल कर अभिव्यक्त हुई है। यह बौद्धिक भूमि ऐसी कविताओ मे स्पष्ट रूप से दिखलाई पडती है जिनमे कवि ने राजनीतिक परिस्थितियो का विश्लेषण किया है, अथवा ऐसी रचनाओ मे जिनमे कवि ने राजनीतिक परिस्थितियो और सामाजिक सुषुप्ति आदि पर व्यग किया है। कई कविताएँ बौद्धिक प्रक्रिया के फलस्वरूप ही लिखी गई है। उदाहरण के लिए 'माता' शीर्षक कविता मे कवि ने मातृ-हृदय का विश्लेषण किया है, चित्रण नही। यह कविता स्पष्ट ही बौद्धिकता से बोझिल है, अनुभूति की तीव्रता से मार्मिक नही। 'कौन तुम्हारी बाते खोले?' 'तू ही क्या समदर्शी भगवान?' रचनाएँ भी विचारात्मक है। एक दूसरे प्रकार की बौद्धिक सजगता उनके वाग्वैदग्ध्य- उक्ति वैचित्र्य आदि मे मिलती है। ये भी बौद्धिक स्तर के ही परिचायक है। जहाँ कही वाक्-चातुर्य और अनुभूति मे गठ-बधन हो सका है, वहाँ काव्य मार्मिक बन गया है, जहाँ यह गठ-बधन नही हो सका, काव्य मे जड़ता आ गई है। फिर भी यह स्पष्ट है कि कवि की बौद्धिक और भावात्मक भूमियाँ सीमित है। वे दो-चार वृत्तियो या विचार-धाराओ के आस पास ही भाँवरे देती रहती है। उनका अपरिसीम विस्तार हमे नही दिखलाई पड़ता। कही-कही बौद्धिकता के साथ ही कवि ने चमत्कार का भी सयोजन किया है। पर ऐसे स्थल श्लाघ्य नही बन सके है। भावुकता के साथ तुलना करने पर उनमे बौद्धिकता बहुत कम है। वे प्रधान रूप से भावुक कवि है।

छायावाद की चतुष्टयी :—प्रसाद, पत, निराला, महादेवी से भिन्न होने पर भी माखनलालजी का काव्य अपने विशिष्ट काव्य-तत्वो

के कारण हिन्दी-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनमे वाग्वैदग्ध्य का आग्रह है, फिर भी रसात्मकता मे—विशेष कर राष्ट्रीय काव्य के ओजपूर्ण स्वर मे—इस कारण से ही कमी नहीं होने पाई है। उनके एक ओर गुप्त जी का काव्य है और दूसरी ओर छायावाद की चतुष्टयी का। वे इन दोनो के सधि-स्थल पर खडे है। उनकी काव्य-भूमि मे प्रेम, रहस्य और राष्ट्रीयता की त्रिवेणी बहती है। काव्य-भूमि का विस्तार उनमे अधिक नही है। परतु, वे उर्दू-काव्य की मार्मिकता और वाग्वैदग्ध्य को सफलता पूर्वक हिन्दी मे ला सके है। उनका काव्य स्वय एक परपरा बन कर ऐतिहासिक महत्व की वस्तु बन गया है। अपने सीमित क्षेत्र मे वे अप्रतिम है।

कृष्णार्जुन युद्ध नाटक

'कृष्णार्जुन युद्ध नाटक' सन् १६१८ मे प्रथम बार प्रकाशित हुआ। यह लेखक का प्रथम नाटकीय प्रयोग था और इस दिशा मे वह अभी तक आदि और अत दोनो बना हुआ है। यह अपने समय का बड़ा लोक-प्रसिद्ध नाटक था। जनता ने इसका स्वागत जी खोल कर किया और इसे 'एक चीज' के नाम से पुकारा। २ अप्रैल सन् १६५० के 'सगम' ने सूचना दी है कि इसकी अभी तक साठ हजार प्रतियॉ बिक चुकी हैं। स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है कि यह नाटक इतना प्रसिद्ध क्यो हुआ? जनता ने इसका इतना स्वागत क्यो किया? इसका उत्तर पाने के लिए हमे तत्कालीन नाटको पर दृष्टिपात करना होगा। साथ ही 'कृष्णार्जुन युद्ध' एक पौराणिक नाटक भी है, अत इसका मूल्याकन पौराणिक नाटको की तुलना मे ही किया जा सकेगा।

सन् १६१२ मे नारायण प्रसाद 'बेताब' के 'महाभारत' ने पारसी रगमच के रोमाचकारी नाटको के स्थान पर पौराणिक नाटको का महत्व स्थापित कर दिया और इसके पश्चात् आगा हश्र काश्मीरी, राधेश्याम कथावाचक, हरिकृष्ण जौहर, तुलसीदत्त शैदा आदि नाटककारो ने अनेक पौराणिक नाटक लिखे। यह नाटको का 'बेताब' स्कूल कहलाता है। इन नाटककारो का उद्देश्य पारसी रगमच के अनर्गल शृ गार-प्रवाह को रोकना था। ये एक प्रकार के उपदेश और सुधार की भावना को लेकर चले थे। परतु, ये अपने उद्देश्य मे सफल न हो सके। जिस अनर्गल शृ गार का ये विरोध करना चाहते थे, वही इनके नाटको मे भी आ गया। 'गगावतरण' में लक्ष्मी सरस्वती की निन्दा करती हुई कहती है—

हँस के दिल लेना तुम्हे आता नही,
बोसा भी देना तुम्हे आता नहीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मी और सरस्वती दो वेश्याएँ है। इन नाटककारो के हाथ मे पड़ कर भीष्म, प्रह्लाद, भगीरथ जैसे पौराणिक पुरुष भी तुच्छ मनुष्य बन गए। पौराणिक युग के नाटक लिखते हुए भी इन नाटककारो ने उनमे भद्दे प्रेम-प्रसगो की भरमार कर दी। पौराणिक युग की सस्कृति, नैतिक अवस्था आदि का इन्हे कुछ भी ध्यान नही रहा। देश-काल के सम्यक् ज्ञान के अभाव मे ये अभिप्रेत प्रभाव उत्पन्न न कर सके। उच्च आदर्शों के प्रचार के लिए उदात्त पात्र की आवश्यकता होती है। परतु, इन नाटककारो के पात्र ऐसे नही थे। वे छिछली छेड़छाड़ करने वाले आशिक-माशूक जैसे चित्रित किए गए है। जहाँ तक पौराणिक कथानक का सबध है, ये चरित्र पुराणो से पूर्णतया मिलते हैं। परतु, जहाँ लेखक ने उनके शेष जीवन का कल्पनात्मक चित्रण किया है, उसमे वे नितात निम्न कोटि के चित्रित हुए है। यह सामञ्जस्य-हीन चरित्र सृष्टि अतिप्राकृत शक्तियो के हाथ की कठपुतली बन कर और भी नष्ट-महत्व हो जाती थी। इनकी वस्तु-योजना तिहरी होती थी—एक मुख्य कथा और दो साम्य तथा वैषम्य को लेकर चलने वाली गौण कथाएँ। मुख्य कथा पौराणिक और गौण कथाएँ कल्पित होती थीं। यद्यपि इनका उद्देश्य मुख्य कथा को अधिक प्रभावात्मक बनाना होता था, परन्तु, गौण कथाएँ स्वतन्त्र होती थीं, मुख्य कथा से सम्बद्ध नही तथा हास्य-व्यग्यादि के पुट के कारण मुख्य कथा की अपेक्षा वे ही आकर्षण का केन्द्र बन जाती थीं। भाषा की दृष्टि से तो ये नाटक और भी भ्रष्ट हुआ करते थे। एक ही उदाहरण से इसका अनुमान लगाया जा सकता है :—

टपक पड़ती है सब की राल बाहर की सफाई पर,
वरक़ चिपकाए हैं चाँदी के गोबर की मिठाई पर।

इधर कागज की इक रद्दी है मक्खन औ मलाई पर,
नजर क्या जाय इसकी खुश गिजाई पर, बडाई पर।
(नारायणप्रसाद 'बेताब'—पत्नी प्रताप मे)

उपर्युक्त पद मे भाषा के सर्व-भक्षी शब्द-प्रयोग, अद्भुत उपमाऍ और लेखक की अपरिष्कृत रुचि एक साथ फूट पड़े है। "साराश यह कि बेताब और राधेश्याम-स्कूल के पौराणिक नाटक कथावस्तु और चरित्र-चित्रण, वातावरण और भाषा-शैली सभी दृष्टि से निम्न-कोटि की रचनाऍ थी।" इन नाटको से साधारण और कलात्मक दृष्टि से हीन जनता का मनोरजन तो हो सका और धार्मिकता तथा उपदेशात्मक प्रवृत्ति के कारण इनका प्रचार भी हुआ, परतु जो लोग शिक्षित थे, जिनकी प्रवृत्ति धार्मिक थी, जो पारसी रगमच के रोमाचकारी प्रेमाख्यानो को घृणा की दृष्टि से देखते थे, जिनके हृदय मे अपने पौराणिक महापुरुषो के प्रति श्रद्धा और प्रेम था जो समाज का एक बड़ा भाग थे, वे बेताब-स्कूल के इन नाटको से सतुष्ट न हो सके। इसलिए 'कृष्णार्जुन युद्ध' जब सुगठित वस्तु-विन्यास, अपेक्षाकृत गभीर चरित्र तथा परिष्कृत भाषा को लेकर सामने आया तो जनता ने उसे सिर-ऑखो पर लिया। मनोरजन के लिए 'शख' विद्यार्थी के अटपटे शब्द प्रयोग और ऊटपटॉग चेष्टाऍ पर्याप्त थी। भाषा 'बेताबी' न होकर परिष्कृत थी, फिर भी सरल थी। भद्दे प्रेम-प्रसगो का नितात अभाव होते हुए भी नीरसता न थी तथा उच्चतम उपदेशात्मकता—कि भगवान भी यदि अत्याचारी हो तो वह गिरेगा—इसके मूल में थी। ये ही सब कारण हैं जो 'कृष्णार्जुन-युद्ध नाटक' को अत्यधिक लोक-प्रसिद्ध बना सके।

नाटक का कथानक गगा-तट पर प्रात सध्या के लिए बैठे हुए गालव ऋषि की अञ्जलि मे आकाश-मार्ग से जाते हुए चित्रसेन गधर्व के अनजान में पान की पीक गिर जाने से प्रारभ होता है। गालव भगवान कृष्ण से

शिकायत करते हैं और कृष्ण दूसरे दिन सध्या तक क्षमा न माँगने पर चित्रसेन को प्राण-दण्ड देने की प्रतिज्ञा करते है। नारद जी थोडे से अपराध के लिए प्राण-दण्ड को अन्याय समझ कर चित्रसेन की रक्षा का प्रयास करते है। पहले वे चित्रसेन को अपने स्वामी इन्द्र के पास भेजते है जो श्रीकृष्ण के डर से सहायता देना अस्वीकृत कर देता है। फिर नारदजी चित्रसेन को पाडवो की शरण मे भेजते है। उस समय धर्म-राज युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा पर चले गए थे और अर्जुन तथा द्रौपदी ने भीमसेन के असहमत होते हुए भी सहायता अस्वीकृत कर दी। परन्तु, नारदजी ने कौशल से सुभद्रा को सहायता के लिए वचन-बद्ध करवा लिया और सुभद्रा ने कामिनी-कौशल से अर्जुन को। इस तरह चित्रसेन को शरण मिल गई जिससे दो चिर-परिचित सखा रण मे एक दूसरे के विरुद्ध खड़े हुए दिखलाई दिए। अर्जुन की सहायता के लिए नारदजी ने भगवान शकर को भी रणागण पर उपस्थित कर लिया और सुदर्शन-चक्र तथा पाशुपतास्त्र की टक्करो के बीच ब्रह्माजी को अपनी सारी करामात मिट्टी मे मिल जाने की सम्भावना दिखलाई दी। वे दौड़े-दौड़े गालव के पास गए और उन्होने चित्रसेन को क्षमा करवा दिया। चित्रसेन के प्राण बचे और न्याय की रक्षा हुई।

यह नाटक का कथानक है। इसके साथ ही शख और शशि के हास्य पूर्ण दृश्य भी साद्यत चलते रहते है। एक तो कथानक वैसे ही बड़ा आकर्षक है, दूसरे, शख की बेढब चेष्टाओ से उसमे मनोरञ्जन की भी कमी नही रहती। यदि इस नाटक मे शख और शशि न भी होते, तो भी इसका आकर्षण उतना ही बना रहता। राम और कृष्ण के नाम मे ही भारतीय जनता के लिए इतना आकर्षण है कि अब भी नगरो मे 'राम-राज्य' और 'भरत-मिलाप' जैसे धार्मिक चित्रो के आने पर सिनेमा घर ठसाठस भर जाता है और ग्रामीण जनता को तो अभी

तक चलचित्र पर हाथ जोड़-जोड़ कर नारियल और पैसे फेंकते हुए देखा गया है। फिर, आज से पैंतीस वर्ष पहले ऐसा नाटक, जिसमे एक साथ ही श्रीकृष्ण-बलराम हो, भगवान भोलेनाथ हो, गाडीवधारी अर्जुन हो, नारद हो, लोकप्रिय हो तो कोई आश्चर्य की बात नही प्रतीत होती।

इस नाटक मे चार अक है और अको मे क्रमश चार, पॉच, सात तथा छ दृश्य है। नाटक का निर्माण भारतीय नाट्य शास्त्र के निर्देशों पर हुआ प्रतीत होता है। प्रारभावस्था नारदजी के इस स्वगत तक मानी जा सकती है—"मै अपना प्रयत्न कर चुका। तपस्वी क्षमा नही करेंगे और श्री कृष्ण प्राणदड देवेगे ही—देखा जाता है। क्या सत्ताधारी होकर श्रीकृष्ण यह अत्याचार कर डालेगे ? पर जब तक मै हूँ, भगवान को इस कार्य से बचाऊँगा। यह सत्ता का दुरुपयोग नही तो क्या है ?" इस स्वगत-कथन मे नायक का कार्य-रत होने के लिए औत्सुक्य परिलक्षित होता है और यही से आगे प्रयत्नावस्था प्रारभ हो जाती है जिसमे नारद जी का चित्रसेन को सचेत करना, उसे इन्द्र के पास और फिर पाडवो के पास भेजना—आदि कार्य सम्मिलित हैं। इनमे नायक फल-प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता हुआ दिखलाई पड़ता है। फल-प्राप्ति की आशा के चिन्ह नही दिखलाई पड़ते, क्योंकि इन्द्र और अर्जुनादि सहायता देना अस्वीकार कर देते है। सपूर्ण प्रथम अक मे प्रारभावस्था है और द्वितीय अक मे प्रयत्नावस्था प्रारभ होती है जो तृतीय अक के पचम दृश्य के उस स्थल तक है जहॉ सुभद्रा गगा-तट पर चिता सजा कर बैठे हुए चित्रसेन के पास तक पहुँचती है। चित्रसेन की रक्षा के लिए सुभद्रा की प्रतिज्ञा से ही प्राप्त्याशा प्रारभ होती है जो चतुर्थ अक के पचम दृश्य मे गालव-ऋषि का पश्चात्ताप—"हर, हर, महा अनर्थ हुआ। मै अब अनुभव करता हूँ कि वह गधर्व निरपराध है। मुझे अपने क्रोध पर दुःख है।—नियताप्ति अवस्था को सूचित करता है। इसके आगे छठवे दृश्य मे ही गालव-ऋषि

के इस वाक्य से—"मैं चित्रसेन को क्षमा करता हूँ। युद्ध बन्द हो।"—फलागम हो जाता है। इस प्रकार इस नाटक मे पाँचो कार्यावस्थाएँ प्राप्त होती हैं।

चित्रसेन के पान की पीक का गालव ऋषि की अजलि मे गिर जाना ही सारे कथानक का हेतु है जो आगे चलकर विकसित हुआ है। अत इसे बीज माना जा सकता है। नारदजी का चित्रसेन की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाना विन्दु अर्थ-प्रकृति का परिचायक है। सुभद्रा एव अर्जुन की कथा पताका के अन्तर्गत एव शकरजी और ब्रह्माजी की कथाएँ प्रकरी-प्रकरण में आवेंगी। चित्रसेन की मुक्ति कार्य अर्थ-प्रकृति की सूचक है।

कार्यावस्थाएँ और अर्थ प्रकृतियो को ढूँढ लेने पर सधियाँ स्वयमेव निकल आती है। समस्त प्रथम अक मुख-सधि के अन्तर्गत आवेगा जिसमे चित्रसेन का अनजान मे अपराध करना, गालव-ऋषि का क्रोध, भगवान कृष्ण की प्रतिज्ञा तथा नारदजी की उत्कण्ठा सम्मिलित होकर अनेक अर्थ और रसो को व्यजित करते हैं। प्रतिमुख सधि द्वितीय अक से प्रारभ होकर तृतीय अक के पञ्चम दृश्य तक चलती है जिसमे नारदजी का चित्रसेन को इन्द्र के पास भेजना, पाडवो के पास पहुँचना, गगा-तट पर सुभद्रा को लाने का प्रयत्न करना लक्ष्य रूप मे बीज का उद्भेद करते हैं और शशि-शङ्ख का वार्तालाप तथा इन्द्र की सभा अलक्ष्य रूप मे। पहले में नाटकीय प्रधान फल का साधक इतिवृत्त स्पष्ट है और दूसरे प्रसगों मे गुप्त। इसमें चित्रसेन की रक्षा के लिए कोई प्रबन्ध नही हो सका है। गर्भ सधि तृतीय अक के पञ्चम दृश्य से लेकर चतुर्थ अक के तृतीय दृश्य तक चलती है जिसमे सुभद्रा की स्वीकृति से आशा होती है और अर्जुन के प्रगाढ कृष्ण-प्रेम के कारण शका भी बनी रहती है। अर्जुन के तत्पर हो जाने पर आशा होती है, परन्तु सुदर्शन और गाडीव

की असमानता के कारण कुछ सदेह भी बना रहता है जिसके निवारण के लिए नारदजी ने भगवान पशुपति को अर्जुन की सहायता के लिए तत्पर किया। गर्भ-सन्धि मे सफलता की सम्भावना के साथ साथ विफलता की आशका भी बनी रहती है। चतुर्थ अक का पञ्चम दृश्य अवमर्श या विमर्श-सन्धि के अन्तर्गत आवेगा, क्योकि इसमे ब्रह्माजी को विश्व-प्रलय की विपत्ति आने की सभावना दिखलाई पडती है। यह सन्धि गालव-ऋषि के पश्चात्ताप-वाक्य तक चलती है। पश्चात्ताप के पश्चात् ही निर्वहण सन्धि प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार चतुर्थ अक का पाँचवाँ दृश्य और छठा दृश्य निर्वहण सन्धि के अन्तर्गत आते है।

साराश यह है कि इस नाटक की वस्तु-योजना अत्यन्त सुगठित एव सुस्पष्ट है। भारतीय नाटक-पद्धति का इसमे पूर्ण रूप से पालन हुआ है। प्रारम्भिक प्रस्तावना मे सर्व प्रथम देव स्तुति, सूत्रधार तथा नटी का वस्तु निर्देशात्मक वार्तालाप तथा अन्त मे भरत-वाक्य जैसे गायन की योजना इसे प्राचीन नाटक-परिपाटी मे परिगणित कराने के पर्याप्त प्रमाण है।

इस नाटक के नायक नारदजी है। प्रस्तावना मे ही नटी कह देती है—

> कहते है कलहप्रिय पर है जिसके कार्य सुखद अत्यत,
> नीति निपुण मुनिवर्य वही है इस घटना का नायक सत।

परतु, नारदजी को नायक मान कर चलने मे एक समस्या उत्पन्न होती है। नारदजी पर्दे के पीछे रह कर कार्य करने वाले पात्र हैं। प्रसाद जी के 'चद्रगुप्त' नाटक का चाणक्य भी इसी प्रकार का पात्र है और उसमे भी नायक सबधी समस्या उत्पन्न हो गई है। परतु, प्रसादजी के नाटक मे चद्रगुप्त इतना प्रभावशाली व्यक्तित्व लेकर उपस्थित होता है कि महाकाव्योचित चाणक्य को भी उसके लिए नायक का पद रिक्त

करना पडता है। परतु यहाँ बात दूसरी है। एक तो स्वय लेखक ने नारदजी को नायक माना है, दूसरे नाटक के तृतीय अक मे आनेवाला अर्जुन अपने व्यक्तित्व को सम्यक रूप से सामने नही रख सका है। इस नाटक मे उसे पताका-नायक या उपनायक का स्थान मिला है। परतु, महाभारत विजेता अर्जुन को उपनायक का पद कुछ अच्छा नही लगता। नारदजी को नायक मान कर दूसरी समस्या नायिका की खडी हो जाती है। यदि इस नाटक मे कोई नायिका का स्थान ग्रहण कर सकती है तो वह क्षत्रिय-बाला सुभद्रा ही है। परतु, अर्जुन के उपनायक बन जाने पर भारतीय दृष्टि से उसे नायिका बनाना असगत होगा। पाश्चात्य दृष्टि से भले ही उसे कथा-प्रवाह मे प्रमुख भाग लेने के कारण नायिका का स्थान दे दिया जाय, परतु इस नाटक की सृष्टि तो भारतीय सिद्धातो को दृष्टि में रख कर की गई है। नाटक के प्रतिनायक की ओर जब हम दृष्टिपात करते है तो उसके स्थान पर द्वारिकेश्वर भगवान श्रीकृष्ण को खड़ा हुआ पाते है। वे इस नाटक मे एक अन्यायी और अत्याचारी के रूप मे चित्रित किये गए है। यह भी जन-भावना के विरुद्ध चरित्र-चित्रण है। भगवान श्रीकृष्ण का प्रतिनायकत्व और अर्जुन का उपनायकत्व इन दोनो महापुरुषो को उनके पौराणिक महत्व से नीचे उतार देते है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से बेताब और राधेश्याम स्कूल के नाटको की तुलना मे इस नाटक का चरित्र-चित्रण कई गुना अच्छा है। इसके पात्र गभीर और वर्गगत विशेषताओ से सयुक्त है। उनके चरित्रो मे सार्गत सामजस्य है। इस नाटक के पात्रो मे एक नई विशेषता और भी है। कतिपय पात्रो मे अतर्द्वन्द भी दृष्टिगत होता है। निःसदेह यह उतना तीव्र नही है जितना आगे चल कर प्रसादजी के नाटको मे तीव्र हुआ है। फिर भी, सुभद्रा अर्जुन और श्रीकृष्ण के चरित्रो मे इसकी झलक मिल जाती है। सुभद्रा के मन मे भ्रातृ-प्रेम और कर्त्तव्य के बीच मे, अर्जुन के मन मे

सौहार्द और कर्त्तव्य मे और श्रीकृष्णजी मे प्रण और मित्र-प्रेम के बीच मे द्वन्द्व चलता हुआ दिखलाई देता है। चरित्रो मे अतर्द्वन्द की योजना इस नाटक की प्रगति का एक और बडा प्रमाण माना जा सकता है। पर चरित्रो मे शख के नाम की सार्थकता को सोचकर उसके देशकाल विरुद्ध क्रिया-कलापो पर ध्यान न भी दें तो भीमसेन का यह कथन '—

आज्ञा दो हिमशैल उठा लूँ अभी कृष्ण पर जाकर छोड़ूँ।
भूल जायगा प्रण वण सारे उसके ऐसे कान मरोड़ूँ।

महाबली भीम के पौरुष की उचित अभिव्यक्ति नही करता। शख के लिए मुझे कुछ भी नही कहना है, क्योंकि उसके जन्म के समय उसके जनक ने देश-काल, उचित-अनुचित सभी को विस्मृति के पिटारे मे बद कर दिया था। लेखक ने शख की सृष्टि कर नाटक के समस्त पौराणिक गाभीर्य को उथले मनोरजन के मोल बेच दिया है। एक तो नाटककार इसमे पौराणिक वातावरण की सृष्टि करने मे सफल नही हो सका है। प्रसादजी का 'जनमेजय का नागयज्ञ' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण नाटक है। उसमे पौराणिक युग का सुदर चित्रण मिलता है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' तत्कालीन वातावरण को उत्पन्न करने मे उतना सफल नही हुआ है। दूसरे, शख दादा की सृष्टि उस द्वापर-युग की अनुकृति मे बार-बार कलि-काल का स्मरण कराती रहती है।

अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक बडा सफल सिद्ध हुआ है। इसके कथोपकथन छोटे-छोटे और बडे सरस है। इनमे न तो प्रसादजी के नाटकीय कथोपकथनो का विशाल कलेवर है और न अद्भुत अलकृति ही। भाषा इसकी सरल और सुबोध है, उसमे सस्कृत की गरिष्टता नही, बोलचाल की शुद्ध हिन्दी का चलतापन है। आकार इसका छोटा-सा है। कुल सौ पृष्ठो की सीमा मे यह समाप्त हो जाता है। दो दिन की वार्त्ता ही इसका सब कथानक है। इसलिए काल-सकलन की सुदर रक्षा

हुई है। अनेक कुतूहल-वर्धक स्थलो की भी इसमे कमी नही है। अनौचित्य को स्वीकार करते हुए भी इसके रगमचीय मनोरजन को अस्वीकार नही किया जा सकता। दृश्य-योजना निर्दोष न होते हुए भी (जैसे तृतीयाक का तृतीय दृश्य तपोवन, चतुर्थ दृश्य सुभद्रा का महल) असाध्य नही है। कथानक की गति भी तीव्र है। इन सब कारणो से 'कृष्णार्जुन युद्ध' सफल रगमचीय नाटक बन सका और सन १९१८ की कृति होने के कारण इनका ऐतिहासिक महत्व भी स्थापित हुआ। श्री विनयमोहन शर्मा ने ('दृष्टिकोण' पृष्ट ६३ पर) लिखा है—"द्विवेदी युग मे प० माखनलाल चतुर्वेदी का कृष्णार्जुन युद्ध काफी प्रसिद्ध रहा। स्व० मोहनलाल का दावा था कि इस नाटक का ढॉचा उनका था।" जो भी हो, 'कृष्णार्जुन युद्ध' एक सफल अभिनेय नाटक है और हिन्दी के नाटक-साहित्य मे उसका ऐतिहासिक मूल्य है।

साहित्य-देवता

साहित्य-देवता

'साहित्य देवता' के साहित्यक विचार—

'साहित्य देवता' मे माखनलालजी की साहित्यिक मान्यताएँ मुखरित हुई है। साहित्य की परिभाषा, कलाकार और साहित्य, वर्तमान साहित्य, साहित्य की शक्तियाँ आदि विषयो पर इस ग्रन्थ मे उनके विचार व्यक्त हुए हैं। उनके साहित्य का अध्ययन करनेवाले के लिए उनके साहित्यिक विचारो को स्पष्ट रूप से जान लेना आवश्यक है। इन साहित्यिक विचारो को हम कवि के काव्य की पृष्ठभूमि के रूप मे रख सकते है।

साहित्य को वे मानव-हृदय का मुग्ध सस्कार, अनत जागृत आत्माओ का ऊँचा और गहरा स्वप्न, कल्पना के मदिर मे बिजली की व्यापक चकाचौध, वाणी के सरोवर मे अतरात्मा के निवासी की जगमगाहट, वेदनाओ के विकास का सग्रहालय तथा मानव-जीवन की अब तक पनपी हुई महत्ता का मदिर मानते है। अर्थात् साहित्य लेखक की आत्माभिव्यक्ति है। इसमे भावाकुलता, चिन्तन, कल्पना आदि तत्वो का समावेश रहता है। मानव-जीवन का सर्वोन्नत स्वरूप सर्व प्रथम साहित्य मे ही चित्रित हुआ है। वह मानवता के विकास का इतिहास है। वन-जीवन से लेकर कृषि-युग तक की समस्त विचार-धाराओ की सुरक्षा साहित्य ने ही की है। वह मानव-जीवन की आदर्श कल्पना है, देवत्व को मानवत्व की चुनौती है। वह प्रगतिशील और अमर होता है। युग के सदेश साहित्य मे निहित रहते है।

कला कलाकार से अभिन्न होती है। कलाकार किसी कलाकृति का निर्माण करता है, पर उसी कलाकृति मे वह स्वय प्रतिबिम्बित हो जाता है।

साहित्य मे चराचर की समस्त वस्तुओ का समावेश हो सकता है। पर्वत, नदी, निर्झर, पृथ्वी, आकाश से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक सभ्यता के हवाई जहाजो तक उसके विषयो का प्रसार है। राजा और रक को यहाँ समान अधिकार प्राप्त है। शाति और क्राति दोनो के सदेश साहित्य ही देता है। साहित्य का देवता त्रिकालदर्शी होता है और उसी के वरदान से मानवता को सभ्यता का प्रसाद मिला है। साहित्य मे अनत क्रातिकारी शक्तियाँ होती है, जिनकी तुलना भौतिक शक्तियो से नही की जा सकती।

कलाकार वही है जिसमे त्रिकाल-चित्रण की शक्ति हो। कलाकार की कलम मे युग का उल्लास, विलास, वेदना और बलिदान समाया रहता है। सच्चा कलाकार ब्रह्म स्वरूप होता है। वह कला का निर्माण करता है, कला उसका निर्माण नही करती। प्रकृति का अशेष सौन्दर्य उसको प्रेरणा देता है और यही से उसकी कल्पना का अजस्र निर्झर भी प्रवाहित होता है। वह नवयुग का जनक धुँधले अतीत मे प्रवेश इसलिए करता है कि वह वहाँ के कतिपय इष्ट रत्नो को लाकर उज्ज्वल करे और उनसे आगामी युग के मदिर को जगमगा दे। उसकी दृष्टि कालाबाधित होती है, वर्तमान ही उसकी दृष्टि-सीमा नही बना सकता। कला के मूल मे प्रेरणा होती है जो कभी-कभी समय की दौड़ से आगे बढ जाती है। "इसलिए कलाकार राहगीर का समय काटने की वस्तु-मात्र नही होता, वह समय का पथ-प्रदर्शक राहगीर होता है।" उसके प्रत्येक कार्य मे, उसकी प्रत्येक भावना मे निर्माण निहित रहता है। कला-कार का "एकान्त अस्तित्व की बस्ती है और उसकी निकम्मी घड़ियाँ कला के अस्तित्व का श्वासोच्छ्वास है।' व्यस्त कलाकार जीवन का सम्यक् निरीक्षण नहीं कर पाता। कलाकार के लिए अवकाश अत्यत आवश्यक है। एक दार्शनिक के समान "कलाकार का जीवन द्वैत मे अद्वैत और अद्वैत मे द्वैत की अनुभूति होता है।" कला प्रेरणा और चिन्तन की सन्तान है। "कलाकार क्या है? वह अपने युग की, स्फूर्ति

प्रकाश के रग मे डूबी भगवान की प्राणवान प्रेरक और कल्पक कूँची है।"
वह जो कुछ लिखता और बोलता है वह सब कला है। कला को
समझने के लिए केवल हृदय की आवश्यकता है, पढ़े-लिखे लोगो की
पल्टन ही आवश्यक नही।

साहित्य की सुनहली किरणो मे प्रेरित होकर हृदय मे भाव-भृगो की
भीड मच जाती है। साहित्य भावान्दोलन का सर्वाधिक समर्थ साधन है।
वह मूल्यवान है, परन्तु उसका मूल्य चॉदी सोने के टुकड़े नही। साहित्य
के अधिकारी "अक्षरो के उपासक, शब्दो के साधु, पदो के पूजक, व्यजनो
के विजयानन्द विहारी, सन्धियो के निर्माता, और 'पूतना मरण लब्ध-
कीर्ति' के अङ्क मे नित-नव आभूषणो को समर्पित करने वाले, किन्तु प्राणो
को मतवाले हो कलम के घाट उतारने वाले ही" होते है। सच्चा साहित्य-
सेवी अमर, अविजित और चिर आराधनामय होता है। वह गौरव के
कलरव को कोलाहल कह कर ठुकरा देता है।

कवि की अन्तर्ध्वनि ही कविता बन जाती है। उसके गान, रुदन
दोनो से विश्व का मनोरजन होता है। कवि की भाव गङ्गा जहॉ हृदय
के हिमगिरि से उतर कर कला के कूलो मे आई, वही उसकी समस्त
स्वतत्रता पर सील सी लग जाती है। परन्तु सीमा ही अस्तित्व का चिन्ह
है। सूझ की देन के मर्यादित उपकरणो ने शास्त्र नाम पाया है, सूझ का
शेष वैभव कला के नाम से अभिहित हुआ। शास्त्र घिसे हुए पैसे की तरह
रूढ होता है। कला विद्रोहिनी है जिससे नए विचारो का आविर्भाव
होता है, जो नव-मानवता का निर्माण करते है। शास्त्र मे सत्य को न
समझ कर भी उस पर बहस हो सकती है, पर कवि के लाचार मौन मे
भी सत्य का स्वर ही झकृत होता है। कवि देह-दु खो से परे होता है।
वह नित्य प्रकृति मे रमण करता है। प्रकृति उसे आकर्षित करती है, उसे
उपदेश देती है। कवि प्रकृति का सच्चा प्रेमी होता है।

समसामयिक युग मे साहित्य और कला की स्थिति पर भी माखनलाल जी ने पर्याप्त लिखा है। उनका कहना है कि आज के युग मे वीणा धारिणी के युग-सन्देशवादी मयूर नही है, यूनिवर्सिटी की तादाद बढाने वाले ही अधिक है। आज का साहित्य पेट भरू साहित्य है। जैसे भैस को दाना देने पर वह दूध देती है वैसे ही आज के कवि को खाना दो, वह गाना लिखेगा। आज के साहित्य मे शब्दाडबर अधिक है, अर्थ कम। साहित्यकार जब अपनी शाश्वत उदात्तवृत्ति से नीचे उतर आता है तो उसकी स्थिति शोचनीय हो जाती है। साहित्यकारो की उदरम्भर वृत्ति के कारण साहित्य मे राजाओ, सरदारो, नवाबो एव राजपरिवारो का चित्रण हुआ और योद्धा तथा सैनिक, गरीबो की वेदना तथा बलिदान उपेक्षा के कचरे घर मे डाल दिए गए। कालिदास, माघ और बाण आदि भी इस दोष से मुक्त नही। परन्तु, अब नव युग की लेखनियो ने गरीबो का गान गाना प्रारम्भ कर दिया है। अब इतिहास "महज्जनो की महानता को, देवता के प्रसाद की तरह, कालू नाई, रमलू धोबी और बोधा मेहतर में मुक्त होकर बॉट रहा है। अब साहित्य विश्व की उथल-पुथल के रूप मे समय का सन्देश अपनी पीठ पर लाद कर निकला है।" अर्थात् साहित्य आज युग की क्रान्तिकारी वृत्तियो का प्रतिबिम्ब बन गया है।

स्थान-स्थान पर साहित्य पर ऐतिहासिक दृष्टि से भी विचार किया गया है। रीति काल की शृङ्गारिक मोह-निद्रा को सन्त कवि रामदास, भूषण आदि ने भेरियॉ बजा कर भङ्ग करना चाहा। पर युग भाग्यवाद की भॉग पीकर सोया था। इसीलिए तुलसी, मीरा, नरसी मेहता से जगाने वाले भी उसे पूर्ण रूप से न जगा पाए। विनोद, विलास और वारुणी की अबाध धारा बहती रही। साहित्य व्याकरण और पिंगल के नियमो से जकड़ गया। आज प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई है। जो तेजस्वी है, जिनमे बढने की मस्ती है, वे ही आज जीवित रह सकते है। उनकी

अबाध गति के आगे नियमो के क्षुद्र बॉध नही रुक सकेंगे। इस दिशा मे साहित्य स्वय उनका मार्ग-प्रदर्शन करेगा। साहित्य भी नियमो के बन्धनो को तोड़ देगा। क्योंकि "टकसाली" नियमो, लक्षणो और निषेधो के उस पार भी, जगत है, एक बडा जगत् है।"

साहित्य सदा से प्रगतिशील रहा है, रूढ नही। वह युग के सुख-दुख का प्रतिबिम्ब और युग-निर्माता होता है। साहित्य का अस्तित्व वाणी के अस्तित्व के समान क्षणिक नही होता। साहित्य शाश्वत वस्तु है।

तरुणाई और कविता एक ही वस्तु के दो नाम है। यौवन-काल मे प्रतिभा पनपती है। वृद्धावस्था मे उसका विकास सम्भव है पर प्रारम्भ नही। इसलिए निर्माण के बीज यौवन काल मे ही बो देना चाहिए।

जिस समय हृदय मे वेदना का भार असह्य हो जाय वही सृजन का सर्व सुन्दर क्षण है। बिना इस स्थिति के यदि कोई कुछ बोला भी तो वह काम का नही।

साहित्यकार अपने लिए नही, दीन दुखियो के लिए, भूखे-प्यासे गरीबो के लिए क्रान्ति मचा देता है। परन्तु उसके गर्जन मे भी वही मिठास होती है जो उसके रुदन मे पाई जाती है। उसकी वाणी असुन्दर को सुन्दर बना देती है, भयकर को मनोरञ्जक कर देती है।

अकर्मण्य, निरुत्साही, ईर्षालु स्वभाव का मनुष्य साहित्यकार नही हो सकता। साहित्यकार की कलम सृजन शक्ति मे विधाता से भी बढ कर होती है, उसमे अपार प्रेरणा भरी रहती है। जिसके हाथो मे विश्व निर्माण की निस्सीम शक्ति हो उसे 'जापानी खिलौने' बनाना शोभा नही देता। साहित्यिक क्रातियॉ विश्व-कल्याण के लिये ही होती है, भले ही उनका अर्थ उस समय न समझा जाय। युग का सच्चा पथ-प्रदर्शक साहित्य ही होता है।

आज साहित्य के मानदण्ड बदल रहे है। आज कवि प्रेम का बडा

व्यापक अर्थ लेते हैं। प्रेम आज विषय-वासनाओ के समीप नही रह पावेगा। "प्रेम शब्द अब युग परिवर्तन की यमुना की लहरो से भीगता जा रहा है और मौलिक विचारको की स्फूर्तियाँ उसे छू छू कर नक्षत्रो की ऊँचाई से लड़ाई ठाननेवाला बना रही है, अत अब वह मच्छड़ भरे तालाबो मे भैंसो के साथ नही लोट सकेगा। वह कृष्ण की सौगन्धो की कीमत पर भी बाँसुरी की धुन मे जब 'कच' 'कुच' 'कटाक्ष' गाता खड़ा न रह सकेगा। वह गीत ही गावेगा, किन्तु वे जमाने का भाग्य लिखेंगे।" आज प्रेम विश्व-प्रेम का पर्याय हो गया है।

वास्तविक साहित्य वही होता है जिसके दर्पण मे राष्ट्र झाँक उठता है। साम्प्रदायिक साहित्य तो कर्महीन एव शक्तिशून्य होता है। "साहित्य की दुर्गा राष्ट्र की सिंहासन बनती है, सस्कृति के गहने पहनती है, उथल-पुथल का राजदंड धारण करती है और मुकुट को ठुकरा कर किसी जाति के सकल्पो का, गरीबो के बगीचो मे ऊगे हुए फूलो का हार अपने जूडे से बाँधती है और समस्त राष्ट्र के निवासियो की आत्मा का वस्त्र पहन कर क्रिया शीलता के साथ बैठ जाती है।"

हमारे भव्य अतीत को विदेशियो ने आदर की दृष्टि से देखा और उससे लाभ उठाया, परतु हम स्वय ही उससे कुछ लाभ न उठा सके। हम अपने देश के साहित्य को भी भूल गए। आज हमारे देश मे ऐसी अत्यल्प साहित्य-कोकिलाएँ है जो अपने आश्रय-स्थलो के डॉवाडोल होने पर अपने पखो से अनेक अधडो को चीर कर मुक्ति के लोक का पथ प्रशस्त कर दे। आज हमारे साहित्यिको मे स्वावलबन की कमी है।

आज साहित्य के देवल मे द्वेष का दानव प्रतिष्ठित है। परतु -"जिसका पिता रोष हो, जिसकी माता उद्दण्डता हो, जिसकी बहन अविचार पूर्ण आत्मश्रद्धा हो, जिसका भाई परिणाम की गभीरता का अज्ञान हो, वह और चाहे जो कुछ हो, साहित्य तो नही हो सकता।"

मतभेद स्वाभाविक है। क्रियाहीन समर्थन की अपेक्षा सच्चा मतभेद अधिक मूल्यवान होता है। परतु, मतभेद के मूल मे प्रतिशोध अथवा द्वेष की भावना नही होनी चाहिये।

मनुष्य के व्यावहारिक जीवन से ही नियमो का निर्माण हुआ है। इसलिए जब युग-यौवन स्वच्छन्द होने के लिए व्याकुल हो तब पिंगल और व्याकरण की शृंखलाओ के टूटने पर शोक प्रस्ताव पास करना उचित नही। यह तो हमारे सौभाग्य के विरुद्ध हमारा ही विद्रोह होगा साहित्य को नियमो के पैर मे ठीक बैठने वाला जूता नहीं बनाया जा सकता।

हम साहित्यिक दिवालिये हैं, भिखमगे है। देने को हमारे पास कुछ नही है। इसलिए पश्चिम की धनी भाषाओ से हम भाइ चारा स्थापित नही कर सकते। भाईचारा तो बराबरी मे होता है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे क्रियाशील तरुण लेखक अखबारो की जूठन को ही वितरित न कर युद्धक्षेत्र मे जॉय, दुनियॉ के घटनास्थलो पर जॉय और सजीव साहित्य का निर्माण करें। आज हम युग के साथ नही चल रहे है। हम उस समय की बात कहते हैं जब लकडी की नाव पानी पर तैरती थी, परतु अब तो लोहे के घर भी जल पर तैरते हैं। हमारे पास अभी ऐसी साहित्य रेखा नही है जो इन दो दूरस्थ विन्दुओ को एक कर दे। परतन्त्रता की सदियो ने हमे पुरुषार्थहीन कर दिया है। "आज के साहित्यिक चिन्तक पर जिम्मेवारी है कि वह पुरुषार्थ को दोनों हाथो मे लेकर जीने का खतरा और मरने का स्वाद अपनी पीढी मे बोये।"

सक्षेप मे हम माखनलालजी के काव्यादर्श या साहित्यादर्श की रूप-रेखा इस प्रकार स्थापित कर सकते है :—

(१) काव्य कवि के व्यक्तित्व का ही स्फोट है, अतः कवि के व्यक्तित्व से अलग उसकी सत्ता ही नही है।

(२) काव्य रचना के द्वारा कवि अपने भावुक-जीवन के प्रत्येक स्पदन, प्रत्येक क्षण को पकड़ना चाहता है। उसके लिए वे स्पदन, वे क्षण ही परम सत्य हैं।

(३) काव्य की भूमि मानव-जगत है, इसी भूमि पर से कवि अपने विषय उठाता है, परतु वस्तु जगत के अनुभवो की भूमि पर कवि हमे जो देता है, वह लोकोत्तर होता है।

(४) काव्य में मानव के सस्कारी जीवन के विकास की एक सपूर्ण रेखा विकसित हुई है और इसी से वह मनुष्य की अर्जित सपत्ति मे सब से महत्त्व पूर्ण है।

(५) कवि मूलतः क्रातिकारी और अराजक है, इसलिए उसके प्रगतिशील होने का प्रश्न ही नही आता। यदि वह भविष्य-द्रष्टा नहीं है तो वह कवि ही नही है।

(६) काव्य मे कवि के व्यक्तित्व के दो विभिन्न अग 'सूझ' (कल्पना) और 'साँस' (अनुभूति) इस प्रकार एकाकार हो जाते है कि उनका स्वतत्र व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है।

(७) साहित्यिक का वास्तविक रूप वह नही है जो आभिजात्य की अमराइयो मे फलित होता है। उच्च कोटि का साहित्य जनता की वाणी मे बोलता है और जन जीवन को ही अनेक रूपों मे तुष्ट करता है।

'साहित्य देवता' के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे आलोच्य कवि के सामने काव्य और कला का एक बडा आदर्श है और वह समकालीन स्थिति से पूर्णत असतुष्ट है। फलत. उसके काव्य मे हमे आधुनिक हिन्दी काव्य की एक नई रूपरेखा विकसित होती हुई दिखलाई देती है। इसमे सदेह नही कि कवि ने साहित्य देवता की जो मूर्ति अपने गद्य-प्रयोगो मे गढी है, उस मूर्ति को वह अपने हृदय का समस्त रस देकर अपने काव्य मे प्राणवान बना सका है।

'साहित्य देवता' के साहित्येतर विचार—

साहित्यिक विचारो के अतिरिक्त 'साहित्य देवता' मे कुछ सामाजिक, भक्ति-सबधी एव प्रेम-सबधी विचार भी सकलित हो गए है।

आज के समाज की अधोमुखी अवस्था की ओर इङ्गित करते हुए वे कहते है कि "कला और लालित्य, तेज और पुरुषार्थ,—आज तो सब नीलाम पर निकले है।" कला के नाम पर आज तुकी-बेतुकी तितलियाँ है, ग्रामोफोन की चक्कर काटती हुई चूडियाँ है, पुजारियो के नाम पर 'देवता को पत्थर बना कर सिंदूर लपेटनेवाले हैं' और शिक्षा के नाम पर यूनिवर्सिटी की तादाद बढानेवाले है।' आज के ब्राह्मण, साहित्यिक सभी को पेट की चिन्ता लगी है। 'शरीर-पूजा' आज का युग-धर्म हो रहा है। आज के मनुष्य को 'भोजन चाहिए, राज्य नही चाहिए।'

विदेशियो ने भारत के भोजपत्रो, शिलालेखो एव साहित्य का सम्मान किया, उससे प्रेरणा ली और लाभ उठाया। परतु हम स्वय अपनी इन निधियो का मूल्य न समझ सके। काशीप्रसादजी जायसवाल जैसे मनस्वियो के प्रयत्न से हमारी सस्कृति और सभ्यता इतिहास के खडहरो से निकल आई, परतु फिर भी हमने उसे समझने का प्रयास नही किया। किसी भी चिन्तक का हमारे बीच मे आना अभिशाप है। स्वामी राम के अमर मुक्ति-सदेश मे भी हमने वेदात के बधन ही ढूँढे।

'जे पर दोष लखहिं सहसाखी। परहित घृत जिनके मन माखी।' का 'जे' आज के समाज पर पूर्ण घटित होता है। आज महत्व पर मनुष्य को द्वेष होता है और मतभेद की आड़ मे प्रतिशोध काम करता है। मार डालना तो हमारे लिए गुनाह रहा ही है, परतु हमने घर-घर और व्यक्ति-व्यक्ति मे मरने का भी डर बोया है। हम मारने-मरने से डरते है। समाज ने शस्त्र से अधिक शास्त्र को महत्व दिया। भाग्यवाद के कारण प्रजा भगवान की मर्जी पर गूँगी भेड़ बन कर कट जाने की चीज हो

गई। साराश यह कि माखनलालजी न अपने विगत एव समसामयिक समाज की अनेक ह्रासमूलक वृत्तियो पर प्रकाश डाला है और अब वे कहते है कि, "इस पामरता मे आग लगाने वाली अँगुलियाँ आगे आ गई हैं।"

'साहित्य देवता' मे अनेक स्थलो पर माखनलालजी ने प्रेम-सम्बन्धी विचारो को भी अभिव्यक्त किया है। प्रेम को वे 'रोजाना एक के प्रति ईमानदार होकर दूसरे को ढूँढते रहना' नही मानते और न रूप के आकर्षण को ही प्रेम सज्ञा देने के लिए तत्पर है। प्रेम को वे एक रहस्य मय अनिर्वचनीय स्थिति मानते हैं। "प्रेम, साहित्य के जगत मे, रस की हृदय को छू लेने वाली मीठी किन्तु पुरुषार्थमयी सुकोमलता का नाम है।" कवियो ने प्रेम को विकारहीन एव तत्त्व ज्ञान से भी परे की वस्तु माना है। भक्ति और मुक्ति दोनो बिना प्रेम के प्राप्त नही की जा सकती। स्वय भगवान प्रेम बधन मे बँध कर रहते है। पहले प्रेम का अर्थ अत्यन्त सकुचित था। वह 'कच', 'कुच' और 'कटाक्ष' के भीतर ही सीमित मान लिया गया था। परतु, अब प्रेम परिवर्तन की लहरो से भीगता जा रहा है। उसका अर्थ अब विस्तृत हो रहा है। प्रेम के गीत अब 'जमाने का भाग्य लिखेंगे।'

भक्ति को वे मुक्ति से अधिक महत्त्व देते है। भक्ति को वे 'मुक्ति के माथे की लाली, मुक्ति के सुहाग का सिन्दूर बिन्दु' कहत है। "भक्ति की भाजी बिना लौन' के सामने 'मुक्ति की महमानी' का मूल्य ही कितना? वृन्दावन के राजा-रानी के यहाँ चारो पदार्थ मजूरी करते है और मुक्ति वहाँ पानी भरती है --

"वृन्दावन के राजा हैं दोउ श्याम राधिका रानी,
चारि पदारथ करत मजूरी मुक्ति भरत जहँ पानी"

माखनलालजी का कहना है कि जिनमे भाव नही, वे कविता नही

कर सकते। कवि की भाषा मे सदैव हृदय-सत्य की अभिव्यक्ति होती है। कविता विलास या विनोद नही, वह तो एक महान निर्माण है। कुछ लोगो की धारणा है कि विज्ञान की बाढ मे कविता बह रही है। पर यह अत्यन्त भ्रान्त धारणा है। सूखी तुकबदियाँ भले ही विज्ञान की बाढ मे बह जावे, वास्तविक कविता का विज्ञान कुछ नही बिगाड सकता। कविता तो युग को प्रेरणा और प्रगति प्रदान करती है। जब तक मानव-जीवन मे मनोभावो का महत्व है तब तक कविता अमर है। काव्य और कला की मृत्यु तो अनुकरण मे है। परन्तु इस क्षेत्र मे भी भाव और भावाभिव्यक्ति के साधनो का अनुकरण तो हुए बिना नही रह सकता। परतु भाव और शब्द जब पास पास आ जाते है तो उनसे भी नव-नव अर्थों का उदय होता है। अत यह अनुकरण अनुकरण नही कहा जा सकता।

इस प्रकार हम देखते है कि 'साहित्य देवता' मे उन्होंने अपने साहित्य-सम्बन्धी समस्त विचारो को सकलित कर दिया है। साहित्य की परिभाषा कला और कलाकार, साहित्य के विषय, सच्चा साहित्यकार कला और शास्त्र, कवि और प्रकृति, आज का साहित्य, गरीबो के प्रति प्राचीन साहित्य की उपेक्षा और नव-युग की उनके प्रति जागरुपता, आधुनिक साहित्य मे प्रेम का स्वरूप, वास्तविक साहित्य, वैचारिक मतभेद, साहित्य मे नियम, आज की साहित्यिक आवश्यकताएँ, साहित्यकार का उत्तर-दायित्व, कविता आदि विषयो पर माखनलालजी ने अपने प्रौढ विचार अत्यन्त भावुक भाषा मे अभिव्यक्त किए है। यह निस्सदेह कहा जा सकता है कि इतने प्रौढ विचार-भडार को इतने कलात्मक ढग से अभिव्यक्त करने वाले बहुत कम कृती है और होते है। कला के कचन नीराजन मे भावुकता का घृत और उसमे विचारो की ज्योति 'साहित्य देवता' के मदिर को जगमग कर रही है।

उनकी गद्य शैली की सामान्य विशेषताएँ—

माखनलालजी अत्यन्त भावुक प्रकृति के व्यक्ति है। उनकी यही भावुकता उनके साहित्य मे भी बिखर गई है। उसके प्रबल वेग के कारण उनका गद्य काव्य बन गया है। भावुक हृदय की भाषा भी पद्य की रँगीनियो और उपकरणा से सज्जित हो गई है। इनकी भावुकता अनेक रूपो मे व्यक्त हुई है। वह कभी कल्पना का रूप ग्रहण कर लेती है तो कभी प्रेरणा और स्फूर्ति का। कही-कही भावना की अतिशयता और कल्पनातिरेक के कारण भाव अस्पष्ट भी हो जाते है। कल्पना का एक उदाहरण यह है—"जबान की पनिहारिन, दिग्विजय की वायु तरगो पर चढ कर, बन्धन रहित रूप से दौडने वाली ध्वनि है। उसमे सौ खून माफ हैं किन्तु वह अभी-अभी है और अभी नही है। किन्तु सूझ के कँटीले पौधे मे से जब कलियाँ चटख कर कलम पर आया करती है तब वे कितनी ही बार कलम होकर ही आया करती है। प्रतिभा की नव-वधू स्याही से सास जैसा और कागज से ससुर जैसा भय मान कर पद निक्षेप किया करती है। किन्तु वाणी की स्वच्छन्दता मे जितना कठोर मरण है, स्याही और कागज के भय मे अनन्तकाल को बेध सकने वाली उतनी ही महान अमरता है।"

भावुकता चरम सीमा पर वहाँ पहुँच जाती है जहाँ वे भावावेश मे आकर युग-यौवन का कार्य-रत होने के लिए आह्वान करते है। 'असहाय नाश या अमर निर्माण' मे वे कहते हैं—"भाई मेरे, क्या आज ही जूड़ा डाल दोगे? यदि न डालोगे तो वज्रगति, वज्रजन्मा, वज्रव्यापी, वज्रमर्दन बूँदे क्या तुम्हारी कलम से नही उतरेगी। मुहम्मद को इलहाम हुआ था, ऋषियो ने प्रकाश देखा था—आओ आज तो पथ-दर्शन तुम्हे ही करना होगा—जन्म के जीवन के उभार के, उपहास के, रुचि के, अरुचि के, मोद के, मरण के मूल्य पर।"

परन्तु किसी भी वस्तु की एक सीमा होती है। सीमा से बाहर जब कोई वस्तु हुइ तो उसका महत्व भी घट जाता है। मर्यादा मे निर्माण की मधुर आँच छिपी है और मर्यादाहीन स्थिति मे विध्वस के अगारे। धीमी-धीमी आँच मे सुस्वादु भोजन पकाया जा सकता है, परन्तु धधकती हुई ज्वालाओ के सामने आने पर तो रोटी के चाँद को खग्रास ग्रहण लग जाता है। तात्पर्य यह कि किसी वस्तु का सीमित प्रयोग ही हितकर है।

माखनलालजी की भावुकता कही-कही सीमा तोडकर बह निकली है। ऐसे स्थलो पर वे क्या कहना चाहते है, इस बात का पता लगाना कठिन हो जाता है। भावातिशयता और कल्पनातिरेक के कारण वे कई स्थानो पर अस्पष्ट हो गए है। 'साहित्य देवता' मे वे कहते है—"आह, तुम कितने महान् हो ? इसीलिए लॉगफेलो बेचारा तुम्हारे चरण चिन्हो के मार्ग की कुञ्जी, तुम्हारे ही द्वार पर लटका गया है, मेरे मास्टर। चिड़ियो की चहक का सगीत मे और मेरी अमृत-निस्यन्दिनी गाय व्रजलता दोनो सुनते है। "सखि चलो सजन के देस, जोगन बनके धूनी डालेंगे"—मै और मेरा घोडा दोनो जहाँ थे वहाँ 'शम्भुजी' ने अपनी तान छेडी थी। परन्तु वह तो तुम्ही थे जिसने द्विपद और चतुष्पद का विश्व को निगूढ तत्व सिखाया।" इस प्रकार के अनेक उदाहरण उनके गद्य से ढूँढे जा सकते है। यह दोष उनके काव्य मे भी पाया जाता है। परन्तु इसके लिए उनका गद्यकार या पद्यकार दोषी नही ठहराया जा सकता। यह तो स्वय सपूर्ण वे ही है। निष्कर्ष यह कि वे एक भावुक लेखक है और उनकी भावुकता उनके साहित्य मे खूब छलकी है।

उनकी शैली की दूसरी विशेषता उसकी सानुप्रासिकता है। वे गद्य मे भी तुक मिलाने का प्रयत्न करने लगते है। तुकात शैली उन्हे प्रिय है। पारसी रगमचो पर जिन नाटका का अभिनय होता था उनमे इस शैली का प्रचुर प्रयोग हुआ है। कदाचित् यह उसी शैली का प्रभाव

हो। अब यहाँ पर प्रश्न यह है कि इस शैली का उनके निबधो पर क्या प्रभाव पडा है? इसके प्रयोग से उनके निबधो का सौन्दर्य-सबर्द्धन हुआ है या ह्रास? यह तो निस्सदेह कहा जा सकता है कि साधारण बोलचाल की भाषा मे अथवा अभिनेय नाटको मे इस शैली का प्रयोग सौन्दर्य साधक नही हो सकता। इससे एक प्रकार की कृत्रिमता उत्पन्न हो जाती है, परन्तु अनुप्रास एक काव्यालकार है। काव्य मे उसका प्रयोग अभीप्सित है। कुछ नाटक या निबध काव्यात्मक पद्धति के होते है। उनमे इस प्रकार की शैली का प्रयोग अनुचित नही कहा जा सकता। 'साहित्य देवता' के जिन निबन्धो मे इस शैली का प्रयोग हुआ है वे अत्यन्त काव्यात्मक है। वहाँ सानुप्रासिक शैली के प्रयोग ने सौन्दर्य-वर्द्धन ही किया है ह्रास नहीं। उदाहरण के लिए 'जब रसवन्त बोल उठे' का निम्नलिखित उद्धरण लिया जा सकता है—"रेवा का कल-कल, कली की चटख, पैजन की रुमझुम, बाँसुरी की तान, मृदग की धुमक, वीणा की मिठास और गभीर बादलो की तरह बिजली **वार** के साथ, बादल की प्रलयकर **हुकार** और इसके पश्चात् आँसुओ की तरह **बेकार**, असहाय रिमझिम-रिमझिम गिर कर, पुन अपनी मातृभूमि को गोद मे गिर पड़ना, यह एक कवि के अनेक **अवतार** है।" इसमे वार, हुँकार, बेकार और अवतार की लयात्मकता मे छोटे-छोटे, नपे-तुले, वाक्यो का समुदाय, बिगुल की आवाज पर कदम-कदम मिला कर चलते हुए सैनिको के समान बडा भला मालूम पडता है।

परन्तु किसी वस्तु का अत्यधिक मोह भी अच्छा नही होता। अनुप्रास के अत्यधिक आग्रह ने उसके कुछ अनपेक्षित बाते भी करवा ली है। 'वसुधा का पालतू काव्य' (पृष्ठ ७८) मे वे लिखते है—"हृदयवान मानव के **नाश** को **विकाश** कहा जाने लगा।" नाश के साथ तुक मिलाने की धुन मे लेखक ने विकास को विकाश लिख डाला है। यहाँ तालव्य

श नहीं दत्य स ही आवश्यक है। इस प्रकार के प्रयोग गद्य शैली को दूषित ही करते है, उसका सौन्दर्य नही बढाते।

उनकी शैली की तीसरी विशेषता उनकी चित्रमयता है। वे जो कुछ कहते है उसे एक चित्र के रूप मे उपस्थित करते है। चित्रात्मक शैली के प्रयोग से रचनाओ मे सुबोधता, सामासिकता और चमत्कृति आ जाती है। यद्यपि सुबोधता और चमत्कार साधारणत सहगामी नही होते, परतु इस शैली की यह विशेषता है कि इसमे वे दोनो साथ चलते है। वास्तव मे चित्र-शैली काव्य की शैली है, पद्य की पूंजी है। परतु "चतुर्वेदी का गद्य क्या है, वह बिना छद का पद्य है।" (श्री सद्गुरुशरण अवस्थी)। इस बिना छद के पद्य मे भी उन्होने इस शैली का प्रचुर प्रयोग किया है। 'जब रसवती बोल उठे' मे उन्होने लिखा है—"प्रतिभा की नव-वधू, स्याही से सास जैसा और कागज से ससुर जैसा भय मान कर पद-निक्षेप किया करती है।" इसमे घरेलू जीवन का एक सुदर चित्र सामने रखा गया है। नव-वधू एक तो अपने सास-ससुर के सामने आती ही नही और आती भी है तो धीरे-धीरे सकुचाती हुइ। इसी प्रकार प्रतिभा-सपन्न व्यक्ति एक तो लिखते ही नही और लिखते भी है तो बहुत कम। एक दूसरा उदाहरण 'साहित्य देवता' (पृष्ठ ६) से लीजिए—"परतु मेरा और विश्व के हरियालेपन का उतना ही सबध होता है जितना नर्मदा के तट पर हर-सिंगार की वृक्ष-राजि मे लगे हुए टेलिग्राफ के खम्भे का नर्मदा से कोई सबध हो।" सूखा खम्भा नर्मदा-किनारे रहकर भी उसमे से जल लेकर हरा नही हो सकता, बढ नही सकता। वह नर्मदा के तट पर रहते हुए भी शीतल जल का स्पर्श नही कर सकता। इसी प्रकार यदि साहित्य नही होता तो मनुष्य प्रकृति की अपार सुषमा मे रह कर भी उसका अनुभव नहीं कर पाता, उस सौन्दर्यानुभव के द्वारा आनदित नही होता और न अपना विकास ही कर पाता। एक चित्र देकर लेखक ने

मनुष्य की अविकसित आदिम मानसिक अवस्था का बडा सु दर परिचय दे दिया है। चित्रशैली की सुबोधता सामासिकता एव चमत्कृति माखन लालजी की रचनाओ मे पूर्ण रूप से पाई जाती है।

उपर्युक्त उद्धरणो से एक बात और भी स्पष्ट होती है। उनके समस्त चित्र मानव जीवन के ही चित्र है। उनकी नव वधू, उनका टेलिग्राफ का खम्भा हमारे देखे परखे और जाने पहचाने है। दैनिक जीवन के पथ पर वे हमे कई बार मिलते है। उनसे हमारा घरोवा है। वे सुदूर कल्पना देश के अनजाने परदेशी नही, जो हमारी समझ के कमरे मे शीघ्र प्रवेश न करते हो। निष्कर्ष यह कि उन्होने जो चित्र चुने है वे हमारे निकट जीवन के ही चित्र है। परपरागत उपमानो का प्रयोग न करके नव जीवन से उपमान-चयन करना उनके साहित्य को वास्तविक प्रगतिशील साहित्य की कोटि मे परिगणित करा देता है। इतना ही क्यो टेलिग्राफ के खम्भे और कालेज मे पढती 'प्रेयसि' तो नवीन विज्ञान एव नूतनतम सभ्यता के प्रतीक है। इनका अपने साहित्य मे यथोचित प्रयोग कर माखनलालजी ने सिद्ध कर दिया है कि वे अपने युग से एक कदम भी पीछे नही है। आधुनिक साहित्य मे शताब्दियो पूर्व के प्रयोग करके भी कई साहित्यकार प्रगतिवादी बने हुए है। परतु माखनलालजी इस प्रकार के प्रगतिवादी नही है। उनकी शैली मे यदि नव युग के उपमानो का सचय है तो उनके विचारो मे भी नव-जीवन के स्वर सुनाई देते है।

माखनलालजी को विरोधाभास अत्यत प्रिय है। क्या गद्य क्या पद्य—सर्वत्र उन्होने इसका प्रयोग प्रचुर परिमाण मे किया है। उनके सूक्ति-प्रधान होने का एक कारण यह भी कहा जा सकता है। "तुम नाथ नही हो, इसीलिए कि मै अनाथ नही हूँ।" "वह मेरे घर ही मे रहता है पर जीवन भर हम एक दूसरे से नही मिले।" "सोते हुए अखड नरमुडो का जागरण।" "उनका एकात अस्तित्व की बस्ती है और उनकी निकम्मी

घड़ियो कला के अस्तित्व का श्वासोच्छ्वास हैं।" इन उद्धरणो मे विरोधा-भास का ही चमत्कार है। 'दूरी की निकटता' शीर्षक लेख तो सशीर्ष विरोधाप्लावित है।

माखनलालजी के लेखो मे उनकी भाषण शैली का पूर्ण प्रभाव है। वे जितना अच्छा लिखते है उतना ही अच्छा बोलते भी है। उनके लिखने और बोलने की भाषा एक है। 'कुछ लोग सरल लिखते और साहित्यिक बोलते है। कुछ लोग सरल बोलते और साहित्यिक लिखत है। चतुर्वेदीजी साहित्य लिखते और साहित्य बोलते है। उनके लेखनी और उनके भाषण मे पूर्ण सौहार्द है।' (श्री सद्गुरुशरण अवस्थी)। परिणाम स्वरूप भाषण-कला के अनेक गुण उनकी लेखनी मे स्वयमेव समा गए है। नाना प्रकार के सबोधन, भावावेश, अबाध प्रवाह, शृ खलाबद्ध विचार-धारा एव प्रेरणात्मक अथवा प्रश्नपूर्ण अत उनके लेखो मे उनकी भाषण-कला के प्रभाव के असदिग्ध सकेत है। 'असहाय नाश या अमर निर्माण' का अत इस प्रकार किया गया है—"भाई मेरे क्या आज ही जूडा डाल दोगे ? यदि न डालोगे तो, वज्रगति, वज्र-जन्मा, वज्र-व्यापी, वज्र-मर्दन बूँदे क्या तुम्हारी कलम से नही उतरेंगी ? मुहम्मद को इलहाम हुआ था, ऋषियो ने प्रकाश देखा था——आओ आज तो पथ दर्शन तुम्हे ही करना होगा——जन्म के, जीवन के, उभार के, उपहास के, रुचि के, अरुचि के, मोद के, मरण के मूल्य पर।"

माखनलालजी की गद्य शैली मे भी छायावाद की समस्त विशेषताएँ परिलक्षित होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे, छायावाद मे "भावावेश की आकुल व्यजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप सघटित करने वाली प्रचुर सामग्री" होती है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि माखनलालजी अत्यन्त भावुक प्रकृति के लेखक

हैं। उनकी रचनाओ मे भावावेश साद्यन्त सम रहता है। लाक्षणिक वैचित्र्य की भी उनके निबधो मे कमी नही है। "उस वाणी के स्वप्नो का जागरण, सेवाग्राम की झोपडी मे निवास करता है।" "और सपूर्ण अत्याचारो का करने वाला वह, जब अपने अत्याचारो की काली-काली भयावनी पृठ भूमि पर किसी सुकोमलता के कधे पर हाथ रख कर मुस्करा उठता है ।" इन गद्याशो मे 'वाणी के स्वप्नो का जागरण', 'सुकोमलता के कन्धे पर हाथ रखकर' प्रयोग लाक्षणिक ही है। 'स्फूर्तियो के बाग मे रूढियाँ लहलहाने लगी' मे अमूर्त स्फूर्तियो के लिए मूर्त बाग का प्रयोग हुआ है और सूक्ष्म सुकोमलता के कधे की कल्पना कर उसे प्रत्यक्ष आकार दिया गया है। 'सोते हुए अखड नर-मु डो का जागरण' मे विरोध का चमत्कार है। "रवा का कल-कल, कली की चटख, पैजन की रुम झुम, बॉसुरी की तान, मृदग की धुमक, वीणा की मिठास और गभीर बादलो की तरह बिजली के वार के साथ, बादल की प्रलयकर हु कार और इसके पश्चात् आँसुओ की तरह बेकार, असहाय, रिमझिम-रिमझिम गिरकर पुन अपनी मातृ-भूमि की गोद मे गिर पडना, यह एक ही कवि के अनेक अवतार हैं।' उपर्युक्त उद्धरण मे भाषा की कोमलता देखने लायक है। वास्तव मे माखनलालजी की भाषा कठोर कही भी नही हो पाई है। उन्होने सर्वत्र सरल, कर्ण-सुखद शब्दो का ही प्रयोग किया है। 'वह लचलचे पतन के खिलाफ इस पथ मे जावेगी।' के 'लचलच पतन' मे विशेषण-विपर्यय का सौन्दर्य समाहित है। मानवीकरण का एक सुन्दर उदाहरण 'जनता' शीर्षक लेख मे प्राप्त होता है। वह यह है—"रात्रि रूपे की बूटेदार साड़ी पहने, क्रान्तिकारिणि देवि, तुम्हारा स्वागत कर रही है। वह तुम्हारी उथल-पुथल मे वैधव्य को भी सौभाग्य समझने के लिए प्रस्तुत है यदि पुन प्रभात की आज़ाद किरण आकर तुम्हारे बन्दीखाने के द्वारो को खोले।"

इस प्रकार हम देखते है कि उनकी गद्य-शैली मे भी छायावाद के समस्त उपकरण प्रस्तुत है। प्रसादजी के नाटको पर आक्षेप लगाया गया है कि वे काव्यात्मक अधिक है। उनका कवि उनके नाटको मे भी मुखर हो गया है और फलत उनके नाटक क्लिष्ट हो गये है, वे जन-साधारण के काम के नही है। ठीक ये ही आक्षेप 'साहित्य देवता' के निबधो पर भी लगाए जा सकते है।

यहाँ पर एक प्रश्न उठाया जा सकता है कि छायावाद के इन उपकरणो का उनके निबधो पर क्या प्रभाव पडा ? छायावाद वास्तव मे काव्य जगत की वस्तु रही है। गद्य की सीमा मे उनका प्रवेश अधिक हितकर कभी नही हुआ। प्रसादजी के नाटको की अनभिनेयता का एक प्रमुख कारण उनकी काव्यात्मकता है। नाटको मे तो किसी सीमा तक काव्यात्मकता के लिए स्थान है। परतु वे निबध जो विचार प्रधान है, जिनमे विचारो की प्रेषणीयता ही ध्येय होता है, उनमे इस प्रकार की शैली का प्रयोग ध्येय व्यवधान ही कहा जायगा। तात्पर्य यह कि छायावादी उपकरणो के प्रयोग ने उनके निबधो को काव्य के समीप ही लाने मे सहायता पहुँचाई है।

उनकी शैली की एक विशेषता उनके वाक्य-प्रयोगो मे भी छिपी हुई है। वाक्यो के विविध प्रकार के मोड शैली को आकर्षक बना देते है। कभी क्रिया को कर्त्ता और कर्म के मध्य मे रख देते है तो कभी उसे अदृश्य ही कर देते है। कभी-कभी बेचारे कर्त्ता को सबसे अत की 'सीट' मिलती है। ऐसे अनेक प्रयोगो द्वारा वे शैली को आकर्षक बना देते है।

उक्ति-वैचित्र्य के लिए उन्होने कही विरोधाभास का चमत्कार उत्पन्न किया है तो कही कल्पना के कौशल दिखलाए है। उपमा-रानी का स्वागत सर्वत्र किया गया है, साथ ही रूपक-कुमार का भी यथोचित सम्मान हुआ है। कही-कही तो दादा को बिहारी बाबा भी याद आ गए

है—"चील अण्डे डाल रही है, साँप मोर की पूँछ मे दुबका जा रहा है, चीता मारे प्यास के गाय के बछड़े के गले से बहता पसीना चाट रहा है, और तुमने धीरे से कह दिया—'माई, तरखो आइयो।" ससार की यही दशा बिहारी के 'दीरघ दाघ निदाघ' ने भी तो कर दी थी —

कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ॥

अतर केवल इतना ही है कि यहाँ चील ने अडे अधिक डाल दिए है।

भाव-पुष्टि और भाव-साम्य का भी माखनलालजी ने यथा-स्थान प्रयोग किया है। भाव-पुष्टि मे एक ही भाव को अनेक उदाहरण देकर पुष्ट किया जाता है। मतभेद के होते हुए भी एकता स्थापित की जा सकती है—इस बात को सिद्ध करने के लिए वे कहते है—"वाद्यो के भिन्न-भिन्न होने से जब गीत मे मिठास आता है, वृक्षो और पुष्पो की विभिन्नता मे जब बाग गर्वीला नजर आता है और समार के सातो रग जब एक उज्वल रग बना देत है तब कौन कहता है कि विभिन्नता मे एकता स्थापित नही की जा सकती?" भाव-साम्य का एक उदाहरण मैने यह चुना है—"एक सज्जन 'ग्रामसिंह' से बेतरह नाराज थे। सेवा का व्रती वह उन्हे जैसे दुश्मन देखे। एक दिन, एक मेले मे से उनके बच्चे, उसी जानवर की सूरत का एक खिलौना ले आये। आखिर उन सज्जन पुरुष ने उसकी दुम इस आशा से घिस-घिस कर छोटी कर दी कि वह कुत्ता बिल्ली दीखने लगे। किन्तु परिणाम तृतीय पुरुषत्व को प्राप्त हो गया। वह कुत्ता रहा नही और बिल्ली दीख सका नही। 'पूजा-गीत' कहे जाने के 'उम्मीदवार' इन तुकबदियों की भी यही दुर्गति हुई। ये गीत पूजा रहे नही, प्रेम बने नही, अत यह निर्माल्य शिखर की ऊँचाई से भागते हुए, निम्नगा हो गये, और 'हिमतरगिना' नाम पा गये।"

माखनलालजी की भाषा उनकी अपनी है। उसमे फारसी और अॅग्रेजी के प्रचलित शब्दो का निधडक प्रयोग हुआ है। फारसी शब्दो का प्रयोग अनुपात मे अधिक है। बेदाग, नजर, हरगिज, मर्जी, खयाल, जायज, महज, आशिकी, ऐयाशी, ना-काफी, चीज, तबीअत, दरख्वास्त, कद्र, कैफियत, खिलाफ, हिमायत, कमबख्त, जिक्र आदि शब्दो का भडार भरा हुआ है। अॅग्रेजी के भी कुछ शब्द अपना लिए गए है, जैसे—नोटिस, अटेचीकेस, अपील, लाइसन्स, रिकार्ड, पेज, डिक्शनरी, क्रास-वर्डपज़ल, हाल्ट इत्यादि। परतु सख्या मे ये फारसी शब्दो की अपेक्षा कम है। Inferiority complex और Electric wire fence को उनकी मूल लिपि मे ही स्वीकार कर लिया गया है। इसके पश्चात् क्रमानुपात मे सस्कृत तत्सम शब्दो का स्थान है जैसे—त्रिकालाबाधित, अत्यताभाव, आनदोत्पादक, वर्षानुवर्ष, स्वकृत आदि। ये सधि सयुक्त शब्द है। कुछ शब्द बोलियो के क्षेत्र से भी ग्रहण कर लिए गए है जैसे—लालटेन, दीवालखोरे, लचलचे, चौकन्ना, कानाफूसी, बागड़, मॉजा आदि। उन्होने कुछ स्वकृत शब्दो का भी प्रयोग किया है। 'ग्रामसिंह' का प्रयोग कुत्ते के अर्थ मे और 'मनमोहन' का प्रयोग सौन्दर्य के अर्थ मे हुआ है। ये उनके निजी प्रयोग है।

इस प्रकार हम देखते है कि विविध क्षेत्रो से शब्द-सचय कर माखन-लालजी ने हमारी भाषा को अत्यत समृद्ध कर दिया है। भाषा मे सजीवता एव शक्ति उसकी उदार ग्राहक वृत्ति के ही कारण आती है। सस्कृत को मृत भाषा इसीलिए कहा गया है कि उसने अपने इस स्वभाव का त्याग कर दिया था। पाणिनि की दृढ सीमा बन्दी के पश्चात् कोई भी परदेशी शब्द इसमे प्रवेश न पा सका। फल-स्वरूप भाषा मे जड़ता आ गई। भाषा स्वभाव से ही सरल एव गतिशील होती है। भाषा एक

बहती हुई जलधारा है। उसके उद्गम से तो उसे जल मिलता ही है, साथ ही उसमे अनेक सहायक धाराएँ भी यत्र-तत्र से मिल कर उसकी जीवन-वृद्धि करती है। यदि ऐसा न हो तो उसके सूखने का डर रहता है। हिन्दी के आसपास सदियो से उर्दू-साहित्य का जाल बिछा है और अँग्रेजी से भी उसका सदियो का सम्पर्क है। यदि इन भाषाओ मे आपस का लेन-देन न हो तो यह एक अत्यत अस्वाभाविक बात होगी और भाषा-विज्ञान भी ऐसी बात का समर्थन नही करेगा। माखनलालजी ने अपनी हिन्दी मे फारसी और अँग्रेजी शब्दावली को स्थान देकर अपनी उदार-वृत्ति का परिचय तो दिया ही है, साथ ही भापा की शक्ति को भी बढाया और उसे सरल, सुदर और जीवत कर दिया है। उनकी भापा म जो प्रवाह है और उनकी भाषा का जो प्रभाव पडता है, वह हिन्दी साहित्य मे अपनी विशेषता रखता है।

फारसी के शब्द प्रयोग इनमे दो प्रकार के मिलते है। एक तो वे है जिन्हे हिन्दी ने पचा लिया है। इनका प्रयोग माखनलालजी ने खूब किया है और बडे अच्छे ढग से किया है। इस प्रकार के उदाहरण मैं ऊपर दे चुका हूँ। परतु दूसरे प्रकार के कुछ ऐसे भी प्रयोग है जिन्ह हिन्दी नही पचा सकी। ये शब्द हिन्दी की चोहद्दी के बाहर रह जाते है। 'मकतल', 'रश्क' इसी प्रकार के शब्द है। ये हिन्दी क सुपरिचित एव जन-प्रचलित शब्द नही कहे जा सकते। हम हिन्दी मे उतने ही शब्दो को मिला सकते है जितने हिन्दी ने पचा लिए है, या जितने वह पचा सकती है। इससे अधिक की समाई हमारे पास नही है।

कुछ शब्द ऐसे भी है, जो परिचित होते हुए भी अनावश्यक आ गए हैं। उदाहरण के लिए आशिकी शब्द को ही लीजिए। हिन्दी मे 'आशिकी'

का आयात आवश्यक प्रतीत नहीं होता। यहाँ प्रेम के बाजार मे प्रेम, प्रणय, प्यार आदि अनेक शब्द मारे मारे फिर रहे है, यह माल-गोदाम तो पहले से ही ठसाठस भरा है, उसमे और अधिक माल ठूँसने की क्या आवश्यकता है?

कुछ शब्दो से माखनलालजी को मोह है। गद्य और पद्य दोनो मे उन्होने इनका प्रचुर प्रयोग किया है। 'दिलवर', 'दिलदार', 'राजा' ऐसे ही शब्द है।

कुछ त्रुटिपूर्ण प्रयोग भी यत्र-तत्र ढूँढने पर मिल जाते है। 'मौसम मे उत्पन्न होनेवाली कला त्रिकालबाधित या अमर नहा होती।' (पृष्ठ ७५)। इसमे त्रिकालबाधित का प्रयोग त्रिकालाबाधित (त्रिकाल अबाधित) के लिए हुआ है। स्नेह, गर्वीला, निरुद्देश्य जैसे कसे हुए शब्दो को स्वरभक्ति आदि के द्वारा सनेह, गरबीला, निरुद्देश मे परिवर्तित कर ढीला पायजामा पहना दिया है। 'कोमल हरीतिमा मे और नन्ही उठान मे ही ये काँटे जनने थे, उत्थान १ (पृ० १३९)। इसमे 'जनने थे' ग्राम्य-प्रयोग हो गया है। हरियाली शब्द सज्ञा है। परतु माखनलालजी ने उसका प्रयोग विशेषण जैसा किया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्याशो को लिया जा सकता है,—'लहरो की कुरबानी से हरियाली होने वाली भूमि पर', (पृ० ७४), 'कितनी हरियाली झाडी लगी है' (पृ० १४०)। हरियाली चल कर विशेषण के घर आई तो आई पर वह आकारान्ती पेन्ट पहन कर पुरुष भी बन बैठी—"मेरी दया के बादल बरस कर विश्व को हरियाला करते है।" (पृ० ११३)। 'मै भी हल उठाता हूँ और सारी हरियाली तोड डालता हूँ'—मे हरियाली का शुद्ध प्रयोग भी हुआ है। निष्कर्ष यह कि लेखक शब्द के शुद्ध प्रयोग से अवगत है, पर न जाने क्यो वह उसका अशुद्ध प्रयोग कर देता है।

इन कतिपय नगण्य नुक्ताचीनियो को छोड कर उनकी शैली मे और कोई दोष नही निकाला जा सकता। इस विश्लेषण-पद्धति को छोड कर जब हम उनकी समस्त शैली को अखड रूप मे देखते है, तब उसका वास्तविक महत्त्व स्पष्ट होता है। वे और उनकी शैली अभिन्न है। उनकी शैली पर उनके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रभाव है। जिसने उन्हे कभी न देखा हो, वह उन्हे उनकी शैली मे साक्षात् देख सकता है, अथवा जिसने उनकी शैली को न देखा हो, वह उनमे उनकी शैली को देख सकता है। उनके निबध उनकी आत्मा के अभिन्न अग है। प्रबल भावुकता, ओजस्वी भाषण कला और कलात्मक अभिव्यक्ति उनमे और उनकी शैली मे समान रूप से पाए जाते है। 'साहित्य देवता' के प्रथम पृष्ठ पर ही हमे इस बात का आभास मिल जाता है—

"मै तुम्हारी एक तस्वीर खींचना चाहता हूँ।"
"परतु भूल मत जाना कि मेरी तस्वीर खीचते-
खीचते तुम्हारी भी एक तस्वीर खींचती चली
आ रही है।"

प्रसादजी के निबध 'काव्य-कला और अन्य निबध' नाम से प्रकाशित हुए है। उनके निबधो मे वे, वे नही है। उनका व्यक्तित्व उनके निबधो से सर्वथा पृथक् खड़ा है। प्रसादजी मूलत कवि है। उनका कविरूप उनके नाटको और कहानियो मे तो झॉक उठा है, परतु निबधो मे यह बात नही है। उनके निबध नितात शास्त्रीय एव वस्तु-प्रधान है। हमे प्रसादजी के वास्तविक रूप का दर्शन उनके निबधो मे नही होता। उनके निबध उनसे भिन्न है, परतु माखनलालजी के निबध उनसे अभिन्न है। उनकी शैली सरस और उनके निबध व्यक्तित्व-प्रधान है। उनके निबधो के साथ न्याय तभी किया जा सकता है जब हम उनके निबधो को उनसे अभिन्न मान कर चले।

एक विद्वान आलोचक का मत है कि यदि हम उनके निबन्धो को उनसे अभिन्न मानकर चलेगे तो यह भावुकता होगी और इससे विवेचना का मार्ग अवरुद्ध हो जायगा। परन्तु, किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप मे ग्रहण करना क्या भावुकता होती है? यह एक प्रश्न है, जिसका उत्तर, मै सोचता हूँ, निषेधात्मक ही होगा। किसी वस्तु को उसके यथार्थ रूप मे ग्रहण न करना वैज्ञानिक 'दृष्टिकोण' नही कहा जा सकता। माखनलालजी के निबन्ध उनसे अभिन्न है। इस यथार्थता को कोई अस्वीकार नही कर सकता। फिर, यदि हम उनके निबन्धो को उनसे अभिन्न मानकर चले तो इसमे भावुकता कहाँ है? रही विवेचना का मार्ग अवरुद्ध होने की बात, तो उसके लिए भी कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व प्रधान निबधो मे लेखक को उसके निबन्धो से अभिन्न मान कर चलने मे ही उसकी आलोचना के साथ न्याय किया जा सकता है। माखनलालजी के निबन्ध व्यक्तित्व-प्रधान है। उनके व्यक्तित्व को उनके निबन्धो से पृथक् नही किया जा सकता। यदि हम उन्हे उनके निबन्धो से निकाल देगे तो फिर उनके निबधो मे बच ही क्या जायगा?

सक्षेप मे, माखनलालजी की शैली के सत्तम स्वर उनकी शक्ति और साधना के परिचायक है। उनमे जितना प्रबल भावावेग है, उनकी अभिव्यजना-शक्ति भी उतनी ही समर्थ है। सूझ की तरगो मे उनके भाव डूबते-उतराते हुए पुष्प की भॉति वह चलते है। यह तरगो का तार लगातार चलता रहता है। प्रबल भावावेग, प्रौढ अभिव्यक्ति, भाषा का अबाध प्रवाह, भाषण-कला का व्यग्य विनोद, कलात्मक अभिव्यजना का आग्रह आदि बातो के कारण हिन्दी-साहित्य मे उनकी शैली का एक विशिष्ट स्थान है। अनेक लेखको ने उनकी शैली का अनुकरण किया। इसी से उनकी शैली की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

'साहित्य देवता' के गद्य रूप—

'साहित्य-देवता' मे प्रधानत तीन प्रकार के गद्य-रूप दृष्टिगत होते हैं—(१) गद्य गीत, (२) गद्य काव्य, (३) शुद्ध गद्य। गद्य गीत की प्रधान विशेषता उसके भाव की एकतानता होती है। उसमे एक ही भाव साद्यत स्वरित होता है। तीव्र भावानुभूति की प्रावाहिक अभिव्यक्ति ही गीत का प्राण-तत्व कही जा सकती है। गद्य होने के नाते इसमे अतिम तुक नही होती। अत किसी तीव्र भावानुभूति की अतुकात प्रावाहिक अभिव्यक्ति को गद्य-गीत कहा जा सकता है। 'साहित्य-देवता' के अतिम पृष्ठो मे गद्य-गीत के अनेक उदाहरण प्राप्त होते है। 'आशिक', 'असहाय श्याम-घन', 'तुम आने वाले हो', 'मुरलीधर', 'गृह-कलह', 'इसो पार', 'मोहन' आदि गद्य-खड इसी प्रकार के है। इन निबधो मे रवीन्द्रनाथजी की 'गीताजलि' का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। एक तुक को छोड कर इनमे गीति-काव्य के समस्त तत्व विद्यमान है। उदाहरण के लिए 'तुम आने वाले हो' का निम्नाकित अश द्रष्टव्य है —

"मेरा सारा बाग, बिना मौसम के ही फूल उठा,

—इसलिए कि तुम आने वाले हो।

और फूल भी नीले हैं, पीले है, लाल हैं, हरे है, बैंगनी है, नारगी भी है।

मगर इन फूलो पर गूँजने वाले परिन्द सब एक ही रग के है,

"कृष्ण, श्याम, काले।"

'—के साथी से—' मे वे कहते है—

"मेरे स्वर मे स्वर न मिलाओ गायक, मै दर्शको की बैठक मे से गुनगुना उठा हूँ।

मुझ पर दर्शक हँस उठे हैं, निकट के मुझसे दूर हो रहे है, दूर के मुझ पर अगुली उठा रहे है,—इन्हे तुम अपने पर न उठवाओ।

मै तो तुम्हारे साथ उठने आया था गायक, तुम मेरे स्वर के साथ किस उतार की ओर चले ?

जिस तरह जी की कालिमा और जीभ का राम नाम दोनो एक दूसरे से दूर रह लेते है, गायक उतनी ही दूर मुझसे तुम्हे रहना होगा।"

गद्य-काव्य गद्य गीत की अपेक्षा अधिक बडे होते है। इनमे कल्पना-तत्व की प्रधानता होती है। जो अतर काव्य और गीत मे होता है वही अतर गद्य-काव्य और गद्य-गीत मे होता है। काव्य का गेय होना आवश्यक नही, पर गीत का प्राण ही गेयता है। काव्य मे एकाधिक भावो की अभिव्यक्ति हो सकती है, परन्तु गीत मे भाव की एकतानता नितात आवश्यक है। काव्य कल्पनाश्रित होता है, गीत भावाश्रित। गद्य काव्य मे यद्यपि कल्पना प्रधान होती है, फिर भी भावुकता का उसमे अत्यताभाव नही होता। 'साहित्य देवता', 'मुक्ति भरत जहॅ पानी', 'जनता', 'शस्त्रक्रिया', 'बिन्दु सिन्धुत्व का दावेदार', 'जब रसवती बोल उठे', 'सदेश वाहक', 'न सधने वाला सौदा', 'वह वाणी', 'लहरे चीर विजया मना', शीर्षक निबन्ध गद्य-काव्य के उदाहरण है। 'साहित्य-देवता' मे वे कहते है —

"'कौन-सा आकार दूॅ ? मानव हृदय के मुग्ध सस्कार जो हो ! चित्र खीचने की सुध कहाॅ से लाऊॅ ? तुम अनन्त जाग्रत आत्माओ के ऊॅचे और गहरे,—पर स्वप्न जो हो ! मेरी कली कलम का बल समेटे नहीं सिमटता। तुम कल्पनाओं के मदिर मे बिजली की व्यापक चकाचौध जो हो ! मानव-सुख के फूलों और लडाके सिपाही के रक्त-बिन्दुओं के सग्रह, तुम्हारी तसवीर खीचूॅ मै ? तुम तो वाणी के सरोवर मे अन्तरात्मा के निवासी की जगमगाहट हो। लहरों से परे, पर लहरों मे खेलते हुए। रजत के बोझ और तपन से खाली, पर पक्षियों, वृक्ष-राजियों और लताओ तक को रुपहलेपन मे नहलाये हुए।"

'जनता शीर्षक निबध का यह काव्यत्व भी देखने योग्य है '——

"रात्रि रूपे की बूटेदार साडी पहने, क्रान्तिकारिणि देवि, तुम्हारा स्वागत कर रही है। वह तुम्हारी उथल पुथल मे वैधव्य को भी सौभाग्य समझने के लिए प्रस्तुत है यदि पुनः प्रभात की आजाद किरण आकर तुम्हारे बन्दीखाने के द्वारो को खोले।"

"तो लो, कोमलता से बनी मेरी सहस्र-सहस्र कर मालायें अपने क्रूरतम रूप मे समर्पित है। कलकठी की होड लेने वाला कलरव अघटन-घटनासूचक कोलाहल के रूप मे है। अब श्रद्धा भी गुमराह न कर पायेगी, धीरज भी डाका न डाल पायेगा। अब अपने चद्र जैसे प्रकाशित पुत्र की बलि के मूल्य पर भी उषा का स्वागत होने ही पर मै अपने शस्त्र रखूँगी।"

उनके गद्य काव्य के भी अनेक भेद किए जा सकते है। 'साहित्य-देवता', 'जनता', 'न सधने वाला सौदा', 'तस्मात् मह्य मे नम' सवाद-शैली मे लिखे गए है। लेखक ने दो पात्रो की कल्पना कर ली है। इन दो पात्रो मे से एक तो स्वय लेखक ही होता है और दूसरा पात्र कल्पित। पारस्परिक प्रश्नोत्तरो से लेख का कलेवर बढता जाता है। उदाहरण के लिए 'जनता' का यह वार्तालाप लिया जा सकता है——

"यह अगडाई, यह आलसी, यह थिथिलता तेरी ?"
"एकरसता मेरा स्वभाव है। शान्ति मेरा जीवन है।"
"पर तुम्हे भयकर होते कितनी देर लगती है ?"
"मै तो समुद्र की लहरो के समान फैली हुई हूँ, एक दूसरे से टूटी हुई, जल-बिन्दुओं मे बॅटी हुई सतह के बन्दीखाने मे रहने वाली मेरी अल्पता से बडप्पन की आशा क्यो करते हो ?"

एक प्रकार के गद्य-खड वे है जो शुद्ध लेख कहे जा सकते है। इनमे

ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने लिखने के लिए ही लिखा है। इनमे वह सवादादि की कल्पना नही करता। 'साहित्य देवता', 'जनता' जैसे निबधो मे प्रतीत होता है कि दो पात्र आपस मे कुछ बोल रहे है, 'जब रसवती बोल उठे', 'सदेशवाहक' मे ऐसा लगता है मानो लेखक प्रलाप कर रहा है। परतु 'मुक्ति भरत जहँ पानी', 'बिन्दु सिन्धु का दावेदार', 'वह वीणा' इस प्रकार के लेख नही है। इन लेखो पर किसी सवाद, या प्रलाप का बाह्यारोप नही है। ये शुद्ध लेख-पद्धति पर लिखे गए है। 'जब रसवती बोल उठे' और 'सदेशवाहक' निबधो मे प्रलाप-शैली का प्रयोग हुआ है। 'सदेशवाहक' मे उन्होने लिखा है—

"तुम कौन हो?

क्या तुम ज्योतिषी हो? तुमने आने वाले जमाने के बहुत पहले, जो कह दिया, उसे हमने ज्यो-ज्यो समय का चक्का घूमता गया, सच होते पाया। हमने ज्योतिष के पारगत के पारगत तुम्हे कभी नही सुना, फिर तुम, ऐ वक्ता! भविष्य कैसे कह देते हो? यदि ज्योतिषी नही हो, तो क्या तुम स्वय ज्योति नही हो, जिससे दूर तक का अन्धकारमय जमाना कट कर, वह सुदूर छुपी हुई अपने हृदय की बात बता देता है?"

'शस्त्रक्रिया' को भी इसी कोटि के अतर्गत परिगणित किया जा सकता है।

'साहित्य देवता' के तीसरे प्रकार के निबध विचारात्मक गद्य कहे जा सकते है। इनमे लेखक को जो कहना है वह निरावरण रूप से स्पष्ट कह दिया गया है। इनमे विचारो की प्रधानता है। 'अगुलियो की गिनती की पीढी' 'बैठे बैठे का पागलपन' 'सवाददाता' जैसे निबध इस कोटि मे रखे जा सकते है। 'अगुलियो की गिनती की पीढी' मे वे लिखते है—

'कलाकार तो भूतकाल को, सुनहले भूतकाल को भी, अपनी अतर की आँखो की छोरो से इसलिये छूता है कि वह शक्ति भर भूतकाल की गहराई माप कर अपनी आकाक्षा का एक माप बना ले और उसको उठा कर जब वह भविष्य की ओर रख दे और उससे कुछ आगे अपनी कला-बिन्दुओ की सीमा खीच दे तो विश्व मे, युग से होड़ लेती हुई उसे अपनी एक अमर पीढ़ी दिखाई दे।"

विचारात्मक गद्य मे भी स्पष्ट रूप से भिन्न-भिन्न शैलियो का प्रयोग किया गया है। कुछ निबधो मे विवेचना प्रधान है, कुछ मे व्यग और कुछ निबधो मे उद्वेग एव प्रेरणा प्रधान है। 'अगुलियो की गिनती की पीढी', 'बैठे बैठे का पागलपन', 'गिरधर गीत है, मीरा मुरली है' और 'जीवन का प्रश्न-चिन्ह——स्त्री' विवेचनात्मक शैली मे लिखे गए है, 'नीलाम', 'वसुधा का पालतू काव्य', 'असहाय नाश या अमर निर्माण', 'अशस्त्रधारी पुरुषार्थ' और 'तहरे चीर विजया मना' शीर्षक निबधो मे उद्वेगपूर्ण प्रेरणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है तथा 'महत्त्वाकाक्षा की राख' और 'सवाददाता' व्यग्यात्मक शैली मे लिखे गए है। इन सबसे पृथक् 'जोगी' रूपक-पद्धति का एकमेव प्रयोग है।

इन विशेष शैलियो के प्रयोग तो भिन्न-भिन्न निबधो मे हुए ही है, परतु उनकी कतिपय सामान्य विशेषताएँ न्यूनाधिक रूप मे सर्वत्र विद्यमान है। प्रलापशैली और उद्वेगपूर्ण प्रेरणात्मक शैली मे तो भावुकता का असदिग्ध आवेग है ही, परतु अन्य निबधो मे भी उसका अत्यताभाव नही हुआ है। इसी प्रकार उनकी कलाप्रियता किसी न किसी रूप मे प्रत्येक निबध मे झलक उठी है।

यह हुआ 'साहित्य देवता' का थोड़ा-सा विवेचन।

उपसंहार

उपसंहार

अब अत मे हमें यह देखना है कि माखनलालजी को छायावादी कवि कहा जा सकता है या नही और उनके महत्व पर दो शब्द कहने के उपरान्त इस प्रबध को समाप्त कर देना है। इसके लिए पहले आवश्यक है कि हम छायावाद-काव्य की विशेताओ को स्पष्ट रूप से हृदयगम कर ले। छायावाद को पूर्णत समझने के लिए हमे कतिपय आचार्यो और विद्वान विचारको के मतो को सामने रख कर चलना होगा।

आचार्य रामचद्र शुक्ल ने छायावाद को एक शैली के रूप मे स्वीकार किया है। वे उसे प्रतीकवाद चित्रभाषावाद, अभिव्यजनावाद आदि विविध नामो से पुकारते है। उनके अनुसार 'छायावाद जिस आकाक्षा का परिणाम था उसका लक्ष्य केवल अभिव्यजना की रोचक प्रणाली का विकास था।' शुक्लजी उसे द्विवेदी युग की बाह्यार्थ निरूपक इतिवृत्तमयी काव्य-शैली के विरुद्ध उत्पन्न हुई प्रतिक्रिया मानते है जिसमे वस्तु-विधान की अपेक्षा काव्य-शैली पर ही अधिक बल दिया गया है, यथा—"द्वितीय उत्थान मे काव्य की नूतन परपरा का अनेक विषय स्पर्शी प्रसार अवश्य हुआ, पर द्विवेदीजी के प्रभाव से एक ओर उसमे भाषा की सफाई, दूसरी ओर उसका स्वरूप गद्यवत् रूखा, इति वृत्तात्मक और अधिकतर बाह्यार्थ निरूपक हो गया। अत तृतीय उत्थान मे जो परिवर्त्तन हुआ और पीछे 'छायावाद' कहलाया वह इस द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्य-शैली की ओर था, वस्-विधान तुकी ओर नहीं। अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके

भीतर बहुत सकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओ को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।" इस प्रकार छायावाद को प्रमुख रूप से एक शैली मान कर वे उसके भीतर "भावावेश की आकुल व्यजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त-प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध चमत्कार, कोमल पद-विन्यास इत्यादि काव्य का स्वरूप सघटित करने वाली प्रचुर सामग्री" का अतर्भाव करते है। परन्तु आगे चल कर यह मत मान्य नही हुआ।

स्वर्गीय जयशकरप्रसादजी ने भी छायावाद के शैली गत रूप पर अधिक बल दिया है, यद्यपि उन्होने उसमे स्वानुभूति के तत्व की भी उपेक्षा नही की है। उनके शब्दा मे "छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक विधान तथा उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषताएँ है। अपने भीतर से मोती के पानी की तरह आन्तर स्पर्श कर के भाव-समर्पण करने वाली अभिव्यक्ति छाया कान्तिमयी होती है।" शुक्ल जी द्वारा निर्देशित अधिकाश विशेषताएँ प्रसादजी की परिभाषा मे भी आ गई है। उनके मत से छायावादी कविताओ मे रीतिकालीन वाह्य-वर्णन-प्रधान रचनाओ से भिन्न प्रकार के भावो की नए ढग से अभिव्यक्ति हुई है। सूक्ष्म आभ्यन्तर भावो को व्यक्त करने के लिए नवीन शैली और नया वाक्य-विन्यास आवश्यक जान पडा और इसी नवीन शैली ने छायावाद का रूप धारण किया। प्रसादजी ने प्रकृति को भी छायावाद का अनिवार्य तत्व नही माना है। इस प्रकार शुक्लजी के समान वे भी छायावाद के शैलीगत स्वरूप पर ही अधिक बल देते रहे।

परन्तु आलोचको का एक ऐसा वर्ग भी है जिसने छायावाद को

केवल एक शैली ही नही माना है। आचार्य नन्ददुलारेजी वाजपेयी ने छायावाद की परिभाषा इस प्रकार दी है—"मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य मे आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।" वाजपेयीजी ने स्काट-बाइरन, वर्ड्सवर्थ और शेली—तीन प्रकार के अंग्रेजी कवियो का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि स्थूल और सूक्ष्म की मध्यवर्तिनी भूमि पर विहार करने वाला शेली ही वास्तविक छायावादी कवि कहा जा सकता है स्काट और बाइरन जिन्होने स्थूल सौन्दर्य का चित्रण किया तथा वर्ड्सवर्थ जिसने नितात सूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण किया है, ये दोनो ही प्रकार के कवि छायावादी नही कहे जा सकते। उनके मत से छायावादी कवि की अनुभूति यथार्थ जीवन से सबधित होती है और उसकी अभिव्यक्ति सूक्ष्म स्वानुभूति से, न कि यथार्थ जीवन से। 'व्यक्त' और 'सूक्ष्म' शब्दो का यही अर्थ है। उनकी परिभाषा का दूसरा तत्व है 'आध्यात्मिक छाया का भान' वे प्रकृति के भाव चित्रो तक ही छायावाद की सीमा नही मानते परन्तु इन भाव-चित्रो मे अव्यक्त सत्ता का आभास भी छायावाद के लिए अनिवार्य मानते है। वे अव्यक्त सत्ता को बिम्ब और भाव-चित्रो को—जो छाया का काम करते है—प्रतिबिम्ब मानते है। स्पष्ट ही इस परिभाषा के अनुसार छायावाद एक शैली ही नहीं रह सका है। वह एक दार्शनिक पृष्ठभूमि को लेकर भी उपस्थित हुआ है। शैली की दृष्टि से वाजपेयीजी लाक्षणिकता, मानवीकरण, विरोधाभास तथा ध्वन्यात्मकता को छायावाद की विशेषताएँ मानते है।

महादेवीजी ने भी छायावाद के विषय मे बहुत कुछ लिखा है। अपनी रचनाओ के विषय मे उनका मत है कि, "मेरी कविता यथार्थ की चित्रकर्त्री न होकर स्थूलगत सूक्ष्म की भावक है" तथा उनके मत से छायावाद मे "प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य मे व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का

आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यक्तिगत सौन्दर्य पर चेतना का आरोप भी।" स्पष्ट है कि वाजपेयीजी और महादेवीजी मे कोई विशेष अतर नही है। अतर केवल इतना ही है कि वाजपेयीजी ने प्रकृति के साथ मानव-सौन्दर्य को भी छायावाद की सीमा के भीतर रखा है, वहाँ महादेवीजी ने प्रकृति को ही प्रधानता दी है। उनके अनुसार "छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सबध मे प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप मे चला आ रहा था, और जिसके कारण मनुष्य को प्रकृति अपने दुख मे उदास और सुख मे पुलकित जान पडती थी। छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि मे भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपो मे प्रकट एक महाप्राण बन गई। अत: अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल कण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओ का एक ही कारण, एक ही मूल्य है।" स्पष्ट है कि महादेवीजी के अनुसार प्रकृति छायावाद का एक प्रधान और अनिवार्य तत्व है। शुक्लजी, प्रसादजी आदि के समान वे भी छायावाद को 'स्थूल की प्रतिक्रिया मे उत्पन्न हुआ' मानती है। परतु महादेवीजी ने छायावाद और रहस्यवाद मे कोई विभाजन रेखा नही खीची है। इसलिए कतिपय आलोचको ने प्रकृति मे मानव-जीवन की अनूभुति को छायावाद और प्रकृति मे अज्ञात सत्ता के आभास को रहस्यवाद के नाम से पुकारा है। श्री शिलीमुखजी तथा श्री विश्वभर मानव इसी मत को मानते है। इस प्रकार हम देखते है कि छायावाद मे प्रकृति का तत्व प्रधान होता गया है।

श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी ने छायावाद को सास्कृतिक चेतना का परिणाम माना है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् देश मे एक चेतना की लहर दौड गई थी। सन् १९२० से गाँधीजी के नेतृत्व ने इस लहर को और भी अधिक तीव्र बना दिया। समस्त भारतवर्ष परतन्त्रता के पास को तोड़ने के लिए कटिबद्ध हो गया। वास्तव मे यह एक सास्कृतिक आदोलन

ही था । स्वाधीनता देश को महान बनाने का साधन भर समझी गई थी । इस महान आंदोलन ने भारतीय जनता के चित्त को मुक्त किया । यह बंधन-मुक्त चित्त काव्य, नाटक आदि मे भी अभिव्यक्त हुआ । दूसरे, पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति के प्रभाव स्वरूप स्वच्छदतावादी वैयक्तिक दृष्टि-कोण भी साहित्य मे प्रवेश कर रहा था । वैयक्तिक दृष्टिकोण के कारण कविता विषयी प्रधान हो गई । द्विवेदीजी के मतानुसार "मानवीय दृष्टि के कवि की कल्पना, अनुभूति और चिन्तन के भीतर से निकली हुई वैयक्तिक अनुभूतियो के आवेग की स्वत समुच्छ्वित अभिव्यक्ति——बिना किसी आयास के और बिना किसी प्रयत्न के, स्वय निकल पडा भाव-स्रोत——ही छायावादी कविता का प्राण है ।" द्विवेदीजी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' मे छायावाद की विशेषताओ को सक्षेप मे इस प्रकार दिया है——"(१) छायावाद नाम उन आधुनिक कविताओ के लिए बिना विचारे ही दिया गया था (क) जिनमे मानवतावादी दृष्टि की प्रधानता थी (ख) जो वक्तव्य विषय को कवि की कल्पना और अनुभूति के रग मे रँग कर अभिव्यक्त करती थी, (ग) जिनमे मानवीय आचारो, क्रियाओ, चेष्टाओ और विश्वासो के बदले हुए और बदलते हुए मूल्यो को अगीकार करने की प्रवृत्ति थी, (घ) जिनमे छद, अलकार, रस, ताल, तुक आदि सभी विषयो मे गतानुगतिकता से बचने का प्रयत्न था, और (ङ) जिनमे शास्त्रीय रूढियो के प्रति कोई आस्था नही दिखाई गई थी, (२) छायावाद एक विशाल सास्कृतिक चेतना का परिणाम था, यद्यपि उसमे नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिन्ह स्पष्ट है तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहा था, कवियो की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा-शैली मे अपने को अभिव्यक्त किया और (३) सभी उल्लेखयोग्य कवियो मे थोड़ी-बहुत

आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थी। जिन कवियो ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढियो के प्रति विद्रोह का भाव दिखाया उनके इस भाव का कारण तीव्र सास्कृतिक चेतना ही थी।" इतने लबे उद्धरण की आवश्यकता इसलिए पडी कि माखनलालजी को समझने मे अपेक्षाकृत द्विवेदीजी के विचार अधिक सहायक सिद्ध होगे। छायावाद के विषय मे इतने मत अलम् होगे। अन्य विद्वानो के विचारो का अतर्भाव भी इनमे ही हो जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओ को ध्यान मे रखते हुए जब हम माखनलालजी के काव्य पर दृष्टिपात करते है तो हमे विदित होता है कि शैलीगत लाक्षणिकता, विरोधाभास, विशेषण-विपर्यय तथा वचन-वक्रता ही उनमे विशेष रूप से परिलक्षित होती है। मानवीकरण, ध्वन्यात्मकता आदि उनके काव्य मे अधिक नहीं है। चित्रभाषा और प्रतीको का उन्होने प्रयोग अधिक नही किया। श्री वाजपेयीजी और महादेवीजी की परिभाषाओ के अनुसार भी वे आंशिक रूप से ही छायावादी कवि ठहरते है। जहॉ तक स्थूलगत सूक्ष्म की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, वे इस कोटि मे ही आते है। उन्होने भी प्रत्येक छायावादी कवि के समान बाह्य जीवन की स्वानुभूति को ही अभिव्यक्त किया है। देश-व्यापी हलचल का उन्होने स्थूल चित्रण नही किया, उस हलचल की निजी मानसिक प्रतिक्रिया को ही वाणी दी है। उनका समस्त काव्य भाव-चित्रो से भरा हुआ है। इस स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति के कारण वे छायावाद की सीमा मे ही रहते हैं। परतु जब आध्यात्मिक छाया का प्रश्न उठता है, अथवा जब प्रकृति का मानवीकरण ही छायावाद की परिभाषा बन जाता है, तब वे इस सीमा से बाहर दिखलाई पड़ते है। आगे चल कर प्रकृति छाया-

वाद का एक प्रधान तत्व बन गई थी। माखनलालजी के काव्य मे प्रकृति के प्रति अधिक प्रेम नही दिखलाई पडता। प्रकृति मे वे चेतना की अनुभूति और उस पर मानवीय क्रिया-कलापो का आरोप कम ही करते है। इस दृष्टि से उनमे छायावादी कवियो की एक प्रधान विशेषता नही मिलती। परतु जब हम श्री हजारीप्रसादजी द्विवेदी की परिभाषा की ओर मुडते है तब हमे विदित होता है कि वे सर्वांशेण छायावादी कवि ही है। उनमे और छायावादी कवियो मे कोइ विशेष अतर नही है। हम कहे तो कह सकते है कि सास्कृतिक चेतना एव स्वातन्त्र्य की उत्कट अभिलाषा जितनी तीव्र माखनलालजी और उनके वर्ग के कवियो मे दिखलाई पडती है, उनकी अन्य छायावादी कवियो मे नहीं। यदि मानवतावादी दृष्टिकोण स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति, रूढि-विरोध, सास्कृतिक चेतना और थोडी-बहुत आध्यात्मिकता अभिव्यक्ति की व्याकुलता ही छायावादी की विशेषताएँ है, तो कोई कारण नही कि माखनलालजी को छायावादी कवि न माना जाय। उनमे उक्त समस्त विशेषताएँ पूर्णरूपेण परिलक्षित होती है। इस प्रकार हमने देखा कि कतिपय विद्वानो की परिभाषाओ के अनुसार वे छायावादी नही कहे जा सकते और दूसरे प्रकार के विद्वानो के अनुसार उनमे छायावाद की समस्त विशेषताएँ उपलब्ध होती है।

सच पूछा जाय तो छायावाद कोई एक वस्तु नही थी। वह अनेक तत्वो के सामूहिक स्वरूप को दिया हुआ एक नाम मात्र था। प्रसाद, पत, निराला और महादेवी छायावादी कवि कहे जाते है। इससे ऐसा बोध होता है कि उनमे समानताएँ अधिक है। परन्तु बात ऐसी नही है। इन कवियो मे समानताओ की अपेक्षा असमानताएँ भी कम नही है। छायावादी कहे जाने वाले ये सब कवि एक वाद न होकर पृथक्-

पृथक् रूप स एक-एक वाद है। प्रसाद जी मे सौन्दर्य और प्रेम प्रधान रहा, पतजी मे कला, निरालाजी मे विद्रोह एव महादेवीजी मे वेदना। ऐसी स्थिति मे इन सबको एक ही नाम से पुकारना भ्रमोत्पादक ही कहा जा सकता है। ये सब कवि अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओ से सयुक्त होकर स्वय स्वतत्र धारा के रूप मे इस युग की काव्य-भूमि को आप्लावित करते रहे। यदि सामूहिक दृष्टि से देखा जाय तो ये कवि एक न थे, अनेक थे। साराश यह कि जिस समय को हम छायावाद-युग के नाम से पुकारते है, उसमे अनेक प्रकार की धाराएँ बह रही थी। पाश्चात्य आलोचक भी अब इसी निष्कर्ष पर आ गए है कि स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) कोई एक वाद न होकर, अनेक प्रकार की विचार-धाराओ को दिया हुआ एक नाम था। श्री, एफ एल लुकस अपनी 'लिटरेचर एड साइकालाजी (Literature and psychology) नामक पुस्तक मे लिखते है—"Romanticism is a hopelassly wooly term fit only for slaughter and that one should speak only of Romanticisms." हिन्दी के 'छायावाद' के लिए भी यही बात कही जा सकती है। वास्तव मे छायावाद भी एक धारा न होकर अनेक धाराओ का सामूहिक नाम था। इस दृष्टि से विचार करने पर हमे विदित होगा कि इस युग मे साहित्य-सृजन करने वाला एक विशेष वर्ग माखनलाल-वर्ग ही कहा जा सकता है। माखनलालजी के वर्ग मे नवीनजी, दिनकरजी, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आदि कवि परिगणित किए जा सकते है। ये कवि राष्ट्रीय धारा के कवि है। इन्हे 'वीर-रस के स्वदेश प्रेमी कवि' कहा गया है। छायावाद युग की पृष्ठभूमि पर यह वर्ग भी महत्त्वपूर्ण है। अन्य कवि अपनी-अपनी स्वतत्र धाराओ को लेकर चलते रहे। प्रसाद, पन्त, निराला,

महादेवी आदि कवियो को किसी एक नाम मे नही बाँधा जा सकता। परन्तु उपर्युक्त कवि-गण प्रमुख रूप से राष्ट्रीय धारा के कवि है। इस प्रकार माखनलालजी ने छायावाद-युग के एक बड़े कवि-वर्ग का नेतृत्व किया है। आचार्य रामचद्रजी शुक्ल ने भी इन्हे स्वच्छद-धारा के कवियो मे ऊँचा स्थान दिया है।

माखनलालजी ने छायावाद-युग के कवियो के एक बड़े वर्ग का नेतृत्व ही नही किया, छायावाद के लिए पृष्ठभूमि भी तैयार की है। छायावाद के श्रीगणेश का श्रेय प्रसादजी को दिया जाता है और उसके प्रति रुचि जागरित करने का श्रेय माखनलालजी को। कहा गया है कि उन्होने उर्दू की सरस शैली को हिन्दी मे लाकर छायावादी काव्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार की है। परतु बात इतनी ही नही है। उन्होंने पृष्ठभूमि तो तैयार की ही थी, साथ ही उस पृष्ठभूमि पर स्वय कार्य करना भी प्रारभ कर दिया था। इस प्रकार छायावाद के पथ को प्रशस्त कर वे स्वय ही सर्व-प्रथम उस पर अग्रसर हुए है। उनकी सन् तेरह-चौदह के आसपास की रचनाओ को पढने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है। छाया-वाद की अनेक विशेषताओ के दर्शन उनकी उस समय की रचनाओ मे ही मिलने लगे थे। इस प्रकार हमने देखा कि माखनलालजी एक दृष्टि से छायावादी कवि है, वे उसके मार्ग को प्रशस्त करनेवाले, उसके आरभिक कवि तथा छायावाद-युग के एक बड़े कवि-वर्ग के नेता भी है। स्पष्ट है कि छायावादी काव्य और छायावादी युग मे माखनलालजी का महत्वपूर्ण स्थान है।

माखनलालजी का महत्व और भी अनेक दृष्टियो से है। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की साहित्यिक अभिव्यक्ति माखनलालजी के काव्य मे ही

दिखलाई पडती है। यद्यपि आध्यात्मिक राष्ट्रवाद राजनीति के लिए नई न थी, परतु साहित्य के लिए तो वह एकदम नई वस्तु ही थी। माखनलालजी ने ही सर्व-प्रथम इसका साहित्य मे अवतरण किया है। बलि मे पूजा की भावना माखनलालजी के काव्य मे ही दिखलाई पड़ती है और वह भी अपने तीव्रतम रूप मे। मातृ-भूमि के ऊपर बलि होने की इतनी उत्कट लालसा अन्य किसी कवि के काव्य मे नही है। यदि उन्हे बलिदानवादी कवि भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। मरण को त्यौहार माननेवाले और बलि मे मिठास का अनुभव करने वाले कलम के धनी हिन्दी मे हैं ही कितने! बलिदान की भावना माखनलालजी के काव्य में अत्यत तीव्र रूप मे व्यक्त हुई है। बलिदान की भावना जितनी तीव्र है, उतनी ही ओजपूर्ण शैली भी है। इस वर्ग के कवियो मे सर्व प्रधान तत्त्व ओज ही कहा जा सकता है। माखनलालजी की अनेक रचनाएँ ओज की अतिशयता मे अग्निमयी हो उठी है।

माखनलालजी की शैली भी अपनी सरलता, सरसता और नाटकीयता के कारण हिन्दी साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान बना चुकी है। इनकी शैली को सूक्ति-शैली कहा गया है। उन्हे किसी भी नाम से पुकारे, उस पर चाहे कुछ भी प्रभाव पड़ा हो, परतु यह निश्चित है कि उनकी शैली मे बडा आकर्षण है और इसी कारण उसका अनुकरण भी हुआ।

भाषा भी उनकी अपनी है। उनकी भाषा न तो सस्कृतनिष्ठ है और न अरबी-फारसी शब्दो के भार से दबी हुई ही। उनकी भाषा मे अरबी-फारसी के शब्द है पर वे ही शब्द अधिक है, जो हिन्दी मे पच चुके हैं, जो हिन्दी के अपने बन चुके है। तात्पर्य यह कि उनकी भाषा जन-भाषा के समीप है। अपने भावो को, अपने विचारो को वे कृत्रिम भाषा

में व्यक्त नहीं करते। वे उसी भाषा में लिखते हैं जिसमें वे बोलते हैं। साहित्य की भाषा और नित्यप्रति के जीवन की भाषा में वे अधिक अंतर मान कर नही चले हैं। अनेक बोलचाल के शब्दो के प्रयोग से उनकी कई रचनाएँ बडी मधुर हो गई है। इस प्रकार दैनिक जीवन की जन-भाषा को साहित्य की भाषा और साहित्य की भाषा को जन-जीवन की भाषा के निकट लाने का श्रेय माखनलालजी को है।

देश के राजनीतिक जीवन मे हमारे कवि ने सक्रिय सहयोग किया है। लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी का उसके ऊपर प्रभाव है और इन महापुरुषो के लिए उसके हृदय मे अटूट श्रद्धा भी है। ऐसी परिस्थितियो मे रह कर सभव था कि वे अपनी वाणी द्वारा उक्त महापुरुषो के मत का प्रचार करने लगते अथवा तत्कालीन राजनीतिक जीवन के स्थूल चित्रण उपस्थित करते। परतु उन्होने यह कुछ भी नही किया। न तो उन्होने गाँधीवाद का प्रचार ही किया और न राजनीतिक जीवन के स्थूल चित्र ही उपस्थित किये। राजनीति मे रह कर भी वे राजनीति मे नही डूबे, अपितु राजनीति को ही अपनी आत्मा के रग मे डुबा ले गये। इसलिए उनकी राष्ट्रीय रचनाओ मे भी तत्कालीन राजनीतिक जीवन की अपेक्षा उनकी ही आत्मा अधिक व्यक्त हुई है। राजनीति उनके सिर पर चढकर नही बोली। यही बात गाँधीवाद के विषय मे भी कही जा सकती है। आज के अनेक कवि और लेखक किसी न किसी वाद को लेकर चल रहे है। कोई मार्क्सवादी है, कोई फ्रायडवादी है, कोई गाँधीवादी है। ये लेखक प्रचारक बन कर लिखते है। परतु माखनलालजी न तो कोई वादी है और न वे किसी वाद का प्रचार ही करते है। उन पर अनेक प्रभाव है, पर वे सब उनकी आत्मा मे घुल-मिल कर उनके अपने बन कर व्यक्त होते हैं। आत्मा के अदर रग में डूब जाने के कारण ही उनकी राष्ट्रीय

रचनाएँ प्रचारवादी पैम्फलेट बनने से बच गई । वे एक देश और एक विशेष काल मे उत्पन्न होकर भी अखिल देश और अखिल काल का गीत बन गई है ।

माखनलालजी मे तीव्र प्रतिभा है, सूक्ष्म दृष्टि है । इसी सूक्ष्म दृष्टि के बल पर वे सदा प्रगतिशील रहे है । आनेवाले युग की भावना को उन्होने बहुत पहले ही पहचान लिया है । यही कारण है कि छायावाद-युग के पूर्व से ही वे छायावादी रचनाएं देने लगे थे और आज के यथार्थवादी युग के बहुत पहले से ही वे यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपना चुके थे । कवियो के कवि माखनलालजी ने जहाँ अनेक को भारती के देवल-द्वार तक पहुँचाया हे, वही युग को भी वे उचित पथ-निर्देश करते रह है ।

भावातिरेक की दृष्टि से चतुर्वेदीजी की रचनाएं किसी भी कवि की रचना से भारी मालूम पड़ेगी । उनकी अनेक भाव-प्रगल्भ प्रगीतियाँ बडी उत्कृष्ट कोटि की रचनाएँ है । प्रगीत-शैली के प्रवर्तन मे इन रचनाओ ने महत्वपूर्ण योग दिया है । उर्दू का काव्य-शिल्प भी हिन्दी को उनकी ही देन कही जाती है । निश्चय ही 'वे काव्य-भावना, काव्य-रूप और काव्याभिव्यजना तीनो क्षेत्रो मे नवीनता प्रदर्शित करते हुए हिन्दी मे आए थे ।' यही कारण है कि उनका काव्य-प्रभाव सक्रामक रहा । अनेक कवियो ने उनका अनुकरण किया ।

हिन्दी के इस प्रकाश स्तभ का अभी तक उचित मूल्याकन नही हो सका है । कारण कोई भी रहा हो, आचार्य रामचद्रजी शुक्ल जैसे आलोचको ने उनका स्वच्छद-धारा के कवियो मे नामोल्लेख करके सतोष कर लिया है । अभी तक उनके तीन काव्य सग्रह प्रकाशित हुए है । परतु उनकी अनेक रचनाएँ अभी भी अप्रकाशित ही है । कवि के काव्य-विकास को समझने के लिए उन सबका व्यवस्थित रूप से प्रकाशित हो जाना

आवश्यक है । यही नही, आधुनिक काव्य-विकास के अनेक सकेत भी उनकी रचनाओ मे छिपे पडे हैं। उनके बिना प्रकाश मे आये इस युग के काव्य-विकास को भी सम्यक् रूप से नही समझा जा सकता। छायावादी काव्य-शैली के निर्माण मे उनका योग कितना और कहाँ तक रहा, इसका भी विचार पूर्ण रूप से तभी किया जा सकता है जब उनका सपूर्ण काव्य यथावत् प्रकाशित हो जाय। सूचना मिली है कि उनकी अप्रकाशित रचनाओ को प्रकाशित किया जा रहा है। यह शुभ सवाद है।

निश्चय ही माखनलालजी हिन्दी के एक प्रकाश-स्तभ हैं जो अप्रकाशन के धुँधले अँधेरे मे ही अभी तक पडा रहा। प्रतिभा मे, सूझ मे, शैली में, भावना मे, प्रेम मे, देशसेवा मे, प्रेरणा मे, चिन्तन मे, पथ-प्रदर्शन मे और न जाने कहाँ-कहाँ उनके व्यक्तित्व की किरणें प्रकाश पहुँचाती रही है। निश्चय ही उनकी आत्मा के साथ हम भी उनसे कह सकते है —

दावो मे तू योद्धा है
भावो मे वीर सुकवि है।

मुद्रक—प्यारेलाल भार्गव, राजाप्रिंटिंग प्रेस, कमच्छा, बनारस १।